http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाग 1, 2

पञ्चाध्यायी प्रवचन

—[*******]—

卐

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

वैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बड़तला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पञ्चाध्यायी-प्रवचन

[द्वितीय भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

●

अथ च गुणत्वं किमहो सूक्तः केनापि जन्मिनासूरिः ।
प्रोचे प्रोदाहरणं लक्षितमिव लक्षणं गुणानां हि ॥ १०३ ॥

स्वपरयाथात्म विज्ञान बिना संकटोंसे छुटकाराकी असम्भवता— अपने स्वरूपके जाने बिना बाह्य पदार्थोंको स्वपदार्थोंसे अपनानेके कारण इस जीवकी अनादिसे अब तक दुर्गति होती चली आयी है । एक भवसे मरण करना, दूसरे भवमें जन्म लेना और उस जन्म मरणके बीच नाना संकट सहना यही प्रत्येक भवमें होता चला आया है । कभी किसी भवमें कुछ इन्द्रियके इष्ट विषयोंका साधन मिला और वहाँ कुछ सुखरूप परिणमन किया तो उससे भी इस जीवको हित क्या हुआ ? सुख और दुःख संसारके दोनों बराबर हैं, क्योंकि शान्तिका अभाव दोनोंमें है । तो जब कभी श्रेष्ठ भव मिलता है और कुछ संसार निकट होता है तो आत्मकल्याणकी भावना उत्पन्न होती है वहाँ यह अभीष्ट बनता है कि जन्म मरणसे मेरा छुटकारा हो । जन्म मरणसे छुटकारा होनेका उपाय मोहका परिहार है । जब तक मोह है तब तक संसार में जन्म मरण होते ही रहेंगे । मोहके विनाश होनेपर ही यह संकट समाप्त हो सकता है । मोहका विनाश कैसे हो ? तो यह बात मोहका स्वरूप समझ लेनेसे ही विदित हो जाती है । मोह उसे कहते हैं जो निज नहीं हैं ऐसे पर पदार्थोंको निजरूपसे कल्पना करनेको । तो निज निजरूपसे समझमें आये और पर पदार्थ पररूपसे समझमें आयें ऐसा पुरुषार्थ बने तो यह है वास्तविक पुरुषार्थ संकटोंसे छूट जानेके लिए । उसीके प्रयत्नमें बड़े बड़े ऋषिराजोंके उपदेश होते हैं । और निज क्या है ? निज और परका भेद समझनेके लिए सर्वप्रथम सामान्यतया पदार्थोंका स्वरूप समझना चाहिए ।

पदार्थ परिज्ञानके प्रसङ्गमें गुणोंके निरूपणकी प्रतिज्ञा— इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम पदार्थके स्वरूपकी ही बात की गई है । पदार्थ सन्मात्र है, स्वतःसिद्ध है अनादि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनन्त है। अपने ही सहाय है। और अखण्ड है। इस लक्षणके समर्थनमें बहुश बहुत चर्चायें होनेके बाद अन्तमें द्रव्यका लक्षण किया गया है—जो गुणपर्याय वाले हों सो द्रव्य हैं। यहाँ अभी पदार्थके स्वरूपकी ही चर्चा चल रही है। पदार्थ स्वरूप जानने पर स्वयं ही यह जान लिया जाता है कि यह तो हुआ मैं निज और बाकी ये हैं समस्त पर पदार्थ। जो मेरे गुणपने और पर्यायपनेसे युक्त है वह तो हुआ मैं निज और जो परकीय द्रव्यपने और गुणपनेसे युक्त है वह है पर पदार्थ। भेद विज्ञान करनेके लिए वस्तुस्वरूप पहिले जानना होगा। पदार्थ है गुणपर्याय वाला। इसके समर्थनमें बहुत चर्चायें की गई थीं। अब इस प्रसंगमें यहाँ यह प्रश्न हो रहा है कि गुण नामक पदार्थ कहते किसे हैं? गुण क्या चीज है? वस्तुको अन्तः विधिसे समझनेके लिए शक्ति, गुण, स्वभावका परिचय अवश्य होना चाहिए। गुण ध्रुव होता है, पदार्थमें शक्ति सहज है, अर्थात् जबसे पदार्थ है तबसे ही उसमें शक्ति है। उस शक्तिका गुणका क्या स्वरूप है? यह बात इस प्रकरणमें आचार्य महाराजसे पूछी गई है—यह पूछा जानेपर अब आचार्य महाराज उसका उत्तर देते हैं।

द्रव्याश्रया गुणाः स्युर्विशेषमात्रास्तु निर्विशेषाश्च।
करतलगतं यदेतैर्व्यक्तमिवालक्ष्यते वस्तु ॥ १०४ ॥

गुणोंका स्वरूप—जो द्रव्यके आश्रय रहता हो और स्वयं निर्विशेष हो ऐसे विशेषोंको गुण कहते हैं। पदार्थका स्वरूप बताया गया था, उस पदार्थको स्पष्ट समझनेके लिए पदार्थोंकी विशेषतायें ही तो समझायी जायेंगी। उस पदार्थमें क्या क्या विशेष हैं ऐसा जब कहनेको उद्यमी होगा कोई तो जो जो विशेष बतायें जावेंगे बस वे ही गुण कहलाते हैं। गुणका अर्थ दो तरहसे कीजिए—गुणका नाम है विशेष। जो पदार्थकी विशेषता बताये, पदार्थोंमें जो विशेषतत्त्व पाया जाय उसे गुण कहते हैं, अथवा पदार्थ तो अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थका ज्ञानमें भेद करके जो कुछ अंश समझा जाय उसको गुण कहते हैं। तो जो भी पदार्थके गुण कहे जायेंगे वे होंगे ध्रुव शाश्वत् गुण स्वयं पदार्थ नहीं, किन्तु पदार्थकी विशेषता है सो उस विशेषमें और विशेष न मिलेगा अर्थात् गुणमें और गुण नहीं मिलते हैं। वह एक शक्ति है। उस शक्तिमें और शक्ति नहीं लगती है, क्योंकि अन्य शक्ति माननेसे यह शक्ति शक्तिमान कहलाने लगेगा। तब यह गुण न होकर द्रव्य बन जायगा। गुण तो गुणवानके समझनेके लिए कहा जाता है। तो जिसमें स्वयं और विशेष नहीं है अर्थात् जो गुणरहित है, किन्तु है द्रव्यके आश्रय अर्थात् जिसमें गुण बनाये जा रहे हैं उस पदार्थमें तादात्म्यरूपसे रहने वाले हैं। ऐसे तत्त्वको गुण कहते हैं। और, इन ही गुणोंके द्वारा वस्तु स्पष्ट समझमें आती है। वस्तुको समझानेका उपाय पर्याय भी है, लेकिन जो पर्यायके द्वारा समझा है उनके चित्तमें गुणकी मान्यता पड़ी हुई है। गुण माने बिना पर्यायकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात कही नहीं जा सकती। पर्याय मायने परिणमन। वह परिणमन किसका है? यह स्पष्ट हुए बिना परिणमनकी बात समझमें आ नहीं सकती। तो पर्यायमुखेन भी कोई वस्तुका स्वरूप बताये तो वह भी गुणकी बात मान चुका ही है। दूसरी बात यह है कि पर्यायमुखेन वस्तुका वर्णन करनेकी मुख्य पद्धति नहीं है। वह तो मुख्य पद्धतिका समर्थन करनेके लिए वर्णन है। पर्यायें क्षणिक होती हैं, उनमें उत्पाद व्यय होता है, पर वस्तुको समझनेके लिए उत्पाद व्यय स्वरूपकी मुख्यता न दी जाकर ध्रौव्यकी मुख्यताका वर्णन होता है। ध्रौव्य स्वरूप है गुणका, अतएव गुणोंके द्वारा वस्तुका स्पष्ट परिज्ञान होता है और गुणोंके द्वारा ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता जैसे हाथके तलभागपर रखी हुई किसी वस्तुका स्पष्ट ज्ञान होता है।

गुणोंकी द्रव्याश्रयता—यहाँ गुणका लक्षण बताया गया जिसमें दो बातें कही गई हैं—द्रव्याश्रया: और निर्गुणा: जो द्रव्यके आश्रय हों और गुणरहित हों उन्हें गुण कहते हैं। गुण सदा द्रव्यके आश्रय रहते हैं क्योंकि गुणका अर्थ ही है द्रव्यकी विशेषता। द्रव्य अखण्ड स्वयं क्या? है उसको समझानेके लिए जो उसका शक्तिभेद किया जाता है वह गुण कहलाता है। तो गुणद्रव्यके आश्रय रहता है लेकिन यह आश्रय आश्रयी सम्बन्ध अभेदरूपसे है न कि भेदरूपसे। लोकमें जैसे चौकी पर पुस्तक रखी हो तो वहाँ कहते हैं कि पुस्तक तो आश्रयसे है और चौकी आश्रयभूत है। तो जैसे यहाँ चौकी भिन्न है, पुस्तक भिन्न है और फिर उनका आश्रय आश्रयी सम्बन्ध बताया है इस तरहसे गुण और द्रव्यका आश्रय आश्रयी सम्बन्ध नहीं है। बल्कि बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे विचारा जाय दो गुण ही तो द्रव्य है। एक एक शक्तिकी कल्पना है तो वहाँ गुण संज्ञा होती है और वे सभीकी सभी शक्तियाँ वे सभी गुण बराबर द्रव्य कहलाते हैं। तो यों गुण और द्रव्य ये प्रथक नहीं हैं, अतएव इनमें आश्रय आश्रयी सम्बन्ध समझनेके लिए है। वस्तुत: यह अभेदरूपसे है, दृष्टान्तके लिए कुछ ऐसा समझा जा सकता है कि जैसे कोई कहे कि इस कपड़ेमें तंतु हैं तो तंतु अलग और कपड़ा अलग हो, ऐसा तो कुछ है नहीं। उन सब तंतुओंका समुदाय ही कपड़ा है। वे सब तंतु एकत्रित होकर इस प्रकार संघटित हैं, उनको ही कपड़ा कहते हैं। तो तंतुमें कपड़ा, कपड़ामें तंतु, जैसे यहाँ आश्रय आश्रयी सम्बन्ध भिन्न नहीं है इसी प्रकार गुण और द्रव्यका आधार आधेय सम्बन्ध भिन्न नहीं है। तो गुण द्रव्यके आश्रय रहते हैं।

गुणोंकी निर्गुणता—गुणके लक्षणमें दूसरी बात बतायी गई है कि गुण गुणरहित होते हैं। गुणोंमें और गुण नहीं होते। गुण स्वयं एक विशेष है, विशेषवान नहीं है, स्वयं ही विशेष स्वरूप है अतएव गुणोंमें और गुण नहीं हैं। यदि गुणोंमें भी गुण रह जायें तो गुणवान हो वह तो द्रव्य कहलाता। अब गुणोंमें गुण और मान लिए गए तो यहाँ गुण द्रव्य बन गया, और जो अन्य गुण माना है वे विशेष अथवा गुण हो गए। फिर चूंकि वे भी गुण हैं तो उनमें भी और गुण मानने होंगे। तो अब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे नवीन माने गये गुण द्रव्य हो गए। उनमें और गुणोंकी कल्पना की गई इस तरह अनवस्था दोष आयगा। कहीं भी द्रव्य और गुणकी व्याख्या अवस्थित न हो पायगी। इससे गुण निर्गुण ही होते हैं यह बात पूर्ण युक्तिसंगत है। इस लक्षणका आधार न लेनेसे कुछ दार्शनिक ,के लक्षणसे चिग गए हैं और अनेक दार्शनिकोंने तो गुणको स्वयं पदार्थ माना है और द्रव्यको जुदा पदार्थ माना है। फिर द्रव्यमें गुणका समवाय सम्बन्ध माना है, यह बात लक्ष्यसे छूट गई कि वह द्रव्य ही स्वयं सविशेष है, वह विशेष भी द्रव्य गुणसे पृथक चीज नहीं है और द्रव्यमें गुणोंका समवाय भी क्या ? तादात्म्य सम्बन्ध है। गुणमय ही द्रव्य है। सत् एक है। उस सत्की विशेषता बताने के लिए गुण कर्म सामान्य विशेष तत्त्वका परिज्ञान किया जाता है। तो यहाँ गुण का लक्षण यह कहा गया है कि जो द्रव्यके आश्रय हों, गुणरहित हों उन्हें गुण कहते हैं।

अयमर्थो विदतार्थः समप्रदेशाः समं विशेषा ये।
ते ज्ञानेन विभक्ता क्रमतः श्रेणीकृता गुणा ज्ञेयाः ॥ १०५ ॥

गुणोंकी समप्रदेशता—गुणका लक्षण जो ऊपर बताया गया है कि द्रव्यके आश्रय और निर्विशेष विशेषमात्र गुण कहलाता है। इसका खुलासा यह है कि एक गुणका जो प्रदेश है वही प्रदेश सभी गुणोंका है। गुण भी प्रत्येक एक है और अपने आश्रयभूत द्रव्यमें व्यापक है। अतः द्रव्य तिर्यक विस्तारमें जितना बड़ा है, उसके जितने प्रदेश हैं वे सभी प्रदेश सभी गुण स्वरूप हैं। इसलिये सभी गुणोंके समान प्रदेश हैं और उन प्रदेशोंमें रहने वाले गुणोंका जब ज्ञानके द्वारा विभाग किया जाता है तब श्रेणीवार वे अनन्त प्रतीत होते हैं याने बुद्धिसे जब विभाग किए जाते हैं तो वे सभी प्रदेश गुणरूप ही दीखते हैं। अथवा गु ोंका पिण्ड ही द्रव्य है और वे गुण अपने स्वरूपको, विस्तारको, क्षेत्रको लिए हुए हैं। अतः गुणमात्र द्रव्य है ऐसा तो अर्थ दृष्टिसे कहा जायगा और असंख्यात प्रदेशी, अनन्त प्रदेशी या एक प्रदेशी द्रव्य है, यह क्षेत्रके विस्तारकी दृष्टिसे कहा जायगा। गुणका लक्षण यही रहा कि जो नित्यतासे द्रव्यके आश्रय रहता है और स्वयं गुणरहित है, ऐसे द्रव्याश्रित निगुणोंको गुण कहते हैं। इस ही बातका उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं।

दृष्टान्तः शुक्लाद्या यथा हि समतन्तवः समं सन्ति।
बुद्धया विभज्जमानाः क्रमतः श्रेणीकृता गुणा ज्ञेयाः ॥१०६॥

दृष्टान्तपूर्वक गुणोंके लक्षणका समर्थन—जैसे समान तन्तु वाले सभी शुक्ल आदिक गुण समान हैं कोई सफेद वस्त्र हैतो कितना लम्बा चौड़ा है? जितना कि वस्त्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। वस्त्र कितना बड़ा है? जितना कि वे शुक्लादिक गुण हैं। पुद्गलोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चार गुण होते हैं। उन चारों गुणोंका पिण्ड वह पुद्गल है उसके साथ साथ जो और भी गुण होते हैं उनकी असाधारणतासे पुद्गलमें भेद हो जाते हैं। वहाँ जो गुण रहे हैं वे द्रव्य प्रमाण हैं। कपड़ेमें शुक्लादिक गुण उतने हैं जितने कि तंतु। और जो तंतुका क्षेत्र है वही शुक्ल आदिक गुणोंका क्षेत्र है। अब शुक्ल आदिक गुणोंका बुद्धिसे विभाग किया जाय तो अनन्त प्रतीत होंगे। यदि एक एक तंतुमें एक एक तंतु में भी एक छोटा हिस्सा कोई बुद्धिमें लेते हैं तो सभी प्रदेश, सभी हिस्से शुक्ल आदिक गुणरूप प्रतीत होते हैं। यों भी शुक्लादिक गुण अनन्त हैं और गुण भी अनन्त हैं। एक गुण भी अनन्त है, इसी प्रकार जैसे एक जीवतत्त्व लें तो जीव द्रव्य ज्ञानादिक गुणोंका पिण्ड है वह और क्या है ? परमार्थभूत है। और, ज्ञानादिक गुणोंमय है। ज्ञानादिक गुण कितने प्रमाण हैं ? जितने प्रमाण जीव हैं। जीवका प्रत्येक प्रदेश समस्त गुणमय है। अब वे गुण अनन्त हैं और एक एक गुणको अगर भिन्न भिन्न प्रदेश पर देखा जाय तो एक प्रदेशके विभागमें वे भी भाग हैं, पर परमार्थतः एक ही हैं। जो अपने प्रदेशमें सर्वत्र व्यापक हैं। अथवा यों समझना चाहिए कि जो ज्ञान सो आत्मा। ज्ञानमात्र आत्मा। जानन जितने क्षेत्रमें हो रहा, कितने परिमाणमें हो रहा, बस वही तो जीव नामसे कहा जाता है। तो जीव द्रव्य और ज्ञान गुण इनमें अन्तर क्या रहा ? सम प्रदेश हैं इस कारण जो द्रव्यका लक्षण किया गया है समगुणपर्यायः द्रव्यं। वह अन्तिम निष्कर्षसे सिद्ध है। गुणपर्ययवत् द्रव्यं कहकर जो बात समझना है विशुद्धरूपसे वही बात समगुण पर्याय कहकर विशुद्धरूपसे वही बात समगुण पर्यय कहकर बताया है। तो गुण कितने हैं? जितने कि जीव प्रदेश, द्रव्य प्रदेश। तो वे गुण प्रदेशके बराबर हुए। तो ऐसे वे गुण द्रव्यके आश्रय हैं, अर्थात् स्वयं परिपूर्ण सत् नहीं किन्तु एक अखण्ड द्रव्यका बुद्धिसे विभाग करके अंश देखे गए हैं। इस रूपमें गुण है, और गुण गुण ही है। गुणी नहीं है, अर्थात् अन्य गुण उसमें नहीं बने हुए हैं। गुण तो वहाँ होते हैं जो परिपूर्ण सत् होते हैं अखण्ड एक और गुण किए जाते हैं बुद्धिमें विभाग द्वारा। सो किसी एक सत्में, बुद्धिमें विभाग द्वारा जो अंश किए हैं वे तो अंशमात्र हैं, अंशी वे न बन जायेंगे। यों गुण द्रव्यके आश्रय हैं और स्वयं गुणरहित हैं।

नित्यानित्यविचारस्तेषामिह विद्यते ततः प्रायः।
विप्रतिपत्तौ सत्यां विवदन्ते वादिनो यतो बहवः॥ १०७॥

गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताके विषयमें विचारकी आवश्यकता— वह विशेष जो द्रव्यके आश्रय है और स्वयं विशेषरहित है गुण कहलाता है, यह बताया गया, उन गुणोंके सम्बन्धमें प्रायः नित्यता और अनित्यताका विचार चला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है । कोई दार्शनिक गुणोंको सर्वथा नित्य बतलाते हैं और कोई दार्शनिक गुणों को सर्वथा अनित्य बतलाते हैं । वास्तविकता क्या है ? वे सब बातें आगे कही जायेगी इस गाथामें केवल इस ओर दृष्टि दिलाया है कि गुणोंके सम्बन्धमें वे नित्य हैं अथवा अनित्य हैं ? यह विचार करना आवश्यक है और विचारवान पुरुषोंके विचार उठते ही हैं कि वे नित्य हैं अथवा अनित्य ? किसी भी वस्तुको देखकर एकदम कुछ विचार में आने वाली बात नित्यता और अनित्यताकी होती है । तो ये गुण जो द्रव्यके, स्वभावके, बुद्धिमें अंश करके बताये हैं और स्वभावके शाश्वत् रहते हैं तो गुण भी शाश्वत् हैं, इस कारण इस सम्बन्धमें नित्यताकी ओर ज्यादह ख्याल पहुंचता है । और, चूंकि कोई भी शक्ति, कोई भी गुण बिना परिणमनके अपना स्वरूप जाहिर नही कर सकता किसी व्यक्तरूपसे ही शक्तिका परिचय किया जाता है और व्यक्तियाँ अनित्य हुआ करती हैं । जो परिणमन हो, अवस्था हो, व्यक्ति हो वह अनित्य होगी । तो यों कुछ लोग गुणोंके सम्बन्धमें अनित्यताका ख्याल बनाते हैं । वास्तविकता क्या है? गुण नित्य है अथवा अनित्य? इस सम्बन्धमें जैन सिद्धान्तका आशय बतलाते हैं ।

जैनानामतमेतन्नित्यानित्यात्मकं यथा द्रव्यम् ।
ज्ञेयास्तथा गुणा अपि नित्यानित्यात्मकास्तदेकत्वात् ॥ १०८ ॥

गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताके विषयमें आर्ष सिद्धान्त—चूंकि गुण द्रव्यसे प्रथक नहीं हैं, एक परिपूर्ण द्रव्यका सत्यंश करके गुण बताया गया है । तो द्रव्य गुण प्रथक न होनेके कारण नित्य और अनित्यपनेका जो विचार द्रव्यमें किया जा सकता है वही बात गुणमें घटाई जा सकती है । द्रव्य परिणमनशील है इस कारण वह कथंचित् अनित्य है और चूंकि वह शाश्वत् है, परिणमता हुआ कुछ रहेगा वह कोई सत् तो है । उस दृष्टिसे कथंचित् नित्य है । तो जैसे द्रव्य कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, इसी प्रकार गुण भी कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, क्योंकि गुण द्रव्यसे भिन्न नहीं । एक अभेद दृष्टिसे देखनेसे द्रव्य ज्ञात हुआ और भेद दृष्टिसे देखनेपर गुण ज्ञात हुआ । जैसे द्रव्य प्रतिसमय परिणमता रहता है, उसका कोई व्यक्तरूप होता ही है इसी प्रकार गुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और उसका भी कोई वशरूप होता ही है । इस तरह जैसे द्रव्य नित्यानित्य है इसी प्रकार गुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और उसका भी कोई वशरूप होता ही है । इस तरह जैसे द्रव्य नित्यानित्य है इसी प्रकार गुण भी नित्यानित्यरूप है । व्यक्तिकी दृष्टि से अनित्य है और वह गुण शाश्वत् रहता है । शक्तिरूप है । स्वभावमें ही बुद्धिमें विभाग की गई हुई चीज है । इस कारण द्रव्यकी भाँति सदैव रहनेके कारण अनादि अनन्त शाश्वत् रहनेके कारण गुण नित्य है । कभी गुणका विपरीत परिणमन भी हो, विभाव परिणमन भी हो तो भी गुण सदैव रहा करते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्रोदाहरणमिदं तद्भावाऽव्ययाद्गुणा नित्याः ।
तदभिज्ञानात्सिद्धं तल्लक्षणमिह यथा तदेवेदम् ॥ १०९ ॥

गुणोंकी नित्यात्मकताकी सिद्धि—जो गुणोंका भाव है उसका कभी व्यय नहीं होता, इस कारण गुण नित्य कहलाते हैं। जिस वस्तुमें जो भाव है वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। यदि भाव नष्ट हो जाय तो भाववान क्या? भाववान अनादि अनन्त है तो भाव भी अनादि अनन्त है। जिसके स्वभावका नाश न हो उस हीको तो नित्य कहते हैं। यह लक्षण गुणोंमें पाया जाता है। गुणोंका कभी व्यय नहीं होता। इसलिए गुण नित्य हैं। गुणोंके स्वभावका नाश नहीं होता। इसलिए गुण नित्य हैं। गुणोंके स्वभावका नाश नहीं होता। इसी बातको तत्त्वार्थसूत्रजीमें भी कहा है—तद्भावाव्ययं नित्यं। गुणोंके भावका, वस्तुके स्वरूपका व्यय नहीं होता। इसका नाम नित्य है, गुण नित्य है। इस बातकी सिद्धि प्रत्यभिज्ञानसे होती है। जैसे गुणोंसे यह वही है, ऐसी लोगोंको प्रतीति होती है ना, तो उस प्रतीतिमें गुणोंकी नित्यता जाहिर हुई। यह वही ज्ञान है, यह वही रूप है आदिक रूपसे जो प्रत्यभिज्ञान होता है उससे गुणोंकी नित्यता सिद्ध होती है। गुण नित्य हुआ करते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ दृष्टान्त भी दिये जा रहे हैं।

ज्ञानं परिणामि यथा घटस्य चाकारतः पटाकृत्वा ।
किं ज्ञानत्वं नष्टं न नष्टमथ चेत्कथं न नित्यं स्यात् ॥ ११० ॥

उदाहरणपूर्वक गुणोंकी नित्यताका समर्थन—यह तो बताया ही गया है कि द्रव्य परिणमनशील होता है, प्रतिसमय परिणमता रहता है और द्रव्य है गुणोंका समुदाय अथवा गुण ही द्रव्य है। तो इसका भाव यह हुआ कि गुण भी परिणमनशील होते हैं। बिना परिणमे जैसे द्रव्य नहीं रहता ऐसे ही यह भी प्रतीत होता है कि बिना परिणमन हुए शक्ति भी नहीं रहती। गुणका भी निरन्तर परिणमन होता ही रहता है। तो जैसे कोई घटाकार ज्ञान हुआ, घटविषयक ज्ञान हुआ तो ज्ञानका एक घटविषयक परिणमन अर्थात् जिसमें घट जाना जा रहा है उस आकारसे होने वाला ज्ञान परिणमन और इसके पश्चात् फिर हुआ पटका ज्ञान तो पटके आकारसे ज्ञानका होने वाला परिणमन अर्थात् जिसमें पट जाना जा रहा है पटाकार ज्ञेय बन रहा है, ऐसे पटाकाररूप, जाननरूप ज्ञानका परिणमन ये दो परिणमन भिन्न-भिन्न अवस्था वाले हैं ना? जो घट विषयक जानन हो रहा है अर्थात् ज्ञानका घटाकार परिणमन हो रहा है वह कुछ और है और पटविषयक जो जानन हो रहा है याने पटाकाररूपसे ज्ञानका जो परिणमन हो रहा है वह ज्ञान पर्याय है अन्य प्रकार। तो जब घटाकार ज्ञान होनेके पश्चात् पटाकार जानन हुआ और घटाकार जानन नष्ट हुआ, लेकिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घटाकार जाननके नष्ट होनेपर क्या ज्ञानपना नष्ट हो गया ? जानन सामान्य ज्ञान शक्ति जो ज्ञान घटाकाररूप जाननसे परिणम रहा था वही ज्ञान तो घटाकार जानन परिणामको छोड़कर पटाकार जाननरूप परिणम रहा है। ज्ञानपना तो नष्ट नहीं हुआ। और जीवमें जाननेकी शक्ति नष्ट नही हुई। तो जब ज्ञानपना नष्ट नहीं हुआ तो इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान नित्य होता है। उस ज्ञान गुणमें केवल इतना ही भेद होता है कि वह पहिले घटको जानता था, अब वह पटको जानने लगा है। जानना दोनों ही अवस्थाओंमें बराबर है, इस कारण ज्ञानका कभी नाश नहीं होता।

ज्ञानकी घटाबढी हो सकनेपर भी ज्ञानके नाशकी असंभवता—ज्ञानकी घटाबढ़ीका प्रसंग देखकर कोई ऐसी तर्कणा न करे कि जो जो घटली जाती है वह चीज कहीं न कहीं बिल्कुल नष्ट हो जाती हो। यद्यपि यह व्याप्ति रागादिक विकारोंमें लगती है कि रागादिक विकार किसीके कितने ही हैं, किसीमें कुछ कम हैं किसीके बहुत ही कम हैं। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जहाँ रागादिक विकार जरा भी न हों, पूर्णतया नष्ट हो जायें, किन्तु ऐसी व्याप्ति ज्ञानके सम्बन्धमें नहीं लगायी जा सकती। किसीमें ज्ञान कम है, किसीमें और कम है। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जहाँ ज्ञान रहता ही न हो। जैसे मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओंमें ज्ञान कम है, उनकी अपेक्षा कीड़ोंमें ज्ञान कम है, उनकी अपेक्षा पेड़ोंमें ज्ञान कम है, और निगोदिय लब्धपर्याप्तकमें ज्ञान बहुत ही कम है, तो कोई जीव ऐसे भी होंगे कि जिनके बिल्कुल ज्ञान न हो। यह व्याप्ति ज्ञानके साथ नहीं लग सकती इसका कारण यह है कि निमित्तके बलिष्ट होने पर चीज बढ़ती है और निमित्तके हीन होनेपर जो चीज घटती है वहाँ तो व्याप्ति बनती है कि कहीं यह चीज बिल्कुल ही नष्ट हो जाय क्योंकि निमित्तका बिल्कुल वियोग हो जाय यह बात तो सम्भव है ना ? तो निमित्तके अभावमें नैमित्तिक विकार का भी अभाव हो जायगा लेकिन ज्ञान व्यक्तियोंके साथ तो ऐसा सम्बन्ध देखा जा रहा है कि निमित्त ज्यों बढ़ता है वह यों ज्ञान घटता है और निमित्त ज्यों हटता है त्यों ज्ञान बढ़ता है। तो निमित्तका हटना कहीं बिल्कुल भी हो सकता है। रहे ही न निमित्त तो ऐसी स्थितिमें ज्ञान उत्कृष्ट सीमामें पहुंच जाय, यह बात तो बन जायगी, पर ज्ञान स्वभाव है। उसके निमित्तके कितने ही सन्निधान हों, लेकिन अभाव नहीं हो सकता। विकार सर्वथा दूर हो सकता है, पर स्वभाव नही घटाया जा सकता। तो ज्ञान परिणमन भी कभी दूर न होगा। भले ही ज्ञान परिणमन बदलता रहे। कभी किसी विषयका ज्ञान है कभी किसी विषयका ज्ञान है पर ज्ञान शक्ति ज्ञानपना यह कभी भी नष्ट नहीं होता। यह तो विभाव परिणमनके प्रसंगोंकी बात है। जब ज्ञानका स्वभाव परिणमन चल रहा हो तो वहाँ सदृश परिणमन ही तो चल रहा। ठीक वही, जैसा पहिले जाना था वैसा ही अब भी जाना जा रहा है, लेकिन जाननरूप परिणमन प्रतिसमयमें भिन्न-भिन्न है। दूसरे दूसरे हैं। विसदृशता तो नहीं है मगर सदृश कार्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर भी कार्यका होना यह तो सदैव होता रहता है। तो ज्ञानमें परिणमन होते रहें पर उन सब परिणमनोंमें ज्ञानपना नष्ट नहीं होता। तो जब ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, यह बात भली भाँति सिद्ध है तो वह नित्य क्यों न कहलायेगा ? अवश्य ही नित्य कहलाता है। यह तो चैतन्य पदार्थके गुणका उदाहरण दिया है। अब अचेतन पदार्थके गुणका उदाहरण देखिये !

दृष्टान्तः किल वर्णो गुणो यथा परिणमन् रसालफले।
हरित्पीतस्तत्किं वर्णत्वं नष्टमिति नित्यम् ॥ १११ ॥

गुणोंकी नित्यताके समर्थनमें एक दृष्टान्त—पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श वे चार गुण निरन्तर रहते हैं और इन चारों गुणोंका परिणमन भी निरन्तर चलता है और वास्तविक पुद्गल है परमाणु मात्र। उसमें भी रूप, रस, गंध, स्पर्श गुण हैं और उन गुणोंके प्रतिसमय परिणमन होते रहते हैं, किंतु वे अतिसूक्ष्म हैं इंद्रिय से जाने नहीं जाते। उसके सम्बन्धमें स्पष्ट उदाहरण न मिलेगा, किंतु युक्तियोंसे वह सब परिमाण सिद्ध होगा। जब अनेक अणु मिलकर स्कंधरूप हो जाते हैं तो स्कंध अवस्थामें भी वे पुद्गल ही तो हैं। उस समय उन पुद्गलके रूपादिक गुण व्यक्त हो जाते हैं। तो जितने भी ये सब कुछ दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सब पुद्गल हैं, स्कंध हैं, अनन्त परमाणुओंके पिण्ड हैं। यहाँ रूप आदिक गुण व्यक्त हो रहे हैं। जैसे कोई एक आमका फल है उस फलमें देखते हैं कि जबसे उसका जन्म होता है तबसे जब तक वह रहता है, तब तक उसमें अनेक रङ्ग बदलते रहते हैं। जब बिल्कुल बिन्दु बराबर आमफल सर्वप्रथम होता है तो उसका रूप काला होता है। ज्यों ही वह कुछ थोड़ा बड़ा होता है त्यों ही उसका रङ्ग बदलकर कालासे नीला हो जाता है। उसके पश्चात् कुछ थोड़ा और बड़ा होनेपर रङ्ग हरा हो जाता है। इसके बाद पीला और कभी लाल भी हो जाता है। सड़ने लगनेकी स्थितिमें भी सफेद जैसा हो जाता है। यों उस आमफलमें ये रङ्ग बदले। उदाहरणके लिए दो अवस्थायें ले लो आमकी कच्ची और पक्की अवस्थायें। कच्ची अवस्थामें तो आम हरे रङ्गका होता और पक्वावस्थामें पीले रङ्गका हो जाता है। तो उसमें रूपकी बदल तो हुई। हरेसे पीला हो गया। पर हरे रङ्गसे पीले रङ्गका होनेपर क्या उसका रूपपना नष्ट हो गया ? रूप तो तब भी था, अब भी है और जो ही रूपशक्ति पहिले हरे रूपसे व्यक्त थी वही रूपशक्ति अब पीले रूपसे व्यक्त है। तो रूपशक्ति रूपगुण नष्ट नहीं होता और जब यह रूपपना नष्ट नहीं होता तो इसका अर्थ यह स्पस्ट है कि रूपगुण नित्य है।

समस्तपदार्थोंमें गुणोंकी नित्यताका कथन—जीव पदार्थ हो अथवा अजीव पदार्थ हों, उनमें शक्ति नित्य हुआ करती है। जीव पदार्थमें जो कुछ वर्णन किया जाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है वह क्यों जल्दी ज्ञानमें आता कि हम आप सब जीव हैं। हम आपपर वे परिस्थितियाँ बीत रही हैं। तो थोड़ा भी अपनी ओर ध्यान दें तो जीवकी बातें गुणपर्यायें ये सब अमूर्त होकर भी ज्ञानमें स्पष्ट आती हैं। अजीवमें पुद्गल पदार्थके गुण और परिणमन ये स्पष्ट दृष्टिमें आते हैं, क्योंकि ये इन्द्रिय गोचर हैं। इस कारणसे वे सब सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके विषयभूत होते हैं। अजीवमें शेष द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये ज्ञानमें स्पष्ट नहीं आ पाते, कारण यह है कि ये मैं नहीं हूं और ये इन्द्रिय गोचर नहीं हैं। जीव तो मैं था, मैं हूं इसलिए जीवकी बात स्पष्ट ज्ञानमें आती। और, पुद्गल हैं इन्द्रिय गोचर अतः पुद्गलकी बात भी स्पष्ट ज्ञानमें आती। किन्तु शेष अजीव द्रव्योंकी बात ज्ञानमें स्पष्ट नहीं होती लेकिन युक्तियोंसे प्रमाणसे यह पूर्णतया सिद्ध है कि उन सबमें भी गुण हैं और उन गुणोंके निरन्तर परिणमन हुआ करते हैं। तो चाहे जीव पदार्थ हो अथवा अजीव पदार्थ हो, जो है वह स्वभाववान है। उसी स्वभावके विभाग बुद्धिमें करनेपर गुण प्रतीत होते हैं। तो जैसे पदार्थ शाश्वत हैं इसी प्रकार उनमें होने वाले गुण भी शाश्वत हैं। यों गुण नित्य सिद्ध होते हैं।

वस्तुयथा परिणामि तथैव परिणामिनो गुणाश्चापि।
तस्मादुत्पादव्ययद्वयमपि भवति हि गुणानां तु ॥ ११२ ॥

गुणोंकी कथंचित् अनित्यताका वर्णन–गुण हीका नाम द्रव्य है इस कारण जैसे द्रव्य प्रतिक्षण परिणमनशील है उसी प्रकार गुण भी प्रतिक्षण परिणमनशील है। एक पदार्थको भेद दृष्टिसे गुणोंके रूपमें देखा गया है। और दृष्टिसे एक वस्तुके रूपमें देखा गया है। चाहे गुण समुदायरूपसे देखा तो वही तत्त्व देखा गया, चाहे एक अभेद वस्तुके रूपमें देखा तो वही तत्त्व देखा गया। अब वस्तु तो प्रतिक्षण परिणमनशील है ही, क्योंकि प्रतिक्षण परिणमन हुए बिना सत्त्व ही नहीं रह सकता है। सत्त्वका और क्या अर्थ हुआ ? कूटस्थ नित्य सत्त्व नहीं होता। तो जैसे वस्तु प्रतिसमय परिणमनशील है इसी प्रकार गुण भी परिणमनशील है। तो परिणमनशीलताके कारण जैसे वस्तुका उत्पाद और व्यय होता है अर्थात् नवीन पर्यायके रूपमें आना और पुरानी पर्यायका विलीन हो जाना जैसे ये दो बातें वस्तुमें हैं उसी प्रकार गुणोंका भी उत्पाद और व्यय होता है अर्थात् भेद दृष्टिसे निरखी गई वे शक्तियाँ प्रतिसमय नवीन अवस्था में आती हैं और उनकी पुरानी अवस्था विलीन हो जाती है। यों गुण कथंचित् अनित्य हैं।

ज्ञानं गुणोयथा स्यान्नित्यं सामान्यतयाऽपि यतः।
नष्टोत्पन्नं च तथा घटं विहायाऽथ पटं परिच्छन्दत् ॥ ११३ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उदाहरणपूर्वक गुणोंकी कथंचित् अनित्यताका समर्थन—गुण कथंचित् अनित्य हैं, इस सम्बन्धमें पहिले ही दृष्टान्त दिया जा रहा है। पहिले ज्ञान गुणको नित्य सिद्ध किया था उस ही ज्ञान गुणको अब इस दृष्टिसे अनित्य सिद्ध कर रहे हैं। यद्यपि सामान्य दृष्टिसे ज्ञान गुण नित्य है तो भी घटको छोड़कर पटको जानता हुआ जैसे ज्ञान रहता है याने जिसको जान रहा था उसको छोड़कर कुछ नवीन विषयको जानता है तो वहाँ ज्ञान गुण नष्ट और उत्पन्न ही तो हुआ। यह तो छद्मस्थ पुरुषोंकि ज्ञानगुणकी परिस्थितिका दृष्टान्त है क्योंकि वहाँ समस्त पदार्थोंका एक साथ ज्ञान नहीं होता। भिन्न-भिन्न विषयोंका क्रमशः ज्ञान चलता है। तो वहाँ यह बात बड़ी सुगमतता विदित हो जाती है कि अभी घटका ज्ञान जाना जा रहा था और अब घट को छोड़कर पटको जानने लगा तो वहाँ अन्तर आ गया। अब पटाकार ज्ञान बना। पहिले घटाकार ज्ञान था अर्थात् घट विषयक ज्ञान तो नष्ट हो गया और पट विषयक ज्ञान उत्पन्न हुआ तो यों ज्ञानमें अनित्यता सिद्ध होती है अर्थात् पर्यायकी अपेक्षासे ज्ञान अनित्य है किन्तु अपनी सत्ताकी अपेक्षासे वह ज्ञान नित्य है। ज्ञानकी अवस्थायें बदलते जानेपर भी समस्त अवस्थाओंमें क्या ज्ञानपना नष्ट हो गया? नहीं। तो ज्ञानपनेकी दृष्टिसे ज्ञान गुण नित्य है और पर्यायकी दृष्टिसे ज्ञानगुण अनित्य है। मूल सिद्धान्त यह है कि जो कुछ भी है वह उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। सत्ताका स्वरूप ही यह है। उत्पाद व्यय न हो तो अस्तित्व क्या? किसीके बारेमें कुछ सोचा ही नहीं जा सकता, वह अस्तित्व क्या होगा जहाँ पर्याय और व्यक्ति नहीं है, और नवीन पर्याय हुई उसके नष्ट होनेको मूलतः नष्ट मान लिया तो इसके मायने यह है कि अब जो उत्पन्न होगा वह कुछ एकदम नवीन होगा, असत्का उत्पाद होगा। सो जो असत् है, है ही नहीं, कुछ भी नहीं, उसका उत्पाद क्या हो सकता है? तो यों गुण पर्याय दृष्टिसे अनित्य होते हैं। अब गुणोंकी अनित्यताके सम्बन्धमें अन्य दृष्टान्त देते हैं।

सन्दृष्टी रूपगुणो नित्यश्चामेषि वर्णमात्रतया।
नष्टोत्पन्ने हरितात्परिणममानश्च पीतत्त्वेन ॥ ११४ ॥

गुणोंकी कथंचित् अनित्यताका एक दृष्टान्त—जैसे आममें रूप सदा रहता है इस कारण रूप गुण नित्य है, लेकिन जब हरेसे पीत अवस्थामें बदला तो पीत अवस्थाकी दृष्टिसे उत्पन्न हुआ और हरित दशाकी दृष्टिसे नित्य हुआ। और, रूप शक्तिमें, पुद्गलमें वही एक शाश्वत् है। है और बदलता रहता है। ये दो बातें प्रत्येक सत्में हैं, किन्हीं सत्में बदलनेकी बात दृष्टिगोचर नहीं होती, लेकिन सत्त्वका नियम यह है कि वह प्रतिसमय अपनी वर्तना करती रहती है। हम आकाश द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यके सम्बन्धमें कुछ भी कल्पना नहीं कर सकते कि वह क्या बदलता होगा, लेकिन सत् है वह। अतएव प्रतिसमय अपनी कोई अवस्था बनाता है, अमूर्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, अमूर्तकी अवस्थाको हम नहीं जान सकते। लेकिन अमूर्त भी सत् हो, वह भी प्रतिसमय किसी न किसी सदृश अवस्थाको बनाये रहता है। जीव अमूर्त है लेकिन विकारी होनेसे वहाँके परिणमनकी बात सुगमतया विदित होती है। तो परिणमन चलता जाता है। किसका परिणमन है? कोई एक हो परिणमैता तो उसका परिणमन माना जाय! तो अभेद दृष्टिमें एक वस्तु और एक परिणमन। परिणमनकी दृष्टिसे अनित्य है और वस्तुत्वकी दृष्टिसे चूंकि वह शाश्वत है इसलिए अनित्य है। तो अभेद दृष्टिसे देखे गए पदार्थको नित्य अनित्य समझा उसीको भेद दृष्टिसे तिर्यंक अंश कल्पना करके गुणोंके रूपमें देखा तो यही बात यहाँ हुई। वे गुण नवीन नवीन अवस्थामें आये सो तो उत्पाद हुए और नवीन अवस्थाको विलीन किया यह उनका व्यय हुआ। यो यों गुण भी कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य हैं।

ननु नित्या हि गुणा अपि भवन्त्वनित्यास्तु पर्ययाः सर्वे।
तत्किं द्रव्यवदिह किल नित्यात्मका गुणाः प्रोक्ताः ॥ ११५ ॥

गुणोंकी अनित्यताके विरोधमें एक आरेका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि गुण तो नित्य होते हैं और पर्याय सब अनित्य होती हैं। यह बात तो निश्चय है और द्रव्य है गुणपर्यायरूप इसलिए द्रव्य नित्यानित्यात्मक है। ऐसी व्यवस्था सही जचेगी। द्रव्यके समान गुणोंको भी नित्यानित्यात्मकता बताया गया है। शङ्काकारका यह अभिप्राय है कि जैसे एक द्रव्यको निरखा तो उस द्रव्यके समझनेके लिए दो प्रकारका अंश विभाग किया गया। एक तो कालकी दृष्टिसे और दूसरे शक्तिके अंशोंकी दृष्टिसे। पदार्थ स्वभावमात्र है। स्वभाव उसका कोई एक है जो कि अवक्तव्य है। उस ही स्वभावको समझनेके लिए भेद दृष्टिसे उनकी शक्तियाँ दिखाई हैं। तो शक्ति शाश्वत् है, केवल एक शक्तिरूपसे ही तो देखा। इस दृष्टिमें तो गुण ही नजर आया और वह अंश नित्य है और उन गुणोंका जो परिणमन है वह पर्यायें हैं तो उनका नाम पर्याय ही है। पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। तो अर्थ यह हुआ कि पर्याय अनित्य होती है, गुण नित्य होते हैं और गुण पर्यायात्मक द्रव्य है। स्थिति तो यह होनी चाहिए लेकिन बताया यों जा रहा कि गुण भी नित्य है और अनित्य है, इस शङ्काका अब समाधान करते हैं।

सत्यं तत्र यतः स्यादिदमेव विवक्षितं यथा द्रव्ये।
न गुणेभ्यः पृथगिह तत्सदिति द्रव्यं च पर्ययाश्चेति ॥ ११६ ॥

द्रव्यवत् विवक्षावश गुणोंकी कथंचित् अनित्यता बताते हुए उक्त आरेकाका समाधान—यद्यपि उपरोक्त शङ्कामें कुछ सत्य बात भी विदित होती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब भिन्न भिन्न दृष्टिसे गुण और पर्यायोंकी बात देखी गई तब यह कहना ठीक है कि गुण नित्य है और पर्याय अनित्य है। लेकिन जब हम उस एक ही द्रव्यको एक अभेद रूपमें न निरखकर भेदरूपमें उस पदार्थको देख रहे हैं ऐसी दृष्टिमें जो गुण नजर आये वे सब गुण द्रव्यस्थानीय ही समझना चाहिए। ऐसी दृष्टिमें चाहे एक शब्दसे उसे पदार्थ कहलो और चाहे अनेक शब्दोंसे गुण कहलो। यहाँ गुणोंको निरखकर पदार्थों को ही देखा गया है। गुणोंकी शक्ति मात्रको नहीं देखा गया। सुननेकी दृष्टिसे तो वह नित्य कहा जायगा मगर जब उन शक्तियोंको शक्तिरूपसे न देखकर एक पदार्थके निरखनेके लिए ही शक्तियाँ देखी जा रही हैं तो उससमय ये सब शक्तियाँ पदार्थका ही सारूप्य करेंगी अर्थात् जो पदार्थमें बात घटित करना है वही बात इन सब गुणोंमें घटित होगी। गुण यद्यपि पदार्थके शक्त्यांश हैं, लेकिन उन शक्त्यांशोंको दो दृष्टियोंसे देखा जाता है—एक तो केवल शक्तिरूपसे और एक पदार्थरूपसे। तो इस दृष्टिमें निरखे गए गुण सामान्यरूपसे तो नित्य हुए और विशेष दृष्टिसे अनित्य हुए। गुणोंसे भिन्न कोई सत् पदार्थ वस्तु नहीं है। द्रव्य पर्याय और गुण तीनों ही सत्स्वरूप हैं। इस कारण जैसे द्रव्यमें विवक्षावश कथंचित् नित्यता और कथंचित् अनित्यता विदित होती है। पदार्थ परिचय पूर्णतया हो, इसके उपायमें जब अभेद दृष्टिसे परिचय हुआ तो उसका नाम द्रव्य है। और जब पदार्थका पूर्ण परिचय हो, इस ही पद्धतिमें गुणों का परिचय किया तो गुण समुदायका नाम द्रव्य है यह दीखा अथवा गुण समुदाय दीखा ? बात एक ही देखी गई। तब जो बात द्रव्यमें नित्यानित्यात्मकताके लिए है वही बात गुणोंमें भी नित्यानित्यात्मकताके लिए है। इस कारण द्रव्यकी भाँति गुण भी कथञ्चित् नित्य और कथंचित् अनित्य हैं। जैसे सामान्य दृष्टिसे द्रव्यको देखनेपर वह अनित्य है और विशेष दृष्टिसे कालकृत विभागसे देखनेपर द्रव्य अनित्य है, इसी प्रकार गुण भी सामान्य रूपसे देखनेपर नित्य हैं और उनकी अवस्थायें देखनेपर वे अनित्य हैं। इसके लिए ज्ञान गुणका दृष्टान्त दिया गया है और पुद्गलमें रूपगुणका दृष्टान्त दिया गया है।

अपि नित्याः प्रतिसमयं विनापि यत्नं हि परिणमन्ति गुणाः।
स च परिणामोऽवस्था तेषामेव न पृथक्त्वसत्ताकः ॥ ११७ ॥

गुणोंकी अवस्थाका गुणोंसे पार्थक्य न होनेसे गुणोंकी कथंचित् अनित्यताका निरूपण—शङ्काकारकी उक्त शङ्काके उत्तरमें कह रहे हैं—शङ्काकारकी शङ्का यह थी कि ऐसा माना जाय कि गुण तो नित्य होता है और पर्यायें अनित्य होती हैं, और माना ही गया है। फिर क्या कारण है कि गुणोंको भी द्रव्यकी तरह नित्यानित्यात्मक बताया है ? इसके उत्तरमें भी ऊपरकी गाथामें समाधान किया है, अब और भी उस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण कर रहे हैं। यद्यपि गुण नित्य हैं तो भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनायास बिना किसी प्रयत्नके प्रतिसमय परिणमन करते ही हैं। गुण और द्रव्य ये अलग-अलग वस्तु नहीं हैं। किन्तु एक ही वस्तुको भेद दृष्टिसे निरखकर कहा जाता है तो गुण शब्दसे कहा गया है और अभेद दृष्टिसे निरखकर कहा जाय तो द्रव्य शब्द से कहा जाता है। तो द्रव्यमें भेद दृष्टिसे गुण देखे गए तो भेद दृष्टिसे ही तो निरखना होगा। तो गुणरूपसे भी देखा तो उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका शील इन गुणोंमें भी रहेगा। तो यह दिख रहा अब कि गुण अनायास प्रतिसमय निरन्तर परिणमता ही रहता है। किसी पुरुषको यत्न करना नहीं पड़ता। पदार्थ है तो वह परिणमता ही रहता है। ऐसी उन पदार्थोंमें प्रकृति है। तो जब गुण प्रतिसमय परिणमते रहे तो उनका जो परिणमन है, परिणाम है वह गुणोंकी अवस्था विशेष ही तो है। वह परिणाम गुणोंसे भिन्न सत्ता वाला नहीं है। याने यों धारणा बनाना कि द्रव्यमें गुण और पर्यायें होती हैं, सो गुण तो नित्य है, पर्यायें अनित्य हैं। यों गुणसे भिन्न पर्याय कुछ जुदी चीज नहीं है। द्रव्यसे भिन्न गुण और पर्याय कोई जुदी चीज नहीं हैं। वे गुण परिणमनशील हैं और तब उनका जो परिणाम है वह गुणोंसे भिन्न नहीं है, इस कारण गुणोंको नित्य और अनित्य कहा गया है।

ननु तदवस्थो हि गुणः किल तदवस्थान्तरं हि परिणामः।
उभयोरन्तर्वर्तित्वादिह पृथगेतदेवमिदमिति चेत् ॥ ११८ ॥

द्रव्य, गुण, पर्यायकी भिन्नताका शंकाकार द्वारा कथन — अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! गुण तो सदा एक सा रहता है और पर्याय एक समयसे दूसरे समयमें सर्वथा जुदी रहती हैं। और परिणाम तथा गुणके बीचमें रहने वाला जो द्रव्य है वह कोई भिन्न ही पदार्थ है। तो यों द्रव्य गुणपर्याय ये तीनों भिन्न भिन्न वस्तु हैं। तब वहाँ ऐसा निश्चय बन जाता है कि गुण तो नित्य हैं, पर्याय अनित्य हैं और गुण पर्याय वाला जो द्रव्य है वह नित्यानित्यात्मक है और यों निर्णय बन जानेसे इस प्रसंगमें द्रव्यकी भाँति गुण भी जो नित्यानित्यात्मक कहा है वह युक्तिसंगत नहीं बैठता। इस कारण भी प्रश्न ज्योंका त्यों अवस्थित रहता है कि क्या कारण है कि द्रव्यकी तरह गुणोंको भी नित्यानित्यात्मक बताया जा रहा है। जब उस पदार्थमें गुण-पर दृष्टि देते हैं तो गुण शाश्वत् है, एक सा है। जैसे पुद्गलमें रूप गुण है तो सदैव रूप गुण है और सदा रहने वाला रूपगुण अपने स्वरूपमें एक सा ही है। तब देखो गुण नित्य ठहरा ना ! अब पर्यायें एक समयसे दूसरे समयमें जुदी ही होती हैं। सर्वथा भिन्न भी हैं क्योंकि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका व्यतिरेक है, अभाव है। साथ ही दो पर्यायें एक साथ नहीं रह सकती। एक गुणकी पर्यायोंमें परस्पर विरोध है। पूर्वपर्याय का और उत्तर पर्यायका एक साथ रहना बनता नहीं, इन सब बातोंसे विदित होता है कि पर्यायें अनित्य हैं, मगर जिनमें ये रहती हैं पर्यायें और गुण रहते हैं, दोनोंका जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्तर्वर्ती है वह द्रव्य कोई भिन्न ही है। तब वह परिणमन अनित्य ही रहा और गुण नित्य ही रहे। फिर गुणोंको द्रव्यकी तरह नित्यानित्यात्मक क्यों कहा गया ? अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं।

तन्न यतः सदवस्थाः सर्वा आम्रेडितं यथा वस्तु।
न तथा ताभ्यः पृथगिति किमपि हि सत्ताकमनन्तरं वस्तुः ।११६

पर्याय, गुण और द्रव्यके एक दूसरेसे पार्थक्यके अभावका समाधानमें कथन—उपरोक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि पर्याय कोई अलग तत्त्व नहीं, वह गुणों की ही अवस्था विशेष है। वस्तु तो द्रव्यगुणपर्यायात्मक है। इन तीनोंका नाम लें तो वस्तुका बोध होता है। अतएव द्रव्य कहा तो वस्तु ही कहा गया, गुण कहा तो वस्तु ही कहा गया। उन सब अवस्थाओंसे जुदा कोई भिन्न सत्त्व रखने वाला न तो गुण है और न कोई द्रव्य पर्याय हैं। शङ्काकारका अभिप्राय यह था उस शङ्काको दुहरानेमें कि पर्याय गुणोंसे जुदी चीज होती है। पर्यायको गुणसे अभिन्न बताकर गुणको अनित्य रूप भी देना यह सिद्धान्त नहीं युक्तिमें बैठता है, क्योंकि पर्यायका धर्म गुणमें नहीं गुणका धर्म पर्यायमें नहीं। गुण रहता है शाश्वत, पर्याय होती है क्षणिक। तो ये पर्यायें, यह अवस्था विशेष गुणकी है, ऐसा ही कहना जब ठीक नहीं है तब गुणोंको नित्यानित्यात्मक कहना कैसे ठीक है ? युक्तिपूर्वक विचार करनेपर और निष्पक्ष ढङ्ग से निरखनेपर यह शङ्का निर्मूल हो जाती है, क्योंकि परिणमन यद्यपि है प्रतिसमय भिन्न भिन्न, क्योंकि वह समयभेदकी बात है। जो अवस्था पहिले समयमें है वह अवस्था द्वितीय समयमें न होगी। यों पर्यायें भिन्न भिन्न हैं।

उदाहरणपूर्वक द्रव्य गुण पर्यायके अपार्थक्यकी सिद्धि—एक जीव जिस समय मनुष्य है उस समय देव नहीं, जब देव है तब मनुष्य नहीं। दो भव एकमें एक साथ नहीं हो सकते, अतएव पर्यायें जुदे-जुदे हैं। लेकिन जिस समय जो भी परिणमन है वह परिणमन गुणोंसे भिन्न नहीं है। तो गुणोंकी ही अवस्था विशेष है। जैसे कोई यों कहने लगे कि किसीने अंगुलीको सीधा टेढ़ा गोलमटोल किया तो कहते हैं कि अंगुली तो सदा रहती है और टेढ़ापन सीधापन ये सदा नहीं रहते। ये परस्पर भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि जब अंगुली सीधी है तब टेढ़ी नहीं, जब टेढ़ी है तब सीधी नहीं। तो अंगुली भिन्न हो गयी और टेढापन, सीधापन ये भिन्न होगए। क्या ऐसा प्रमाणमें आता है ? स्पष्ट सामने नजर आ रहा कि अंगुली सीधी हुई तो वह सीधापन अंगुली से भिन्न नहीं है। अंगुली टेढ़ी हो तो टेढ़ापन अंगुलीसे भिन्न नहीं है। अंगुलीकी ही तो वह अवस्था विशेष है। यों ही जैसे आम्रफलमें हरे रङ्गसे पीले रङ्गकी पर्याय बनी तो यद्यपि हरा और पीला परस्पर भिन्न भिन्न हैं लेकिन जिस रूप शक्तिकी हरी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्याय बनी थी उस ही रूप शक्तिकी पीली पर्याय है। जब हरा था तब रूपसे भिन्न न था, जब पीला बना तब भी रूप गुणसे भिन्न न बना। तो यों अवस्थायें जिस समय जो भी होती हैं उस समय वे उस गुणकी पर्याय हैं और वह परिणाम उस समय गुणों से भिन्न नहीं है। तो जब प्रत्येक समयमें इस तरह दृष्टिमें आया कि पर्याय गुणोंसे भिन्न नहीं है तो ऐसे ही समस्त पर्यायोंकी बात समझना है कि किसी भी द्रव्यकी सारी पर्यायें द्रव्यके गुणोंसे भिन्न नहीं हैं।

पर्यायको गुणसे सर्वथा पृथक माननेपर 'यह किसकी पर्याय है' यों सम्बन्ध हो सकनेकी असिद्धिका प्रसङ्ग—अब युक्तिपूर्वक भी सोचिये ! कि यदि गुणोंसे सर्वथा भिन्न ही माना जाय पर्यायको तो वहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यह पर्याय किसका है ? उसका उत्तर ही न बनेगा। सफेद हरा, पीला, नीला आदिक अवस्थायें किसकी हैं ? उत्तर होता है कि रूप गुणकी हैं। क्यों हैं रूप गुणकी ? जब रूप गुण भिन्न है और ये हरि पीली आदिक अवस्थायें भिन्न हैं तो भिन्न–भिन्न इन अवस्थाओंका सम्बन्ध ही क्या है ? कैसे कही जाय भिन्न वस्तुको किसी भिन्नका स्व बतानेकी बात? कुछ उत्तर न बनेगा। और, न व्यवस्था बनेगी। तो मानना यह होगा कि परिणामीके बिना परिणाम हो नहीं सकता। तो यहाँ परिणाम हुई अवस्था और परिणामी हुआ गुण। और, वह परिणाम गुणोंसे भिन्न नहीं है। वैसे तो देख लीजिए कि पर्याय भिन्न वस्तु नहीं है। पर्याय गुणकी ही अवस्था है। अन्तर केवल दृष्टि और अभेद दृष्टिसे निरखनेका होता है। कोई पुरुष गुणका नाम ही न ले, केवल द्रव्य और पर्याय दो बातोंको देखे तो कोई तथ्य अलग न हुआ वह। बात ही दो हैं। है और उत्पाद व्यय चल रहा है। तो जो एक पदार्थ है वह तो द्रव्य है और उसमें जो परिणति चलती है वे सब पर्यायें हैं। दो ही बातें तो समझने योग्य हैं, द्रव्य और पर्याय। द्रव्य शाश्वत है और पर्याय उस द्रव्यमें प्रतिसमय एक–एक होती रहती है। अब इतनेसे कुछ समझ नहीं बनी। तब उसमें भेद दृष्टिसे कुछ वर्णन आयगा। उस स्वभावको जब देखा, जो द्रव्यका स्वरूप है वह भेददृष्टिसे हमें अनेक शक्तियोंके रूपमें नजर आया। जैसे कि वह एक पर्याय भी भेददृष्टिसे हमें अनेक पर्यायोंके रूपसे नजर आती हैं। तो भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण देखे गए और गुणोंकी परिणतियाँ निरखी गईं। तो अभेद दृष्टिसे जैसे द्रव्यको नित्यानित्यात्मक कहा है यों ही भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण दीखे तो वही बात गुणोंमें भी बनी कि वे भी नित्यानित्यात्मक हैं। परिणतियाँ होती रहती हैं अतएव अनित्य हैं और गुण शक्तिरूप शाश्वत रहा करते हैं इसलिए नित्य हैं।

नियतं परिणामित्वादुत्पादव्ययमया य एव गुणाः।
टङ्कोत्कीर्णन्यायात्त एव नित्या यथा स्वरूपत्वात् ॥ १२० ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामित्व होनेसे गुणोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका वर्णन— जिस प्रकार परिणमन होनेसे गुण उत्पादव्ययमय हैं उसी प्रकार टङ्कोत्कीर्ण न्यायसे अपने स्वरूपरूप होनेके कारण नित्य ही है। यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि द्रव्य तो नित्यानित्यात्मक रहा। गुण केवल नित्य ही होंगे। इस शङ्काके समाधानमें बहुत कुछ वर्णन किया गया था कि गुण भेद दृष्टिसे निरखे गए द्रव्य ही हैं। तब द्रव्यमें जो शील है वही शील गुणोंमें भी होगा। तो यह भी परिणमनशील हुआ कि द्रव्य परिणमनशील है। अब परिणामनशील होनेके कारण उत्पादव्ययरूप गुण माना जायगा। तो जहाँ परिणमनशीलताके कारण परिणामीपनाके कारण गुण उत्पादव्यय स्वरूप हैं तो वे ही गुण चूंकि स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते वे स्वयं उनमें शाश्वत् रहते हैं इस कारण वे नित्य हैं। तो स्वरूप दृष्टिसे नित्य है और परिणामीपनाकी दृष्टिसे अनित्य है। केवल नित्य ही हो कुछ ऐसा है ही नहीं। अथवा मात्र अनित्य ही हो कुछ वह है ही नहीं। हाँ अनित्यपना जिस दृष्टिसे है उस दृष्टिमें ग्रहण किया गया जो तत्त्व है उसे बुद्धिमें अंश कल्पना करके अनित्य कहा गया है और पदार्थमें जिस दृष्टिसे उसका ध्रौव्य जच रहा है उसमें इतने अंश कल्पना करके उसे नित्य कहा गया है। जो कि अपरिणामी जैसा कि अन्य लोगोंने माना है और उतने अंशमें वह अपरिणामी है और पर्याय दृष्टिमें जो अंश पकड़ा गया उसकी दृष्टिमें परिणामी है किन्तु पदार्थ केवल अपरिणामी हो या मात्र परिणामरूप हो सो बात नहीं है। सत्का स्वरूप ही यह है कि वह परिणामी है। अतएव नित्यानित्यात्मक है। इस सम्बन्धमें कुछ लोग अन्य प्रकारकी धारणा रखते हैं, उसको स्पष्ट करते हुए निराकृत करते हैं।

न हि पुनरेकेषामिह भवति गुणानां निरन्वयो नाशः।
अपरेषामुत्पादो द्रव्यं यत्द्वयाधारम् ॥ १२१ ॥

किन्हीं गुणोंके नाशका किन्हीं गुणोंके उत्पादका व नष्टोत्पन्न गुणोंके आधारकी द्रव्यताका निषेध— कुछ लोग मानते हैं कि किन्हीं गुणोंका तो सर्वथा नाश हो जाता है और दूसरे गुणोंका उत्पाद होता है। यह गुणोंकी बात चल रही है और उन उत्पन्न होने वाले और नष्ट होने वाले गुणोंका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है। यह नैयायिक दर्शन है और परिणमन होता है एक दम नवीन। उस परिणमने इस दर्शनमें माना गया है कि पहिलेके गुण सब नष्ट हो जाते हैं और एक दम नवीन गुण उत्पन्न होते हैं। यह बात कुछ इस ढंगकी है कि जैसे लोकव्यवहारमें जिसके गुण कहा करते हैं अब इसमें यह नया गुण आया, अब इसका गुण खतम हो गया। किसीकी कोई आदत निरखकर और किसी पदार्थकी कुछ प्रकृति देखकर उसको गुण कहकर उत्पन्न होना और नष्ट होना कहा करते हैं। जैसे काठ जल गया तो अब उसमें किसी चीजको रखनेकी, बैठालनेकी शक्ति वाला गुण नष्ट हो गया और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

राख होनेपर अन्य कामोंमें आया इस प्रकारका गुण उत्पन्न हो गया। तो परिणमनको ही गुण संज्ञा देकर ऐसा सिद्धान्त बनता है कि पूर्व गुण नष्ट होते हैं और उत्तर गुण पैदा होते हैं और उनका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है। यह दृष्टान्त भी उनकी इस नीतिमें बना कि चूंकि वह परिणमन गुणोंसे भिन्न तो नहीं है उस समय और परिणमन नये बनते हैं, पुराने नष्ट होते हैं तो वे परिणमन गुण कहलाये और लोक-व्यवहारमें इस हीको गुण नामसे प्रसिद्ध भी करते हैं तो उसका आधार लेकर यह सिद्धान्त बना कि गुणोंका सर्वथा नाश होता है और दूसरे गुणोंका उत्पाद होता है और उत्पन्न होने वाले एवं नष्ट होने वाले गुणोंका आधार द्रव्य कहलाता है। जैसे कि जब मिट्टीका घड़ा पकाया जाता है तो पकनेपर हुआ क्या कि कच्चे घड़ेके जो गुण हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं और पक जानेपर दूसरे ही नये गुण पैदा होते हैं। और, उनका आधारभूत जो द्रव्य है वह द्रव्य है ही। इस मन्तव्यके निराकरणमें कहते हैं।

दृष्टान्ताभासोऽयं स्याद्धि विपक्षस्य मृतिकायां हि।
एके नश्यन्ति गुणा जायन्ते पाकजा गुणास्त्वन्ये ॥ १२२ ॥

किन्हीं गुणोंके उत्पाद, किन्हीं गुणोंके विनाशकी सिद्धिमें शङ्काकार का एक दृष्टान्त—नैयायिक दर्शनका जो एक यह उदाहरण है कि जिस समय कच्चा घड़ा अवामें रख दिया जाता है उस समयमें घड़ेके पहिलेके सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। पक्का होनेके समय होता क्या है कि कच्चे घडेमें रहने वाले गुण सब खतम हो जाते हैं और पाक होनेसे उसमें दूसरे ही नये गुण पैदा होते हैं और यह नष्ट होना, उत्पन्न होना इस ढङ्गका है कि अग्निमें जब घड़ेकी पक्वावस्था बनती है तब वह गोल घड़ा बिल्कुल नष्ट हो जाता है, उसके सारे परमाणु अलग अलग बिखर जाते हैं। यहाँ तक नष्ट होना वैशेषिक दर्शनमें कहा गया है। इस सम्बन्धमें नैयायिक और वैशेषिकका कुछ मिलता जुलता भाव है। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें वह विशेष ऐसा बिखर जाता है कि परमाणु परमाणु अलग हो जाते हैं और फिर शीघ्र ही जब वह घड़ा पकनेपर लाल रङ्गका बनता है तो होता क्या है कि पाकसे उत्पन्न होने वाले परमाणु सारे अनुकूल इकट्ठे हो जाते हैं, फिर उन परमाणुओंसे कपाल बनते हैं। यों समझिये कि जैसे घड़ा फूटनेपर जो छोटे छोटे हिस्से अलग हो जाते हैं तो परमाणु मिलकर आये इस ढङ्गसे कि वे छोटे छोटे टुकडे हुए, वे आकर मिले और मिलकर घड़ा बने, तो कच्चे घडेके बाद घडेकी पक्वावस्था हो जायगी। इतना परिवर्तन यहाँ माना गया है कि पकनेकी हालतमें दो बातें हुई—कच्चे घडेके सभी गुण नष्ट हो गए और ऐसा होकर नष्ट हो गए कि परमाणु परमाणु बिखरकर अलग हो गए और एक-दम उसी समय पाकज परमाणु कपाल रूप रखकर छोटे छोटे हिस्से बनकर एकदम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक एक होकर फिर वे लाल घड़ारूप बन गए। इस सम्बन्धमें यदि कोई उन दार्शनिकोंसे प्रश्न करे कि इससे तो ऐसा समय नहीं जाना जाता कि इस समय वे परमाणु इकट्ठे होकर आ रहे हैं, ऐसा भेद तो नजर नहीं आता। सो उसका उत्तर उनका यह है कि कच्चे घडेके सब परमाणु बिखर गए, उसके बाद एकदम कपालरूप बनकर वे परमाणु एकत्रित होते हैं तो उसमें इतना सूक्षम समय लगता है कि जिस सूक्ष्मताके कारण समय समयका भेद ही नहीं जाना जा पाता। तो इन दर्शनोंमें इस दृष्टान्तमें यह बताया है कि किन्हीं गुणोंका नाश और किन्हीं गुणोंकी उत्पत्ति होती है और उन नष्ट होने वाले और उत्पन्न होने वाले गुणोंका जो आधार है वह द्रव्य कहलाता है।

किन्हीं गुणोंके उत्पादकी व किन्हीं गुणोंके विनाशकी शङ्का–समाधान
उक्त दर्शन और उक्त दृष्टान्त सर्वथा बाधित है। यह किसी भी बुद्धिमान पुरुषकी बुद्धिमें न आ सकेगा कि जब वह कच्चा घड़ा अग्निमें तपाया गया तो वहाँ घडेके गुणोंका नाश हुआ और वह सारा घड़ा अग्निमें फूटकर बिखरकर समाप्त हो गया। और शीघ्र ही अपने आप ही फिर कोई लाल परमाणु पाकज परमाणु खपरियाँ बन कर उन खपरियोंका समुदायरूप होकर घड़ा बन गया हो, ऐसा किसीके भी दृष्टान्तमें नहीं आता है। तो यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष बाधित है और इस दृष्टान्तको देकर अपना यह मंतव्य बनाना कि गुणोंका सर्वथा नाश होता है और नवीन ही गुणोंकी सर्वथा उत्पत्ति होती है, यह सिद्धान्त मिथ्या है। और, यह तो एक कच्चे घडेके बाद पक्व घड़ा बननेकी बात है, जिसका कि एकदम परिणमन विभिन्न नजर आता है। लेकिन परिणमन तो प्रत्येक वस्तुमें निरन्तर होता रहता है। किसीका परिणमन अति विभिन्न हो तो समझमें आता है, किसीका बारीकीसे समझमें आता है, और यों मानने से तो सभी जगह प्रत्यक्षसे ही बाधा है। कोई बच्चा शरीरमें बढता है तो जैसे मानो किसी समय दो हाथ प्रमाण बच्चा है और अब वह एक अंगुल और बढ़ गया तो क्या वहाँ ऐसा ही होना पड़ेगा कि उस शरीरके सारे परमाणु बिखर गए और फिर खण्ड खण्ड होकर परमाणु आकर फिर एकदम जम गए। अथवा कोई बालक पहिले कोमल शरीर वाला है और जवानी आनेपर उसका शरीर कड़ा होता है तो कोमल शरीरमें और कडे शरीरमें फर्क है न, तो वहाँ भी ऐसा मानना पड़ेगा कि उस शरीरके सारे परमाणु पहिले बिखर गए और फिर टुकड़ोंके रूपमें कड़े परमाणु आये और फिर मिलकर वह शरीर बना। यों सभी पदार्थोंमें अव्यवस्था बन जायगी। इससे गुणोंका सर्वथा नाश अथवा सर्वथा उत्पाद मानना मिथ्या है।

तत्रोत्तरमिति सम्यक् सत्यां तत्र च तथा विधायां हि।
किं पृथिवीत्वं नष्टं न नष्टमथ चेत्तथा कथं न स्यात् ॥१२३॥

शंकाकारके दृष्टान्तकी असंगतता बताते हुए गुणोंकी नित्यताका समर्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिन दार्शनिकोंका यह मत है कि किन्हीं गुणोंका तो सर्वथा नाश होता है और दूसरे ही नये गुणोंकी उत्पत्ति होती है और उत्पन्न होने वाले एवं नष्ट होने वाले गुणोंका आधार द्रव्य है उनका उत्तर इतनेमें ही हो जाता है कि यदि उनकी अपेक्षा जो कि अग्निमें घडेको रखनेसे क्या घडेकी मिट्टीका विनाश हो जाता है ? सभी कहेंगे कि उस मिट्टीका नाश तो नहीं होता। देखा भी जाता है कि वहींकी वही मिट्टी जो कच्ची थी वह पक गई तो इसमें यह बात कहाँ रही कि कच्चे घडेके गुण और परमाणु वे सबके सब बिखर जाते है और पाकज गुण नयेके नये सारे आया करते हैं। यह बात यहाँ कैसे बनेगी ? तो जब मिट्टीका नाश नहीं होता तो घडेके गुणोंमें नित्यता कैसे न रही ? नित्य न रहे वे गुण और उन गुणोंने अपनी अवस्था बदलकर एक नवीन अवस्था धारण कर ली तो यों यह सिद्ध हो गया कि वे गुण कथंचित् नित्य हैं और कथंचित् अनित्य हैं।

ननु केवल प्रदेशाद्रव्यं देशाश्रया विशेषास्तु।
गुणसंज्ञका हि तस्माद्भवति गुणेभ्यश्च द्रव्यमन्यत्र ॥ १२४ ॥

तत एव यथा सुघटं भङ्गोत्पादध्रुवत्रयं द्रव्ये।
न तथा गुणेषु तत्स्यादपि च व्यस्तेषु वा समस्तेषु ॥ १२५ ॥

द्रव्यकी नित्यता व गुणोंकी अनित्यताकी सिद्धिमें शङ्काकारका कथन
शङ्काकार यहाँ कहता है कि जो प्रदेश हैं सो ही तो द्रव्य कहलाते हैं ना और देशके आशयसे जो विशेष रहता है वह गुण कहलाता है। तो देखो ! देशमात्र चीज हो और उसका आशय रहने वाला विशेष स्वतंत्र हो इस कारण गुणोंसे द्रव्य भिन्न है। जब गुणोंसे द्रव्य भिन्न है तब उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों द्रव्यमें जिस प्रकार सुघटित होते हैं उस प्रकार गुणोंमें नहीं होते। उत्पादव्ययध्रौव्य ये धर्म तो रहते हैं द्रव्यमें अब उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मक द्रव्यके आधारसे जो विशेष रहे, गुण रहे उनमें उत्पादव्ययध्रौव्यमयता न रहेगी, क्योंकि देश आधार है, गुण आधेय पदार्थ है। तो जो बात द्रव्यमें है वही बात किसी गुणमें हो जाय अथवा सारे गुणोंके समुदायमें हो जाय सो न हो सकेगा। शङ्काकारके आशयसे यहाँ यह बात जाहिरकी गई कि द्रव्यरूप देश तो नित्य है, उसकी अपेक्षासे ध्रौव्य है वह द्रव्य, पर उसके आधारमें जो गुण रहते हैं वे बिखरते हैं, विलीन होते हैं नये आते हैं, इस कारण गुणरूप विशेषमें उत्पाद और व्यय होते हैं। यहाँ दो बातें जाननी चाहिएं शङ्काकारकी ओरसे कि द्रव्य है, नित्य है और द्रव्यमें रहने वाले गुण अनित्य हैं, क्योंकि वे अदल बदल करते रहते हैं और नवीन नवीन उत्पादमें आया करते हैं। अब उस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यतः क्षणिकत्वापत्तेरिह लक्षणाद्गुणानां हि ।
तदभिज्ञानविरोधात्क्षणिकत्वं बाध्यतेऽध्यक्षात् ॥ १२६ ॥

गुणोंकी क्षणिकताकी सिद्धिमें बाधा बताते हुए उक्त शंकाका समाधान उपर्युक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्यको भिन्न, गुणको भिन्न मानकर सिद्धान्त बनानेसे गुणोंमें क्षणिकता आ जायगी, किन्तु गुणोंमें क्षणिकता प्रत्यक्ष बाधित है। प्रत्यभिज्ञानसे प्रत्यक्षसे यह सिद्ध होता है कि जो गुण कल था वह ही आज है। प्रत्यभिज्ञानसे यह जाना जाता है यह वही है जो पहिले था। तो यों प्रत्यभिज्ञानके बलसे गुणोंमें नित्यताकी ही प्रतीति होती है, इस कारण ऐसा भेद न किया जा सकेगा कि प्रदेशरूप द्रव्य तो अलग है और उसके आधारमें रहने वाले गुण अलग हैं, किन्तु गुण ही द्रव्य हैं, गुण आधेयरूपसे रहते हुए जो द्रव्य एक पदार्थ है जिसमें गुण आ जाते हों ऐसी बात नहीं। वस्तु एक अखण्ड है और वह किस प्रकार है यह भी बताया जा सकता, किन्तु भेद दृष्टिसे जब विभाग करते हैं, कथन करते हैं तो वहाँ यह प्रकट होता है कि द्रव्यमें गुण रहते हैं। गुण कुछ अलग नहीं है। पर समझनेके क्षेत्रमें आधार आधेय गुण गुणी आदिक भेद करके समझाया जाता है। तब जैसे द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म है इसी प्रकार द्रव्यको ही समझनेके लिए किया गया अंशरूप गुण भी नित्यानित्यात्मक है। यहाँ यह ऐसा स्वतंत्र पदार्थ न मानना कि आधारभूत द्रव्य तो कोई प्रथक वस्तु है और आधेयभूत गुण कोई प्रथक वस्तु है।

अपि चैवमेकसमये स्यादेकः कश्चिदेव तत्र गुणः ।
तन्नाशादन्यतरः स्यादिति युगपन्न सन्त्यनेकगुणाः ॥ १२७ ॥

गुणोंका उत्पादव्यय मानने वालोंके प्रति दोषापत्तिका वर्णन—गुणोंका उत्पादव्ययरूप विशेष माननेसे अर्थात् गुणोंको ध्रुव तो न माना जाय किन्तु जो नया उत्पन्न हुआ, जिसे पर्याय कहते हैं अवस्था, उसे ही गुण मात्र जानकर गुणको उत्पादव्यय मानें तो इसमें यह दोष है कि द्रव्यमें एक समयमें कोई एक गुण ठहरेगा। जब गुण उत्पादव्यय रूप है तो कोई सा भी गुण रहा, कार्य एक द्रव्यमें, वह नष्ट हो तब कोई दूसरा गुण आ सके। एक साथ द्रव्यमें अनेक गुण न रह सकेंगे और ऐसी बात मान ली जाय तो द्रव्यका परिचय न बन सकेगा। द्रव्यका परिचय तो उन अनेक गुणोंको उन शक्त्यांशोंको समझनेसे प्राप्त होता है। अब गुणमें तो माना नहीं, उसे मान लिया पर्यायकी तरह जिससे कि एक गुण एक कालमें एक द्रव्यमें रह सकेगा अनेक गुण न ठहर सकेंगे। तब द्रव्यकी सम्पन्नता कैसे विज्ञात हो सकेगी। इससे गुणोंको तो उत्पन्न और विलीन माना जाय और द्रव्यको ध्रुव माना जाय, इस तरह की व्यवस्था बनाना विवेकपूर्ण नहीं है। न ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है न युक्तिसे सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है। देखिये ! इस मंतव्यमें किस तरह प्रत्यक्षसे बाधा आती है कि द्रव्यमें एक समयमें एक गुण रहे और उसका उत्पाद हुआ था, वह नष्ट हो जाय तो दूसरा गुण आयगा, ऐसी मान्यतामें प्रत्यक्षसे बाधा आती है, सो भी बात दिखलाते हैं।

तदसद्यतः प्रमाणदृष्टान्तादपि च बाधितः पक्षः ।
स यथा सहकारफले युगपद्वर्णादिविद्यमानत्वात् ॥ १२८॥

सर्व गुणोंकी एक साथ सत्ता होनेसे शंकाकारके कथनकी बाधितता—शङ्काकारकी यह शङ्का थी कि इस तरह मान लीजिये कि जो प्रदेश हैं वे ही द्रव्य कहलाते हैं और वे नित्य हैं और उनमें जो गुणरूप विशेष हैं वे अनित्य हैं तो गुणोंका उत्पादव्यय मान लिया जाता है। इस ही शङ्काके उत्तरमें कहा जा रहा है कि ऐसा माननेसे पहिली बात तो यह है कि गुण क्षणिक बन जायेंगे, और गुण क्षणिक हैं यह बात प्रत्यक्षसे बाधित है और प्रत्यभिज्ञानसे बाधित है। दूसरा दोष इसमें यह आता है कि प्रदेश मान लिया अलग है उसके सहारे मान लिया गुण तो प्रदेशरूप द्रव्यमें गुण एक ही रह पायगा, क्योंकि गुणोंका उत्पादव्यय माना है। तो जब एक गुण विलीन हो जाय तब दूसरा गुण उत्पन्न हो सकेगा, क्योंकि उत्पाद व्यय करने वाले पदार्थ एक साथ अनेक नहीं हो पाते, वे क्रमसे ही होते हैं। तो यों द्रव्यमें एक साथ अनेक गुण न रहेंगे। इसपर यदि कोई यह विचार ले कि द्रव्य एक समयमें एक ही गुण रहता है तो रहा आये। सो ऐसा विचार चल नहीं सकता, क्योंकि इसमें प्रमाणसे और दृष्टान्तों से बाधा आती है। देखिये ! जैसे आमका फल है, उसमें एक ही साथ तो पाये जा रहे हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण। वहाँ यह बात तो नहीं है कि आममें इस रूप गुण है तो रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं। जब रूप विलीन हो जाय नष्ट हो जाय तो रस आदिकमें से फिर किसी एकका नम्बर आये ऐसी बात वहाँ नहीं है। एक ही साथ सब गुण हैं। हाँ उन गुणोंका उत्पाद क्रमसे होता है इसलिए जितने गुण हैं उतनी ही पर्यायें प्रतिसमय द्रव्यमें रहती हैं हाँ एक गुणकी अनेक पर्यायें एक साथ नहीं रह सकती, तो द्रव्यमें एक ही गुण माना जाय इसमें प्रत्यक्षसे बाधा आती है, इस कारण गुणकी मान्यता ठीक नहीं है। अनेक गुण ही द्रव्य कहलाते हैं, इसके विरुद्ध कुछ भी कल्पना करनेमें निर्दोषता नहीं आ सकती।

अथ चेदिति दोषभयान्नित्याः परिणामिनस्त इति पक्षः ।
तत्किं स्यान्न गुणानामुत्पादादित्रयं समन्यायात् ॥ १२९ ॥

द्रव्यकी भांति गुणोंमें भी उत्पादादित्रय होनेका फलितार्थ—उक्त कथन से कुछ स्पष्ट होनेके बाद जब यह जिज्ञासु इस निर्णयपर आता है कि गुण नित्य और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामी होते हैं। इसके विरुद्ध अर्थात् गुणोंको उत्पन्न और विलीन होना माननेपर दोष बताये गये थे, उन दोषोंके भयसे यदि यह मान लेते हैं कि जिज्ञासुके गुण नित्य और परिणामी होते हैं। नित्यका अर्थ है जो सदाकाल रहे और परिणामीका अर्थ है कि जिसके परिणमन हुआ करे। तो यों गुणोंको नित्य और परिणामी माननेपर यही बात तो सिद्ध होगी कि गुणोंमें उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ रहा करते हैं। गुणोंमें परिणामता है अर्थात् जिसके परिणमन हुआ करते हैं ऐसा एक तत्त्व है। तो उससे सिद्ध हो गया कि गुण नित्य होते हैं और चूंकि गुण परिणामी हैं उसके परिणाम होते रहते हैं। तो उन परिणामोंकी ओरसे देखा जाय तो यह सिद्ध हुआ कि गुणोंमें उत्पाद व्यय होता है। तब यही बात तो निष्कर्षमें आई कि द्रव्य क्या है ? गुणोंका ही समुदाय। गुण ही एक नामसे बोले जानेपर द्रव्य सज्ञासे बोले जाते हैं। जैसे वृक्ष क्या ? तो शाखा, पत्ते, फूल, फल इन सबका जो समुदाय है वही एक नामसे वृक्ष कहा जाता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि वृक्ष अलग चीज हो और उसके आधारमें शाखा, पत्ते, फल फूल रहा करते हैं। जो शाखा आदिक हैं वे ही सब एक बराबर वृक्ष कहलाते हैं। यों ही जो ये अनन्त गुण विदित होते हैं ये ही सब एक बराबर द्रव्य कहलाते हैं। तो जैसे द्रव्यमें उत्पादव्ययध्रौव्य है इसी प्रकार गुणोंमें भी उत्पादव्ययध्रौव्य है।

अपि पूर्वं च यदुक्तं द्रव्यं किल केवलं प्रदेशाः स्युः।
तत्र प्रदेशवत्त्वं शक्तिविशेषश्च कोपि सोपि गुणः ॥ १३० ॥

प्रदेशवत्त्व शक्ति होनेके कारण केवल प्रदेशोंको द्रव्य माननेकी मान्यताका खण्डन—इस प्रसङ्गमें जिस शङ्काका समाधान चल रहा था उस शङ्कामें यह बात मूलमें दिखाई गई थी कि केवल प्रदेश ही द्रव्य कहलाता है और उस द्रव्यमें उस प्रदेशमें जो विशेष है वह गुण कहलाता है और उस द्रव्यमें उस प्रदेशमें जो विशेष है वह गुण कहलाता है। तो इसमें शङ्काकारकी मूल मान्यता यह थी कि प्रदेश ही द्रव्य कहलाता है सो उस सम्बन्धमें भी एक निर्णय यह सुनो कि जिन प्रदेशों का लक्ष्य करके यह एक स्वतंत्र द्रव्य समझ रहा है वह प्रदेश भी प्रदेशत्व नामक शक्ति विशेष ही है। प्रदेशवत्त्व भी एक गुण है। द्रव्यमें ६ साधारण गुण होते हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व और प्रमेयत्व। इन गुणोंके द्वारा पदार्थमें क्रमशः यह बात सिद्ध हुई कि पदार्थ है। पदार्थ अपने स्वरूपसे है, पररूपसे नहीं है। पदार्थ प्रतिक्षण परिणमनशील है, पदार्थ अपने स्वरूपमें ही परिणमता है, पररूपसे नहीं परिणमता। ये चारों बातें सिद्ध होनेपर भी कुछ बुद्धि व्यवस्थित न हो पायगी। जब तक यह बात ज्ञानमें न आयेगी कि प्रदेशवान पदार्थ होता है। इन बातोंके समझनेके लिए आधार आधेय तो कुछ होना चाहिए। तो प्रदेशवत्व गुणकी वजहसे पदार्थका आधार ज्ञानमें होता है और वहाँ ही ये सब अस्तित्व वस्तुत्व आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के प्रभाव दीख जाते हैं। तो वह प्रदेशत्व भी एक गुण है और प्रदेश कुछ अलग नहीं हैं। वस्तुका जो सर्वस्व है स्वरूप वह स्वरूप रह रहा है। उस ही रहनको देशको प्रदेश कहते हैं। तो पदार्थमें प्रदेशवत्व नामक शक्ति विशेष है, वह भी कोई गुण कहलाता है। निष्कर्ष यह निकला कि द्रव्यमें जो पर्याय कही गई है आकार आदि रूपसे वह प्रदेशवत्व गुणका विकार है। इसीको व्यंजन पर्याय कहते हैं और इस सम्बन्धमें इस रूपसे पद्धति बताई गई है प्रमुखतया कि प्रदेशवत्व गुणके विकारको व्यंजन पर्याय कहते हैं और अन्य समस्त गुणोंके परिणमनको गुण पर्याय कहते हैं। तो इससे भी यह बात समझना चाहिए कि प्रदेश अलगसे द्रव्य हो और उसके आश्रय से उसमें विशेष गुण रहा करते हों यह बात नहीं है। किंतु गुण समुदाय ही द्रव्य है, इसी बातको अब उपसंहार रूपसे कहते हैं।

तस्माद् गुणसमुदायो द्रव्यं स्यात्पूर्वसूरिभिः प्रोक्तम्।
अयमर्थः खलु देशो विभज्यमाना गुणा एव॥ १३१॥

गुणसमुदायको द्रव्य माननेके तथ्यका दिग्दर्शन—इस कारण जो पूर्व आचार्योंने कहा है वह ठीक है कि गुण समुदायको द्रव्य कहते हैं। गुण समुदाय द्रव्य हैं ऐसा कथन होनेपर यदि उस द्रव्यका विभाग किया जा रहा है चित्तमें अंश बनाये जा रहे हैं तो जो भी एक एक अंश हैं वे सब गुण कहलायेंगे। याने गुणोंको छोड़कर द्रव्य कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। जो है वह एक अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थ को समझनेके लिए यदि अंशोंकी कल्पना की जाती है तो वे ही अंश गुण कहलाते हैं और यों सारे अंशोंकी कल्पना करलें और वहाँ गुण विदित होते हैं तो उन सब गुणों को छोड़कर अंशोंको छोड़कर अलगसे कोई द्रव्य शेष नहीं रहता है। मूल बात यह है कि जो द्रव्य है वह परमार्थ सत् अखण्ड एक है और उस द्रव्यमें स्वभावका भेद करके जो अंश कल्पना की जाती है वे सब गुण कहलाते हैं। यों गुणोंका समुदाय द्रव्य है। इस बातको यदि इस ढंगसे कहा जाय कि एक अखण्ड परमार्थ सत् पदार्थ होता है और उसको समझानेके लिए जो अंश कल्पित होते हैं वे एक अंश गुण कहलाते हैं। अब इस ही बातको सुगमतया समझानेके लिए इस उल्टी पद्धतिसे भी कहा जाता है कि गुण समुदायका नाम द्रव्य है। तो सीधी पद्धतिमें तो यह कहा जाता है कि परमार्थ अखण्ड सत् होता है। उसको समझानेके लिए अंश कल्पित होते हैं। वे एक एक अंश गुण कहलाते हैं और इस ही बातको अब प्रतिलोम परम्परासे यह कहा जायगा कि गुणोंके समुदायका नाम द्रव्य है, तो आचार्यदेवने जो द्रव्यका लक्षण गुण समुदाय बताया है वह बिल्कुल युक्तिसंगत है।

ननु चैवं सति नियमादिह पर्याया भवन्ति यावन्तः।
सर्वे गुणपर्याया वाच्या न द्रव्यपर्यायाः केचित्॥ १३२॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण समुदायको द्रव्य माननेपर समस्त गुणपर्यायोंकी द्रव्य पर्यायताके प्रसङ्गकी आशंका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का कर रहे हैं कि यदि गुण समुदायका ही नाम द्रव्य है तब तो द्रव्यमें जितनी पर्यायें होंगी अथवा हुई या होती हैं उन सबको गुण पर्याय नामसे कहा जाना चाहिए। फिर द्रव्य पर्याय कुछ भी नहीं रहती। जब सर्व गुणोंका ही नाम द्रव्य है, द्रव्य गुणसे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तो गुणोंका अथवा द्रव्यका जो परिणमन है सो ही तो है परिणमन। ये जितने भी परिणमन होते वे सब गुणपर्याय ही कहे जाना चाहिए, क्योंकि गुणोंसे भिन्न कुछ भी द्रव्य नहीं। तो द्रव्य पर्याय नामका कौन सा परिणमन होगा ? तो गुणसमुदाय ही द्रव्य हैं इस लक्षण के माननेपर यह दोष आता है कि फिर द्रव्य पर्याय कोई न ठहरी। जो परिणमन होंगे वे सब गुण पर्याय ही कहे जायेंगे। द्रव्य पर्याय कुछ भी न रह सकेगा। अब इसके उत्तरमें कहते हैं—

तन्न यतोऽस्ति विशेषः सति च गुणानां गुणत्वत्त्वेवपि।
चिदचिद्यथा तथा स्यात् क्रियावती शक्तिरथ च भाववती ॥१३३॥

गुणोंमें क्रियावती व भाववती शक्तिका भेद होनेसे सर्व गुण पर्यायोंके द्रव्य पर्यायरूपत्वके प्रसङ्गकी आशंकाका समाधान—गुण समुदायका नाम द्रव्य कहा है सो ठीक है फिर भी गुणोंमें भी जो विशेषता है उस विशेषताके कारण द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय ऐसे दो प्रयोग घटित हो जाते हैं। यद्यपि सभी गुण गुणत्व धर्म की अपेक्षासे गुण कहलाते हैं तो भी जैसे उन गुणोंमें ये विभाग हैं कि कोई चेतन गुण होते हैं कोई अचेतन गुण होते हैं, तो प्रकृत बातको समझानेके लिए यह उदाहरण रूप में कहा जा रहा है कि जैसे गुणत्व धर्मकी अपेक्षासे सभी गुण कहलाते हैं फिर भी उन सब गुणोंमें यह विशेषता है कि कोई चेतन गुण है कोई अचेतन गुण है। इसी प्रकार गुणत्वकी अपेक्षासे सभी गुण कहलाते हैं फिर भी उनमें यह विशेषता पड़ी हुई है कि कोई क्रियावती शक्ति संज्ञा वाले गुण हैं और कोई भाववती संज्ञावाले गुण हैं। अब उनमें क्रियावती शक्तिसे सम्बंधित परिणमन द्रव्य पर्याय कहलायेगा और भविष्यवती शक्तिसे सम्बंधित परिणमन गुणपर्याय कहलायेगा।

तत्र क्रिया प्रदेशो देशपरिस्पंद लक्षणो वा स्यात्।
भावः शक्ति विशेषस्तत्परिणामोऽथ वा निरंशांशैः ॥ १३४ ॥

क्रियावती शक्ति व भाववती शक्तिका स्वरूप—पदार्थमें जितनी शक्तियाँ होती हैं उन शक्तियोंके दो विभाग किए गए हैं—एक तो प्रदेशरूप जिसको क्रियावती शक्ति कहते हैं, जिसका लक्षण प्रदेशका परिस्पंद होना है और दूसरा विशेषरूप।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसका परिणमन निरंश अंश द्वारा होता है। तब शक्तियोंमें दो विभाग कर दिए गए एक क्रियावती शक्ति और दूसरा–भाववती शक्ति। तो क्रियावती शक्तिका सम्बन्ध है प्रदेशसे और भाववती शक्तियोंका सम्बन्ध है अपने अपने स्वरूपसे। यद्यपि प्रदेश गुणों का ही समुदाय है, पर वह समुदाय एक अखण्ड द्रव्य है और वह द्रव्य कितने विस्तार में फैला हुआ है, ऐसी दृष्टि करके उसमें भेद कल्पना होती है। उन प्रदेशोंमें जो परिस्पंद होता है वह क्रियावती शक्तिका रूप है। क्रियावती शक्ति होनेसे उसके परिणमनमें द्रव्य पर्याय हुई और भाववती शक्तिके परिणमनमें गुण पर्याय होती है। प्रदेशवत्व गुणको क्रियावती शक्ति ही कह लो तो कोई अत्युक्ति नहीं है। फिर बाकी के अनन्त गुणोंको भाववती शक्ति कह लो और यह भी देखा जाता है कि वहाँ परिणमन दो प्रकारसे हैं—एक तो ज्ञानादिक गुणोंका सबका अपना अपना परिणमन और दूसरा सम्पूर्ण द्रव्यका परिणमन। यद्यपि प्रदेश और गुण पृथक नहीं हैं, किन्तु इनके स्वरूपपर दृष्टि देनेसे दो बातें ज्ञात होती हैं। जैसे ज्ञान गुणका परिणमन है जानना। चारित्र गुणका परिणमन है रमना। तो ये परिणमन सब अपनी अपनी शक्तियोंके रूप तो जब प्रथक प्रथक गुणोंपर दृष्टि पहुंची तो वहाँ सब भावरूप परिणमन दृष्टिमें आये, पर यह भी तो देखा जा रहा कि कोई द्रव्य किसी जगहसे किसी जगह पहुंच गया या हला चला तो इस हलन चलनसे या उन प्रदेश परिस्पंद या क्रिया को किस गुणका परिणमन कहोगे ? तो जब सम्पूर्ण द्रव्यके परिणमनकी ओर दृष्टि पहुंचती है तो वहाँ क्रिया भी नजर आती है। अब ज्ञानादिक गुणोंकी परिणति क्रिया रहित है, केवल उन गुणोंके अंशोंमें तर्तमता होती रहती है। ज्ञानादिक गुणोंके परिणमनमें शक्यांशोंकी हीनाधिकता चलती है। परन्तु द्रव्यका जो परिणमन होता है उसमें उसके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें परिवर्तन चलता है। यह परिवर्तन क्रिया सहित है। तो इन सबको संक्षेपमें यों समझ लो कि द्रव्यका परिवर्तन प्रदेशवत्व गुणके कारण न हुआ। इसलिए प्रदेशवत्व गुणको क्रियावती शक्ति कहते हैं और शेषके सम्पूर्ण गुण निष्क्रिय हैं, इस कारण उनके भाववती शक्ति कही जाती है। तो भाववती शक्तिके परिणमनमें द्रव्य पर्याय बने। तो शङ्काकारका जो यह कहना था कि यदि गुण समुदाय ही द्रव्य है तो द्रव्यमें जितनी भी पर्यायें होंगी उन सबको गुण पर्याय ही कहो, द्रव्य पर्याय मत कहो। उसका यह उत्तर इन दो प्रकारकी शक्तियोंके ज्ञानसे हो जाता है।

यतरे प्रदेशभागास्ततरे द्रव्यस्य पर्याय नाम्ना।
यतरे च विशेषांशास्ततरे गुणपर्यया भवन्त्येव ॥ १३५ ॥

क्रियावती शक्ति व भाववती शक्तिके आधारपर द्रव्यपर्याय व गुण पर्यायका विभाजन—इस समाधानका सारांश यह है कि जितने भी प्रदेशांश हैं वे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो कहलाते हैं द्रव्य पर्यायें और जितने गुणांश हैं वे कहे जाते हैं गुण पर्याय। द्रव्य पर्यायमें होता क्या है कि द्रव्यके समस्त प्रदेशोंमें आकाशन्तर होता है। सो यह परिणमन प्रदेशवत्व गुणके निमित्तसे हुआ। इसीको व्यंजन पर्याय भी कहते हैं। और, प्रदेशवत्व गुणोंके सिवाय शेष समस्त गुणोंमें जो परिणमन होना है वह तर्तमरूपसे होता हैं। जैसे—ज्ञानका परिणमन जानना है तो किसीके जाननेमें कुछ अविभाग प्रतिच्छेद व्यक्त हैं और वे अधिक जानने वाले हैं और उसमें ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद और अधिक व्यक्त हैं तो शेष गुणोंके परिणमन तर्तमतासे ज्ञात होते हैं। ऐसे परिणमनोंको गु० पर्याय कहते हैं। तब यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि द्रव्य क्या है? गुण समुदायका नाम है और वह गुण समुदाय कहीं तो है। जितने विस्तारमें है उसको कहते हैं प्रदेश और प्रदेशवानको कहते हैं द्रव्य! द्रव्य प्रदेश गुण कुछ पृथक नहीं हैं, पर उनके समझनेकी यही रीति है। तो जो बात द्रव्यमें है वही बात गुणोंमें भी होती है। यह प्रकरण चल रहा था उसी प्रसङ्गमें यहां तक यह बात कही गई है। अब उसीको उपसहाररूपसे कहते हैं।

तत एव युदुक्तचरं व्युच्छेदादित्रयं गुणानां हि।
अनवद्यमिदं सर्वं पूत्यत्तादि पूमाणसिद्धत्वात् ॥ १३६ ॥

गुणोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताके कथनका उपसंहार—गुण समुदाय ही जब द्रव्य है और यह बात भली भाँति प्रमाणसिद्ध कर दी गई तो पहिले जो कहा गया था कि गुणोंमें उत्पादव्ययध्रौव्य होता है, सब परिणमनोंसे सिद्ध होनेके कारण निर्दोष है। भेद दृष्टिमें किसी सत्का वर्णन गुणके रूपमें आता है, भेद दृष्टिमें किसी सत्का वर्णन द्रव्यरूपमें आता है, पर सत्में जो बात होती है वह तो होगी ही। सत्का स्वरूप है उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्—जो उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हो सो सत्। तो ऐसी स्थितिमें अभेद दृष्टिसे देखो तो ये तीनों बातें मिलेंगी, उस भेद दृष्टिसे देखो तो तीनों बातें मिलेंगी। भेद दृष्टिसे देखने पर गुण विदित हुए तो वे भी उत्पादव्यय ध्रौव्य वाले सिद्ध हुए। अभेद दृष्टिसे देखनेपर द्रव्य नजर आया तो वह भी उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्त रहा। विषय यहां यह समझना है कि जो कुछ है वह उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है। अब उस है को भेददृष्टिसे देखें तो द्रव्यरूपमें उसे उत्पादव्ययध्रौव्य भी नजर आयेंगे और भेद दृष्टिसे उस सत्को देखें तो सब गुणोंमें उत्पादव्ययध्रौव्य समझमें आयगा। उन्हीं गुणोंमें जो ध्रौव्य अंश है, शाश्वतपना है उसकी प्रमुखतामें गुण नित्य प्रतीत होते हैं, पर कोई भी गुण परिणमन बिना नहीं रहता। और, वह परिणमन गुणोंसे कोई भिन्न नहीं है। इस कारण वे गुण अनित्य भी विदित होते हैं। तो द्रव्यों की भाँति गुणोंमें भी नित्यानित्यात्मकता बराबर बनी हुई है। ऐसा होनेका कारण यह है कि जब विभज्यमान होता है द्रव्य तब वह गुण कहलाता है और जब विभज्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मान नहीं होता, अखण्ड एक रूपसे विदित किया जा रहा है तब वह द्रव्य कहलाता है। वैसे तो द्रव्य और पर्यायये दो बातें माने बिना काम न चलेगा। अब गुण तो भेद दृष्टिसे देखे गए द्रव्यका ही नाम है और पर्याय तो होती ही है। अभेद दृष्टिसे देखा तो वह द्रव्य पर्याय होता है। भेददृष्टिसे देखा तो वहाँ गुण पर्याय हुए। यों प्रत्येक पदार्थ तृतीयात्मक है और इसी कारण उसके समस्त गुण उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त होते हैं। इसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है।

अथ चैतल्लक्षणमिह वाच्यं वाक्यान्तर प्रवेशेन।
आत्मा यथा चिदात्मा ज्ञानात्मा वा स एवचैकार्थः ॥ १३७ ॥

वाक्यान्तरसे गुणोंके स्वरूपके कथनका संकल्प—अब गुणोंका लक्षण दूसरी पद्धतिसे कहते हैं। वह पद्धति क्या होगी? उसको स्पष्ट करनेके लिए एक उदाहरण भी दे रहे हैं कि जैसे आत्मा, चिदात्मा, ज्ञानात्मा ये सब एक ही अर्थको प्रकट करते हैं इसी प्रकार वाक्यंतर दूसरी पद्धतिसे गुणोंका लक्षण इस प्रकार किया जायगा कि जो गुण रूप अर्थके वाचक शब्द हैं उन शब्दोंको कहा जायगा और उन एकार्थ वाचक शब्दोंके लक्ष्य अर्थपर गुणोंका लक्षण स्पष्ट होगा। तो गुणोंका दूसरी पद्धतिसे क्या लक्षण है? वह आगे कह रहे हैं।

तद्वाक्यान्तरमेतद्यथा गुणाः सहभुवोपि चान्वयिनः।
अर्था वैकार्थत्वादर्थादेकार्थवाचकाः सर्वे ॥ १३८ ॥

वाक्यान्तरसे गुणोंके स्वरूपके निरूपणका संकल्प—गुण सहभावी और अन्वयी इन सबका एक ही अर्थ है अर्थात् तीनों ही शब्द एक गुणरूप अर्थके वाचक हैं। वस्तुतः किसी भी पदार्थका अथवा तत्त्वका सही अर्थ बताने वाला कोई शब्द नहीं होता, क्योंकि शब्द जितने होते हैं वे विशेषताका ही सपन करते हैं। अर्थात् विशेषता की ही प्रसिद्धि करते हैं। चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंमें जो ऐसी संज्ञा दी हुई है उस संज्ञाको कोई एक विशेषता जाहिर होती है लेकिन ज्ञान द्वारा समस्त पदार्थ जान लिए जा सकते हैं। उस जाने हुए पदार्थको पदार्थकी किसी विशेषताके नामसे कहा जाय तो जानने वाला पुरुष उसको पूर्णतया जान लेता है। जैसे ऊपरकी गाथामें उदाहरण दिया गया कि इसमें चिदानन्दात्मक और ज्ञानात्मक ये एक ही अर्थको प्रकट करते हैं, पर जिस अर्थको कहा इन शब्दोंने उस पदार्थका पूरा वर्णन इन शब्दोंसे नहीं हो सका है। आत्माका अर्थ है जो निरन्तर जानता रहे। अतति सततं गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते हैं। जैसे कि आदित्य मायने सूर्य, आदित्यका अर्थ है—जो निरन्तर चलता रहे। तो आत्माके इस अर्थमें केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान गुणकी विशेषता ही तो बताई गई। किंतु आत्मा केवल एक गुणमात्र तो नहीं है। जहाँ अध्यात्म ग्रन्थोंमें यह उपदेश किया गया है कि आत्मा ज्ञानमात्र ही है, वहाँ प्रयोजन है अंतस्तत्त्वमें मग्न होनेका। यदि कोई पुरुष आत्माके स्वरूपमें मग्न होना चाहता है तो वह आत्माको ज्ञानमात्र निरखकर अनुभव करके सफल हो पायगा। दूसरी बात यह है कि जो असाधारण गुण है, प्रमुख गुण है, उसके साथ सभी गुणोंका सम्बन्ध है। गुणोंमें एक विभुत्व गुण होता है, जिस गुणका यह कार्य है कि गुणोंका होना अथवा एक गुणमें दूसरा गुण समा जाना। यह विभुत्व गुण इस ढङ्गसे है जैसे आत्मामें ज्ञान गुण है और अस्तित्व गुण है तो अस्तित्व गुणसे ज्ञान रह सका और ज्ञान गुण होनेसे अस्तित्व भी रह गया। नहीं तो अस्तित्व किसका ? तो गुणोंमें परस्पर सहयोगिता रहती है। तो उस सहयोगितामें प्रमुख गुणकी बात कहनेपर भी केवल यह तो नहीं कह दिया जाता कि पदार्थमें सिर्फ यही गुण है। शब्द जितने होंगे वे किसी एक गुणको ही प्रकट करने वाले होंगे। तो परमार्थ पदार्थके यथार्थ स्वरूप को कहनेके लिए कोई भी शब्द समर्थ नहीं है। विशेषतायें ही बताना है। तो उन शब्दोंकी जो विशेषतायें हैं उन विशेषताओंसे वाच्य अर्थका स्पष्टीकरण होता रहता है। तो इसी प्रकार गुणोंके जो पर्यायवाची शब्द कह रहे हैं इन शब्दोंका जो अर्थ होगा उन अर्थोंसे गुणोंका अर्थ प्रकट होगा।

गुणोंके वाचक शब्दोंमें गुणका निरुक्त्यर्थ—अब गुणोंके वाचक इन तीन शब्दोंमेंसे गुणका तो प्रसङ्ग ही है, उसका तो ब्योरा ही दिया जा रहा है। उसका लक्षण क्या कहना ? सहभावी और अन्वयी जो दो शब्द बचे हैं उनका क्रमसे लक्षण कहा जावगा। यदि गुणोंका ही लक्षण करते हैं तो गुणोंकी भी निष्पत्तिका अर्थ देखिये गुण्यते भिद्यते द्रव्यं येन स गुणः। जिसके द्वारा द्रव्य भेदा जाय मायने जिन जिन अंशोंके द्वारा द्रव्यका भेद किया गया, अंश अंशमें द्रव्यकी परख की गई उन्हें गुण कहते हैं। इस गुणके अर्थसे यह सही बोध होता कि द्रव्य अखण्ड है। उस अखण्ड पदार्थको जाननेके लिए भेद दृष्टिसे जो बात कही गई है उसका नाम गुण है। तो इसमें भी यह अर्थ ध्वनित होता है कि गुणोंके कथन द्वारा द्रव्यको ही अंश अंश रूपसे समझाया गया है। तो जो विशेषता द्रव्यमें है और स्वभाव प्रकृति द्रव्यमें है वही स्वभाव प्रकृति गुणोंमें होगी। तो जैसे गुण द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त हैं इसी प्रकार गुण भी हैं। यह गुण शब्दकी निष्पत्ति अर्थसे सिद्ध हो जाती है।

साह सार्धं च समं वा तत्र भवन्तीति सहभुवः प्रोक्ताः।
अयमर्थो युगपत्ते सन्ति न पर्यायवत्क्रमात्मानः ॥ १३९ ॥

गुणवाचक सहभावी शब्दका निरुक्त्यर्थ—सहभावी शब्दमें दो शब्द पड़े

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुए हैं—सह और भावी । सह सार्द्ध और सम ये तीनों ही शब्द सहके द्योतक अर्थात् सहका अर्थ है साथ और भावीका अर्थ है होना, तो जो साथ साथ होवें उनको सहभावी कहते हैं । इसमें यह बात बताई गई है कि पदार्थमें जितने भी गुण बताये गए वे सब गुण साथ साथ होते हैं, कहीं पर्यायकी तरह क्रमसे नहीं होते । तो पर्याय चूंकि परिणमन है जिसमें उत्पादव्यय होता रहता है, तो जिसमें उत्पादव्यय होता है वह उत्पादव्यय वाला तत्त्व एक साथ न हो सकेगा । अर्थात् जिस अवस्थाका उत्पाद है बस वही वर्तमान है । उसके बाद उसके विलीन होते ही जो नवीन उत्पाद हो, बस वह वर्तमान है । यों पर्यायें क्रमसे हुआ करती हैं, किंतु गुण सदैव शाश्वत रहते हैं । तो गुणोंके वाचक इस शब्दसे यह ध्वनित हुआ कि जिन भेदरूप अंशोंके द्वारा द्रव्यका परिचय कराया गया था वे समस्त अंश शाश्वत् हैं । अतएव एक साथ रहते हैं, पर्याय की तरह क्रमसे होने वाले नहीं हैं । तो सहकारी शब्दसे गुणोंकी यह विशेषता जानी गई कि वह शाश्वत् है और सभीके सभी पदार्थमें एक साथ रहते हैं । अब सहभावी शब्दके अर्थके सम्बन्धमें शङ्काकार की शङ्का और उसका समाधान दिया जारहा है ।

ननु सह समं मिलित्वा द्रव्येण च सहभुवो भवन्त्विति चेत् ।
तन्न यतो हि गुणेभ्यो द्रव्यं पृथगिति यथा निषिद्धत्वात् ।१४०।

गुणवाचक सहभावी शब्दके अर्थके विषयमें शङ्का और समाधान— शङ्काकार कहता है कि सहभावी शब्दका जो अर्थ ऊपर बताया गया है वह अर्थ ठीक नहीं, किंतु यह अर्थ करना चाहिए कि जो द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं उन्हें सहभावी कहते हैं । सहभावी शब्दका अर्थ तो यह किया गया था कि जो एक साथ रहते हैं वे सहभावी हैं । लेकिन अर्थ होना चाहिए यह कि जो द्रव्यके साथ रहता है वह सहभावी है । यद्यपि मोटे रूपसे इन दोनों अर्थोंमें कोई अन्तर जाहिर नहीं होता, सीधे एकसे विदित होते हैं । जो एक साथ रहे सो सहभावी, जो द्रव्यके साथ रहे वह सहभावी, एकदम कोई अन्तरकी बात विदित नहीं हो पाती लेकिन इसमें अन्तर बहुत अधिक है और इतना बड़ा अन्तर है कि जिससे लक्ष्य ही खतम हो जाता है । आधार भी सब मिट जाता है । तो वह क्या अन्तर है ? उस अन्तरको बताते हुए समाधान कर रहे हैं । शङ्काकार द्वारा जो सहभावी शब्दका यह अर्थ किया कि जो द्रव्यमें एकसाथ रहे सो सहभावी है । और, वह है गुण । गुण द्रव्यके साथ साथ रहते हैं अथवा द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं । इस अर्थके करनेमें यह दोष है कि यह जाहिर होता है इस अर्थमें अथवा यह मंतव्य बनेगा कि गुणोंसे भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ है और फिर ये सब गुण। द्रव्यके साथ मिलकर रहते हैं और ऐसा मान लेनेपर तो सिद्धान्त ही खतम हो जाता है । पहिले ही बता दिया गया है कि द्रव्य गुण ये भिन्न भिन्न तो नही हैं । तो इस कारण सहभावी शब्दका यह अर्थ किया जाना अनुचित है कि द्रव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के साथ साथ जो रहें उन्हें सहभावी कहते हैं और वे गुण होते हैं।

गुणोंकी सहभाविताके सिद्धान्तका तथ्य—सिद्धान्त यह है कि द्रव्य अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड है अथवा द्रव्य कोई एक अवक्तव्य पदार्थ है, जो ज्ञानमें आजाता है पर शब्दोंमें नहीं आता। अनेक बातें ऐसी होती हैं कि ज्ञानमें तो सब आ गया, पर शब्दमें या गिनतीमें या अन्य प्रकारोंमें नहीं आता। जैसे रेतीली नदीके किनारे खडे होकर देखनेपर सारी रेत दीख तो जाती है मगर क्या वह रेत गिनतीमें आ सकता है ? या उसको अलग अलग रूपमें भी निरख सकते हैं ? दीख रही है सारी रेत, पर उसका विवरण कर सकने वाला शब्द नहीं है, जो कि ज्ञानके एक परिणमनमें जान लिया गया है। तो इस पद्धतिमें द्रव्य एक अखण्ड अवक्तव्य पदार्थ है, उसे वक्तव्य करनेके लिये अंश विभाग करके गुण बनाये गए हैं। यो जो अंश हैं वे सब द्रव्य ही तो हैं, द्रव्य तो न रहे और जब द्रव्य हैं तब वे गुण भी हैं। तो साथ साथ रह रहे हैं गुण तो यह तो ठीक है, पर द्रव्यमें साथ मिलकर रहा कहते हैं गुण, यह विश्लेषण ठीक नहीं है, उसे इस प्रकार समझें कि द्रव्य अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड है, उन गुणोंमें प्रतिक्षण परिरमण होता रहता है। तो अनादिसे लेकर अनन्त तक जितने भी परिणमन होते हैं उन सबमें वह गुणपना सदा साथ रहता है। कितनी ही पर्यायें हो जायें सब पर्यायोंमें वही गुण है। और, जितने भी गुण हैं पदार्थमें उनका परस्पर वियोग भी नहीं होता। तो पर्यायमें यह बात नहीं। वह व्यतिरेकी है और एक साथ नहीं रहती। तो सहभावी शब्दका यह अर्थ हुआ कि जो एक साथ रहें उन्हें गुण कहते हैं, सहभावी कहते हैं। तो इस अर्थका यह निष्कर्ष निकला कि वे अंश जिसके द्वारा पदार्थको जाना गया वे सब शाश्वत हैं और सदैव एक साथ रहते हैं।

ननु चैवमतिव्याप्तिः पर्यायेष्वपि गुणानुषंगत्वात्।
पर्यायः पृथगिति चेत्सर्वं सर्वस्वदुर्निवारत्वात् ॥ १४१ ॥

सहभावी शब्दके सैद्धान्तिक अर्थमें अतिव्याप्ति दोषके प्रसङ्गकी शङ्का और उसका समाधान—गुणका विशेष परिचय पानेके लिये कुछ एकार्थवाची शब्द बताये गये हैं। गुण सहभावी और अन्वयी हैं उनमेंसे यहाँ सहभावी शब्दके अर्थपर विचार चल रहा है। सहभावीका अर्थ होता है कि जो साथ साथ रहे, द्रव्यके साथ साथ मिलकर रहे, यह भी अर्थ नहीं, किंतु सभी गुण परस्परमें विरोध न रखकर एक आधारमें साथ साथ रहें उनका नाम सहभावी है। इस अर्थको सुनकर एक शङ्का की जा रही है कि सहभावीका यह लक्षण तो अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है, क्योंकि यह लक्षण पर्यायमें आ जाता है। पर्यायें भी तो साथ साथ रहती हैं। जैसे एक जीवमें श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक परिणमन एक साथ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहते हैं। तो साथ साथ रहें उनका नाम गुण है। ऐसा कहनेमें वे पर्यायें भी गुण कह लायेंगी। तो अतिव्याप्ति दोष हो जायगा। अतिव्याप्ति दोष कहते हैं उसे कि जो लक्षण लक्ष्यमें लावे, लक्ष्यमें भी पहुंचा दे और सहभावीका लक्षण है जो साथ साथ हो और लक्ष्य हो गुण तो सहभावीका यह स्वरूप लक्ष्य गुणमें भी आ जाता है और अलक्ष्य पर्यायोंमें भी जहाँ जब अलक्ष्यमें लक्ष्यकी पहिचानसे अतिव्याप्ति दोष होगा। शङ्काकारकी इस शङ्काका समाधान करते हैं कि पर्यायोंमें गुणोंके लक्ष्य नहीं जाते, क्योंकि पर्यायें साथ साथ नहीं रहतीं, वे तो भिन्न भिन्न ही रहती हैं। तब अनेक पर्यायें एक समयमें देख रहे हैं तो एक ही परिणमनको भेद दृष्टिसे निरखकर देख रहे हैं। जैसे एक द्रव्यको भेद दृष्टिसे निरखनेपर गुण विदित होते हैं इसी प्रकार द्रव्यका प्रतिसमय एक एक परिणमन होता है। उस एक परिणमनको भेददृष्टिसे निरखनेपर गुण विदित होते हैं वे अनेक परिणमन, किंतु जो समय भेदसे होने वाले परिणमन हैं, कालक्रमसे जो पर्यायें चला करती हैं उन पर्यायोंमें परस्पर भेद है। उनमेंसे किसी एक पर्यायके रहनेपर अन्य समस्त पर्यायें नहीं रहती। तो यों पर्यायें सहभावी नहीं हैं और इस तरह अगर लक्षणको दूषित ठहराया जाय तो फिर हर एक दूषण हर एकमें लगाया जा सकता है। पर्यायोंको भी अनित्य माननेसे जब अवस्थाओंमें भेद न रहा तो सभी पर्यायें सभी पदार्थ सब रूप हो जायेंगे, फिर उनमें अवस्था भेद नहीं हो सकता। तो यों सहभावीका स्वरूप गुणोंमें ही, जहाँ वे सब सदा साथ रहते हैं, उनमें कालक्रम व्यतिरेक नहीं पाया जाता। तो गुणोंका विशेष परिचय पानेके लिए सहभावी शब्दसे बताया गया है, उससे यह प्रकाश मिलता है कि द्रव्यकी ये सब शक्तियाँ साथ साथ रहा करती हैं। अब अन्वय शब्दके अर्थसे गुण की विशेषताको बताते हैं।

अनुरित्यव्युच्छिन्नप्रवाहरूपेण वर्तते यद्वा।
अयतीत्ययगत्यर्थाद्धातोरन्वर्थतोऽन्वयं द्रव्यम् ॥ १४२ ॥

गुणवाचक अन्वर्थ। शब्दका अर्थ—अन्वय शब्दमें दो शब्द हैं-अनु और अय। अनुका अर्थ है बिना किसी रुकावटके प्रवाहरूपसे जो चलता रहे उसका नाम है अन्वय। अन्वयमें अनु तो है उपसर्ग और अयधातु है, अयधातु गत्यार्थक होती है। अय मायने चलने वाला तो जो अनु अर्थात् अनुसार सर्व समयोंमें चला जाय उसे अन्वय कहते हैं। ऐसे गुण हैं भी कि जो अनादिसे अनन्त काल तक सदा रहा ही करते हैं। जितनी पर्यायें होतीं हैं उन सब पर्यायोंमें जो रहा करते हैं सो गुण हैं, अन्वयी हैं। जैसे एक आमके फलमें पहिले हरा रंग था, अब पीला रंग हुआ, वहाँ बीचमें समयका अन्तर नहीं है कि पहिले हरा था अब बीचमें कुछ न रहा, अब पीला हो गया। वहाँ रूप शक्ति निरन्तर है और उसका परिणमन हरे पीले आदिक अन्तर रहित होकर क्रमसे चलता रहता है। तो जैसे उन रंगोंमें रूप शक्ति निरन्तर रहती है। कैसा ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रंग हो कोई सा भी रंग बदले, कोई सा भी नवीन रंग आये लेकिन उनकी जो स्रोत-भूत शक्ति है, रूप गुण है उसका कभी विच्छेद नहीं होता, इस कारण अन्वयका अर्थ गुणोंमें बिल्कुल घटित हो जाता है कि जो समस्त पर्यायोंमें चला करे उसे अन्वय कहते हैं अन्वयी शब्दसे गुणोंकी यह विशेषता जाहिर हुई कि ये त्रिकालवर्ती होते हैं, समस्त पर्यायोंमें यह गुण रहता है। तो गुण शब्दके तीन शब्दोंसे तीन विशेषतायें ज्ञात हुई। प्रथम तो गुणके मायने यह है कि जो भेदा जाय गुण्यते भिद्यते द्रव्यम् अनेन अर्थात् एक अखण्ड द्रव्यमें जो भेद किया गया है, उस भेदसे जो अंश विदित होता है वह गुण कहलाता है। इससे तो यह प्रकाश मिला कि वस्तु तो एक अखण्ड द्रव्य है। उसे भेद दृष्टिसे निरखनेपर जो नाना शक्तियाँ विदित हुई वे गुण हैं। सहभावी शब्दसे यह प्रकाश मिला कि ऐसे ये अंश सदा साथ साथ रहते हैं, उनमें विरोध नहीं है। एक गुण है तो अन्य गुण न रह सके और अन्वयी शब्दसे यह प्रकाश मिला कि वे सब गुण-पर्यायोंमें चलते रहते हैं याने सदा रहा करते हैं। उनका विच्छेद नही होता। यों गुण का वर्णन करके और विशेष वर्णन करनेके लिए भूमिकामें कुछ द्रव्य शब्दकी व्याख्या करते हैं।

सत्ता सत्त्वं सद्वा सामान्यं द्रव्यमन्वयो वस्तु ।
अर्थो विधिरविशेषादेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥ १४३ ॥

सत्ता, सत्त्व, सत् शब्दोंकी द्रव्यवाचकता—सत्ता, सत्त्व, सत् सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि ये सभी शब्द एक अर्थके वाचक हैं। जिसकी द्रव्य शब्द से प्रसिद्धि कर रखी है याने किसी भी पदार्थके वाचक ये सब शब्द हैं। इनमें प्रथम कहा—सत्ता और सत्त्व। ये करीब करीब एकसे ही शब्द हैं। भाववाचकता प्रत्यय और त्व प्रत्यय लेकर सत्ता और सत्त्व बनता है। इनमें यदि कोई सूक्ष्म अन्तर निरखा जाय तो प्रयोग विधिके अनुसार सत्ता शब्दके कहते ही यह ध्वनित होता है कि वह उत्पादव्ययध्रौव्य एक लक्षण वाली है अर्थात् सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण वाली है। और, सत्त्व शब्द कहकर यही बात इन शब्दोंमें प्रसिद्ध होता है कि यह उत्पादव्यय-ध्रौव्यसे युक्त है। ऐसा इसमें भाव पड़ा है। तो भाववाचक शब्द होनेसे दोनोंका अर्थ एक समान है। अब तीसरा शब्द दिया है सत्। सत् तो विशेष्य है। जो मौजूद हो उसे सत् कहते हैं और सत्त्व उसका भाववाचक शब्द था। याने सत्‌पना तो सत्‌पना और सत् ये दोनों पृथक नहीं हैं। तो कभी भाववाचक शब्दसे भी वर्णन किया जा सकता है और कभी सीधा पदार्थ शब्दसे या द्रव्यवाचक शब्दसे वर्णन किया जा सकता है। सत्ताका अर्थ है—जो निरन्तर रहती है, सत् है, सत् था, सत् रहेगा, ऐसा जो कुछ सत् है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य हमेशा सत् रहता है इस कारण उसे सत् कहना युक्ति-संगत ही है। जो सत् होता है वह उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप होता है। जो भी सत् है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसमें यह कला है ही कि वह निरन्तर नवीन-नवीन पर्यायोंरूपसे परिणत होता रहे। प्रत्येक सत्की यह कला है। चाहे यह बात किसी पदार्थमें विदित हो पाये अथवा न हो पाये किन्तु सत् कहते ही उसे हैं जिसमें निरन्तर नवीन-नवीन परिणति विकसित होती रहे।

सामान्य और द्रव्य शब्दकी एकार्थ वाचकता—द्रव्य वाचक शब्दोंमें चौथा शब्द दिया है सामान्य। यह द्रव्य सामान्यरूप है। गुण और पर्याय शब्दोंसे जो वाच्य होता है वह विशेषरूप है। द्रव्यके तिर्यक विशेष हैं गुण और द्रव्यकी ऊर्द्ध विशेष हैं पर्यायें और, ऊर्द्ध विशेष तिर्यक विशेष सबमें रहने वाला या ये सब जिसमें नजर आयें एक सामान्य जो सत्त्व है उसे कहते हैं सामान्य। तो द्रव्यका नाम सामान्य भी है। सामान्य शब्दसे द्रव्यकी महिमा, द्रव्यका परिचय इस रूपमें मिलता है कि ये सर्व गुण पर्यायात्मक सदा रहने वाले हैं। गुणमें भी यह है, पर्यायमें भी यह है और वास्तवमें द्रव्य क्या है? जब इसकी व्याख्यामें आगे बढ़ते हैं तो यह सामान्यरूप विदित होता है। क्योंकि हर तरहसे इसमें शाश्वतपना दृष्टिगोचर होता है। और, सर्व अवस्थाओं में इसका सत्त्व जाना गया है। इसको द्रव्य शब्दसे भी कहते हैं। द्रव्यका अर्थ है जिसमें पर्यायें पा रहा है, जो पर्यायें पाता रहेगा उसे द्रव्य कहते हैं। तो यह बात प्रत्येक पदार्थमें है। कोई भी पदार्थ पर्याय बिना नहीं रहता। पहिले पर्यायें थी, अब पर्यायें हैं और भविष्यमें सदा पर्यायें होती रहेंगी। इस कारण इसे द्रव्य कहते हैं।

अन्वय और वस्तु शब्दकी द्रव्यवाचकता—द्रव्यवाचक शब्दोंमें छठवाँ शब्द दिया है अन्वय। अन्वयका अर्थ है कि जिसका सर्व समयोंमें सम्बन्ध हो। सर्व समयोंमें जो रहे, अनन्त पर्यायोंमें जिसका वर्तमान हो, सत्त्व हो उसको अन्वय कहते हैं। इस अन्वय शब्दसे यह प्रकाश मिला कि पदार्थ वहीका वही समस्त परिणमनोंमें रहता है। ७ वाँ शब्द है वस्तु। वस्तुका अर्थ है जिसमें सर्व गुणपर्यायें बसें। इसमें एक आधार समझा गया। अभिन्न होकर भी उत्पादव्यय किसमें हो रहे हैं? गुण किसमें बस रहे हैं। बस उस आधारको वस्तु शब्दसे बताया गया है। अथवा वस्तु शब्दका यह भी अर्थ है कि जो अपने स्वरूपसे हो और परस्वरूपसे न हो। इससे यह स्वतंत्रता और परिपूर्णता बतायी गई है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभावसे है और पररूपसे नहीं है। अथवा वस्तुका अर्थ कीजिए जिसमें अर्थक्रिया हो उसे वस्तु कहते हैं। इससे यह प्रकाश मिला कि प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर परिणमन होता रहता है। परिणमनशील वे समस्त पदार्थ हैं।

अर्थ और विधि शब्दकी द्रव्य वाचकता—८ वाँ शब्द दिया है—अर्थ। पदार्थको अर्थ भी कहते हैं। अर्थका अर्थ है—अर्यते, निश्चीयते इति अर्थः अर्थात् जो निश्चित किया जाय, निर्णय किया जाय उसको अर्थ कहते हैं। तो जाननेमें क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आया करता है ? जो आया करे वही अर्थ है। वैसे लोग स्थूलरूपसे यह कह देते हैं कि मैंने हरा रंग देखा, अथवा हमने गुण जान लिया। जाननेमें क्या आया करता ? हरा रंग या पर्याय नहीं, गुण नहीं, किन्तु वे पदार्थ ही जाननेमें आया करते हैं। तो हमने हरा रंग जाना, इसका अर्थ वास्तविक यह हुआ कि हरे रंगकी पर्यायमें परिणत इस द्रव्यको जाना। पर इतने रूपसे, इतना घुमाकर कोई न भी कहे तो भी वास्तविकता यही है कि जाना जाता है पदार्थ। गुण और पर्याय नहीं जाना जाता, किन्तु पदार्थ ही भेद दृष्टिसे गुणरूपमें जाना जा रहा है। पदार्थ ही पर्यायरूपसे जाना जा रहा है पर निश्चयमें आया करता है पदार्थ। इस कारणसे उसे अर्थ कहते हैं। ९ वाँ शब्द दिया है विधि। जो विधिरूप हो, सद्भावरूप हो, उसको विधि कहते हैं। पदार्थ जो भी होते हैं वे सब विधिरूप होते हैं। मीमांसक सिद्धान्तने अभावको भी पदार्थ माना परन्तु अभाव अपदार्थ नहीं हो सकता। पदार्थ विधिरूप हो सकेगा। अभाव तो किसी अन्यके भावरूप हुआ करता है। तो यों अर्थ शब्दसे भी पदार्थ जाना जाता है। यों द्रव्यके पर्यायवाचक इन शब्दोंसे द्रव्यकी विशेषतायें जानी गई हैं और उन विशेषताओंसे उस शाश्वत त्रैकालिक पदार्थका परिचय कराया गया है।

अयमन्वयोस्ति येषामन्वयिनस्ते भवन्ति गुणवाच्याः।
अयमर्थो वस्तुत्वात् स्वतः सपक्षा न पर्ययापेक्षाः॥ १४४॥

गुणोंकी अन्वयिता - गुण अन्वयी कहलाते हैं इसका अर्थ है कि समस्त परिणमनोंमें जो चले, रहे, ऐसा अन्वय जहाँ पाया जाय वह अन्वयी कहलाता है। इसका भाव यह है कि वास्तवमें गुण अपने ही अन्वय पूर्वक रहता है याने पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं रहती। द्रव्य अनन्त गुणोंका समुदाय होता है और उन सभी गुणोंमें निरन्तर प्रतिसमय नई-नई परिणतियाँ होती हैं। उन समस्त परिणतियोंमें गुण बराबर साथ रहते हैं। याने प्रत्येक गुणका अपनी समस्त अवस्थाओंमें अन्वय पाया जाता है। इसीको कोई लोग संतति शब्दसे कहते हैं, कोई अनुवृत्ति शब्दसे कहते हैं। तो यों द्रव्यमें अर्थात् अनन्त गुणोंके समुदायरूप अखण्ड पदार्थमें ये सभी अनन्त गुण अपने त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंमें पाये जाते हैं इस कारण गुणको अन्वयी कहते हैं। ऊपर जो द्रव्यके पर्यायवाचक शब्द कहे हैं वे सब गुणमें भी घटित होते हैं। जैसे द्रव्य एक अन्वयरूप है इसी प्रकार गुणमें भी अन्वय पाया जाता है। गुण अन्वयी हैं इसी हेतु वे सदा अपने स्वरूपमें बने रहते हैं। कोई उनका व्यतिरेक नहीं है। वे सपक्ष हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यतिरेकी नहीं है, किन्तु सदैव अन्वयी हैं। अन्वयी उन्हें कहते हैं कि जहाँ ऐसी बुद्धि बने कि यह वही है और जहाँ ऐसी बुद्धि न बने उसे व्यतिरेकी कहते हैं। तो ये गुण सदाकाल रहते हैं। हैं ये गुण अनन्त इस कारण एक गुणका दूसरे गुणमें स्वरूप नहीं है। इस दृष्टिसे ये परस्पर व्यतिरेकी हैं। जिस आत्मामें ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दर्शन चारित्र आदिक अनेक गुण हैं तो उन गुणोंमें किसी भी गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है। यों व्यतिरेकी कहलाते हैं गुण। परन्तु एक गुण अपनी समस्त परिणतियोंमें रहते हैं और वे इस बुद्धिको पैदा करते हैं कि यह वही है इस कारण उसे अन्वयी कहा है। पर्यायोंमें तो यह बुद्धि नहीं जगती। यह वही है। जैसे कोई जीव मनुष्य था और अब देवपर्यायमें आया तो जीवकी अपेक्षा तो अन्वय बनता है कि यह वही जीव है जो मनुष्य भवमें था पर मनुष्य पर्याय यह देवपर्यायमें यह वही है, यह बुद्धि नहीं जगती। गुणोंमें भी जैसे चारित्र गुणकी अनेक परिणतियाँ है, कषाय होना अकषाय रहना, तो उन समस्त परिणतियोंमें चारित्र गुण वही है, वही विकाररूप परिणमा था, अब स्वभावरूप परिणम रहा है। जो आज स्वभावरूप परिणम रहा है वह चारित्रगुण वही है जो जीवमें अनादिसे था। यों यह वही है ऐसा जिसमें बताया जाय उसे अन्वयी कहते हैं। पर्यायोंमें ऐसी बुद्धि नहीं जगती वे व्यतिरेकी होती हैं।

ननु च व्यतिरेकित्वं भवतु गुणानां सदन्वयत्वेपि।
तदनेकत्व प्रसिद्धौ भावव्यतिरेकतः सतामिति चेत् ॥ १४५ ॥

शंकाकार द्वारा गुणोंमें व्यतिरेकित्व सिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि व्यतिरेकीपना तो अनेकमें घटित होता है और गुण हैं अनेक तो उनमें भी व्यतिरेक घटित करना चाहिए। उन गुणोंको अन्यवी फिर क्यों कहा गया हैं? यद्यपि गुणोंका सत्के साथ अन्वय है, रहता है सदा रहे, लेकिन हैं तो गुण अनेक। और यह भी स्पष्ट है कि एक गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है। प्रत्येक गुण निराला है। स्वयं स्वयंके स्वरूपको लिए हुए है। तब गुणोंमें व्यतिरेकीपना क्यों नहीं घटित किया जा रहा है। पर्यायोंमें भी तो इसी आधारपर व्यतिरेक घटित हो जाता है कि एक पर्याय के स्वरूपमें दूसरी पर्यायका स्वरूप नहीं है। तो यहाँ भी यह बात है कि एक गुणमें अन्य गुणका स्वरूप नहीं है, इस कारण वहाँ भी व्यतिरेक घटित करना चाहिए। अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं।

तन्न यतोस्ति विशेषो व्यतिरेकस्यान्वयस्य चापि यथा।
व्यतिरेकिणो ह्यनेकेप्येकः स्यादन्वयी गुणो नियमात् ॥१४६॥

प्रत्येक गुणकी अन्वयिता सिद्ध करते हुए शंकाकाकी उक्त शंकाका समाधान—शङ्काकारकी उपयुक्त शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि अन्यव और व्यतिरेकमें विशेषता है। व्यतिरेकी अनेक होते हैं और गुण नियमसे अन्वयी होते हैं, यद्यपि व्यतिरेक गुणोंमें भी घट जाता है क्योंकि वे अनेक हैं और एक गुणमें दूसरे गुणका स्वरूप नहीं है। यों व्यतिरेक घट जाय फिर भी उसमें अन्वय पाया जाता है, अर्थात् प्रत्येक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण तीनों काल अपनी समस्त पर्यायोंमें एक रहता है। तो व्यतिरेककी बात कही जाय तो कह लो, पर व्यतिरेक घट रहा है तिर्यकरूपसे, अर्थात् वर्तमानमें पदार्थमें जितने गुण हैं वे सब अपने अपने स्वरूपमें हैं इस कारण एक गुणमें दूसरे गुणका व्यतिरेक है, लेकिन साथ ही साथ यह गुण अन्वयी भी तो है। प्रत्येक गुण त्रिकाल समस्त पर्यायोंमें वहीका वही रहता है लेकिन पर्यायोंमें व्यतिरेक ही घटित होता है। एक समयमें अनन्त गुणोंकी अपेक्षासे अनन्त पर्यायें हैं, उनमें भी गुणकी तरह व्यतिरेक घटित होगा और तीनकालकी समस्त पर्यायोंमें भी परस्पर व्यतिरेक घटित होगा लेकिन गुणोंमें एक साथ रहने वाले उन समस्त गुणोंमें स्वरूपतः परस्पर व्यतिरेक है लेकिन समस्त पर्यायोंमें इन गुणोंका अन्वय है, इस कारण ये अन्वयी कहलाते हैं। तो अन्वयीपनेकी विशेषता होनेसे गुणोंको अन्वयी ही कहा गया है और पर्यायोंमें सर्वथा व्यतिरेक होनेसे वर्तमानमें भी अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्यायोंमें परस्पर व्यतिरेक है और आगे पीछे भी हुई समस्त पर्यायें व्यतिरेकी ही कहलाती हैं अब व्यतिरेकके सम्बंध में भेद प्रभेद करके वर्णन करते हैं।

यथा चैको देशः स भवति नान्यो भवति स चात्यन्यः।
सोपि न भवति स देशो भवति स देशश्च देशव्यतिरेक।१४७।

देशव्यतिरेक (द्रव्यव्यतिरेक) का वर्णन—अनन्त गुणोंके अभिन्न पिण्ड को देश कहते हैं। यह अभिन्न पिण्ड एक ही साथ है, एक ही समयमें है, पर्यायके समुदायकी तरह नहीं है ऐसा गुणोंमें नहीं है किन्तु समस्त अनन्त गुण एक ही समयमें अभिन्न पिण्डरूपमें हैं। इस अखण्ड पिण्डको देश कहते हैं। जो एक देश है वह दूसरा देश नहीं, जो दूसरा है वह दूसरा ही है, पहिला नहीं। इस प्रकारसे उस देशमें व्यतिरेक निरखना इसको देश व्यतिरेक कहते हैं। व्यतिरेक चार प्रकारसे देखा जायगा—देशव्यतिरेक, क्षेत्रव्यतिरेक, कालव्यतिरेक और भावव्यतिरेक। तो देशव्यतिरेकमें वस्तुके उन समस्त प्रदेशोंमें एक एक प्रदेशको निरखकर, मानकर फिर उसमें यह देखना कि एक प्रदेशमें दूसरा प्रदेश नहीं है इसलिए पाया जाता है देशव्यतिरेक। यदि देशव्यतिरेक न हो तो पदार्थ एक देशमात्र ही रह जायगा, उसका विस्तार न बन सकेगा। जैसे आकाश अनन्त प्रदेशी है तो उसमें परस्पर प्रदेश भिन्न हैं, पृथक तो नहीं हैं, किन्तु उद्भावका अभाव है अथवा देश व्यतिरेक सभी द्रव्योंमें देखा जायगा कि प्रत्येक द्रव्य एक एक देश कहलाता है। गुण समुदायका नाम देश है तो किसी भी द्रव्यमें किसी अन्य द्रव्यका प्रवेश नहीं है। यों समस्त पदार्थ परस्परमें व्यतिरेकी हैं। एकमें दूसरा नहीं है। यों देशव्यतिरेक कहा जाता है। क्षेत्रव्यतिरेकका वर्णन अब अगली गाथामें करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपि यश्चैको देशो यावदभिव्याप्य वर्तते क्षेत्रम् ।
तत्तत्क्षेत्रं नान्यद्भवति तदन्यश्च क्षेत्रव्यतिरेकः ॥ १४८ ॥

क्षेत्रव्यतिरेकका वर्णन—जो एक देश है, गुण द्रव्य है वह जितने क्षेत्रको व्यापकर रह रहा है वह क्षेत्र वही है दूसरा नहीं है । जो दूसरा क्षेत्र है वह दूसरा ही है । यहाँ पदार्थको क्षेत्रकी अपेक्षासे अपने स्वरूपमें निरखा गया है । प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही क्षेत्रमें रहते हैं, उसको छोड़कर अन्य क्षेत्र दूसरा ही क्षेत्र है । और ऐसे एक क्षेत्रके साथ दूसरे क्षेत्रका व्यतिरेक होना सो क्षेत्रव्यतिरेक है । देशव्यतिरेकमें द्रव्यव्यतिरेक बताया गया है । अनन्त गुणके अखण्ड पिण्ड अनन्त पदार्थ हैं । वे सब पदार्थ परस्परमें एक दूसरेसे भिन्न हैं अर्थात् जो एक द्रव्य है वह वही है एक द्रव्य दूसरा नहीं है । जो दूसरा द्रव्य है वह वही है, वह पहिला नहीं है । इस गाथामें क्षेत्र व्यतिरेक बताया गया है कि जितना निजी क्षेत्रको घेर करके पदार्थ रह रहा है अर्थात् जितना अपने समस्त प्रदेशमें है वह उसका क्षेत्र है, अन्य दूसरा क्षेत्र इसमें मिला हुआ नहीं है । इससे भिन्न है, ऐसे क्षेत्रकी अपेक्षासे पदार्थोंको भिन्न-भिन्न निरखना सो क्षेत्र व्यतिरेक है । काल व्यतिरेक इस प्रकार है ।

अपि चैकस्मिन् समये येकाप्यवस्था भवेन्न साप्यन्या ।
भवति च सापि तदन्या द्वितीय समयेपि कालव्यतिरेकः ॥१४९॥

कालव्यतिरेकका वर्णन—एक समयमें जो भी अवस्था होती है वह वही है वह अन्य नहीं है । दूसरे समयमें जो अवस्था होती है वह वही दूसरी है, वह पहिली आदिक अन्य नहीं है । इस प्रकार उन अवस्थाओंमें परस्पर व्यतिरेक निरखना सो काल व्यतिरेक है । यह काल व्यतिरेक एक पदार्थकी अवस्थाओंमें भी निरखा जा सकता है और समस्त पदार्थोंकी अवस्थाओंमें भी निरखा जा सकता है । पर विशेष प्रयोजन है एक ही पदार्थकी समस्त अवस्थाओं की परस्पर भिन्नता निरखना । एक समयमें जो अवस्था होती है वह वही है दूसरी नहीं हो सकती । और, जो दूसरे समय में अवस्था है वह उसी समयकी है, अन्य अवस्था नहीं है । यह बात तो स्पष्ट विदित होती है कि मनुष्य मनुष्य ही है देव आदिक नहीं है । पशु पशु ही हैं मनुष्य आदिक नहीं हैं, क्रोध क्रोध ही है, वह मान माया आदिक नहीं है । निष्कषाय भाव तब है जब वहाँ अकषाय है, शान्त है । वहाँ वह कषायवान अशान्त नहीं है । तो एक अवस्थामें दूसरी अवस्था नहीं है । यों अवस्थाओंको परस्पर भिन्न-भिन्न निरखना सो काल व्यतिरेक है । यों पदार्थमें द्रव्यव्यतिरेक, क्षेत्र व्यतिरेक और काल व्यतिरेककी बात कही गई है, अब भाव व्यतिरेक बतावेंगे ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भवति गुणांशः कश्चित् स भवति नान्यो भवति चाप्यन्यः।
सोपि न भवति तदन्यो भवति तदन्योपि भावव्यतिरेक ॥१५०

भावव्यतिरेकका वर्णन— अब इसमें भावव्यतिरेक बना रहे हैं। जो एक गुणांश है वह वही है दूसरा नहीं है और जो दूसरा गुणांश है वह वही दूसरा है पहिला आदिक नहीं है, इस प्रकार एक गुणांशमें दूसरे गुणांशके न रहने को भावव्यतिरेक कहते हैं। गुणांशका अर्थ यहाँ अविभाग प्रतिच्छेद है गुणमें जितने सम्पूर्ण अंश है। अर्थात् गुणोंके परिपूर्ण विकासमें जितने अविभाव प्रतिच्छेद होते हैं एक एक अविभाग प्रतिच्छेद गुणांश कहलाते हैं तो वहाँ एक गुणांशमें दूसरे गुणांश नहीं हैं। यदि एक गुणांशमे दूसरा गुणांश हो तब तो वस्तु वह गुण रूप अंश मात्र रह जायेगा। फिर उसमें हीनाधिकता और तरतमता सिद्ध न हो सकेगी। जिस ज्ञानमें अविभाग प्रतिच्छेद जो विकसित हैं सूक्ष्म निगोद जीवके वे कम हैं, मनुष्यादिकके अधिक हैं और केवली भगवानके अविभाग प्रतिच्छेद सबसे अधिक हैं। तो यदि एक गुणाँशमें दूसरा गुणांश समा जाय तो अनेक गुणाँश न होनेके कारण फिर उनमें यह तरतमता न रह सकेगी, इस कारण मानना ही होगा कि एक गुणांशमें अन्य गुणांश नहीं रहा करते।

यदि पुनरेकं न स्यात्स्यादपि चैवं पुनः पुनः सैषः।
एकांशदेशमात्र सर्वं स्यात्तन्न बाधितत्वात्प्राक् ॥ १५१ ॥

विधिवत् व्यतिरेक चतुष्टय न माननेपर दोषापत्तिका दिग्दर्शन— यदि ऊपर कहे हुए व्यतिरेक चतुष्टय न माने जायें तो इसका अर्थ यह होगा कि जो एक देश है वही अन्य सर्व देश है। तब द्रव्यकी भिन्नताका परिचय कैसे होगा ? जो पहिले समयमें द्रव्य है वही पूरा दूसरे समयमें है उसी रूप तो वस्तु फिर एक पर्याय मात्र हुई, अंशमात्र हुई। सदा टिक सकने वाली नहीं हुई। जो क्षेत्र एकका है उसमें अन्य क्षेत्र भी समाया हुआ है। तो वह सर्व क्षेत्र मात्र हो गया। वहाँ वह भी न रहा। यों ही यदि भावमें भावका व्यतिरेक नहीं है, एक गुणमें दूसरे गुणका व्यतिरेक नहीं हैं या गुणांशमें अन्य गुणांशका व्यतिरेक नहीं है तो सर्व एक गुणांशमात्र हो जायगा। तब वस्तुका परिचय प्राप्त ही नहीं किया जा सकता।

अयमर्थः पर्यायाः प्रत्येकं किल यथैकशः प्रोक्ताः।
व्यतिरेकिणो ह्यनेके न तथाऽनेकत्वतोपि सन्ति गुणा॥ १५२ ॥

पर्यायोंमें व्यतिरेकिता और गुणोंमें अन्वयिताकी सिद्धि—ऊपर कहे हुए व्यतिरेकोंका यह भाव है कि एक-एक समयमें क्रमसे भिन्न-भिन्न होने वाली जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणतियाँ हैं वे ही व्यतिरेकी हैं, गुण व्यतिरेकी नहीं हैं। यह सब व्यतिरेकका समझाना इस उद्देश्यसे किया गया है कि यह निर्णीत हो जाय कि गुणमें व्यतिरेक नहीं होता, पर्यायोंमें ही व्यतिरेक है। ये सब व्यतिरेक पर्याय दृष्टिसे निरखे जायें तो चारो की अपेक्षासे यह पर्यायमें व्यतिरेक घटित होगा, पर गुणोंमें व्यतिरेक एक समयमें हुआ भी लेकिन भिन्न समयमें व्यतिरेक ही मिलेगा और एक समयमें व्यतिरेक न मिलेगा। जो द्रव्यके एक समयकी पर्याय है वही पर्याय दूसरे समयमें नहीं होती। दूसरे समयमें तो अन्य ही कोई दूसरी पर्याय होगी। इस कारण द्रव्यका एक समयका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न है और दूसरे समयका द्रव्य क्षेत्र, काल भाव भिन्न है। देश क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे जो यह व्यतिरेक घटित करता है वह समय क्रमसे करता है। एक समयका यह चतुष्टय भिन्न है, दूसरे समयका यह चतुष्टय भिन्न है, इस कारण पर्याय व्यतिरेकी है। व्यतिरेकका लक्षण यह है कि जहाँ यह बुद्धि बनी कि यहाँ वह नहीं है, पर्यायें अनेक हैं और वे भिन्न-भिन्न हैं इस कारण इन पर्यायोंमें यह व्यतिरेक भली प्रकार घटित होता है कि यह वह नहीं है। एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप नहीं है, किन्तु गुणमें यह बात नहीं है। गुण यद्यपि अनेक हैं और एक समयमें अनेक गुण होने से स्वरूपकी अपेक्षासे एक गुणमें दूसरा गुण नहीं है। है तो वस्तु अखण्ड. अगर एक गुणमें दूसरा गुण समा गया और ऐसी दृष्टि आ गई तो वहाँ फिर गुण चित्तमें न रहेंगे। तो गुण एक समयमें अनेक हैं और स्वरूप उनका अपना अपना है, लेकिन वे सभी गुण जो पहिले समयमें हैं वे ही सब गुण दूसरे तीसरे समयमें हैं अनन्त समय तक। इस कारण गुणोंमें व्यतिरेक न बनेगा। कुछ समय बाद कह दिया जाय कि अब यह गुण नहीं हैं, प्रत्येक गुण अपने अनादि अनन्त अवस्थाओंमें पाया जाता है इस कारण प्रत्येक गुणमें यह वही है ऐसा अन्वय घटित होता है। तो गुण अन्वयी है, पर्याय व्यतिरेकी है। गुण शब्दके एकार्थ वाचक शब्द बताये गए थे और उन शब्दोंमें तीन शब्द मुख्य कहे गए—गुण सहभावी और अन्वयी। तो गुण तो यहाँ विशेष्यरूपसे ही कहे गए हैं—सहभावी और अन्वयी। इन दो विशेष्योंका अर्थ बताना था। सहभावी शब्दका अर्थ घटित करके अब गुणोंमें अन्वयीपना घटित किया जा रहा है तो ये व्यतिरेक चतुष्टय गुणोंमें नहीं पाये गए इस कारण गुण अन्वयी कहलाते हैं।

किन्त्वेकशः स्वबुद्धौ ज्ञानं जीवः स्वसर्वसारेण।
अथ चैकशः स्वबुद्धौ दृग्वा जीवः स्वसर्वसारेण॥ १५३॥

दृष्टान्त पूर्वक गुणोंमें अन्वयिताका समर्थन—द्रव्य तो एक अखण्ड है। द्रव्यको जिस किसी भी गुणकी प्रमुखतासे जाना तो भले ही उपाय किसी एक गुणकी प्रमुखताका रहा, किन्तु समझा गया वही द्रव्य। वही द्रव्य जब किसी दूसरे गुणकी प्रमुखतासे समझा जाता है तो वहाँ भी समझा गया वही द्रव्य, यही कारण है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसीने अपनी बुद्धिमें अपने सर्वसार रूपसे ज्ञानको ही जीव समझा । किसी दूसरे विवेकीने अपनी बुद्धिमें सर्वसाररूपसे दर्शनको ही जीव समझा, अर्थात् ज्ञान ही सर्वस्व है । जीव ज्ञानको छोड़कर और क्या है ? ज्ञान ही जीव है । किसीने समझा कि दर्शन ही जीव है । किसीने समझा कि आनन्द ही जीव है । तो किसीने ज्ञान गुणकी मुख्यता से जीवको ग्रहण किया और किसीने दर्शन गुणकी मुख्यतासे जीवको ग्रहण किया । हालाकि ज्ञान गुण जुदा है, दर्शन गुण जुदा है, सभी गुण परस्पर जुदे हैं, अर्थात् स्व-रूपतः लेकिन परस्पर अभिन्न हैं । कहीं द्रव्यमें भिन्न-भिन्नरूपसे ये गुण नहीं पाये जा रहे इस कारण जो यह कहा कि ज्ञान ही जीव है वह भी सही है । उसने जीवको ज्ञान की प्रधानतासे ग्रहण किया, और विश्लेषण करके देखें तो उन ज्ञान गुणमात्र ही तो नहीं है, वह भी अनन्त गुणोंका पिण्ड है । और, किसीने दर्शनकी प्रधानतासे ग्रहण किया, दर्शन मात्र ही जीव है तो कहीं केवल दर्शन गुण ही हो जीवमें, ऐसा नहीं है । अन्य गुण भी है । किसीने जीवको आनन्द गुणकी प्रधानतासे ग्रहण किया, तो कहीं ऐसा नहीं है कि जीवमें केवल आनन्द ही गुण है । अन्य गुण भी है । तो यद्यपि गुण अनेक हैं, फिर भी किसी भी गुणके द्वारा जो ग्रहण किया जाता है वह समस्त अर्थ ग्रहण किया जाता है । किसीने चक्षुइन्द्रिय द्वारा आमके रूपको निरखा तो उसने रूप की मुख्यतासे आमको ही जाना और कहीं चख करके स्वाद लिया तो उस ही पुरुषने अब रसकी भिन्नतासे आमको ग्रहण किया । तो यों भिन्न-भिन्न गुणोंकी प्रमुखतासे भिन्न-भिन्नरूपसे वही सर्वस्व द्रव्य जाना जाता है । इस कारणसे गुण परस्पर अभिन्न हैं, लेकिन वे अनेक हैं । अगर स्वरूपको देखा जाय तो ज्ञान गुणका स्वरूप ज्ञान गुणमें है, दर्शन गुणका स्वरूप दर्शन गुणमें है इसलिए गुणोंमें अनेकता होनेपर भी पर्यायोंकी तरह यह वह नहीं हैं ऐसा व्यतिरेक न घटित होगा । गुण अन्वयी है और पर्याय व्यतिरेकी है, यह ही निर्णय युक्तिसंगत होता है ।

तत एव यथाऽनेके पर्यायाः सैष नेति लक्षणतः ।
व्यतिरेकिणश्च न गुणास्तथेति सोऽयं न लक्षणाभावात् ।१५४।

गुणोंमें व्यतिरेक लक्षणकी अनुपलब्धि—इस कारण जैसे अनेक पर्यायोंमें व्यतिरिक घटित होता है वह भी नहीं है, इस लक्षणसे वे पर्यायें व्यतिरेकी हैं उस ही प्रकार अनेक होनेपर भी गुण व्यतिरेकी नहीं हैं क्योंकि उनमें व्यतिरेकका लक्षण बताया गया है कि यह वह नहीं है सो गुणोंमें किसी भी समय यह नहीं कहा जा सकता कि यह वह नहीं है । गुण शाश्वत् हैं, इस कारण गुण व्यतिरेकी नहीं, किन्तु अन्वयी हैं । इस प्रकरणमें अन्वय और व्यतिरेकका रहस्य समझनेके लिए सीधे शब्दों में यह जानना कि पर्यायें तो सब प्रकारसे व्यतिरेकी हैं । एक समयमें अनन्त पर्यायें भी हैं, क्योंकि पदार्थमें अनन्त गुण हैं और जितने गुण हैं उन सबकी पर्यायें भी होत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। एक अखण्ड द्रव्यको जैसे भेददृष्टिसे अनेक गुणोंके रूपमें देखा इसी प्रकार एक समयकी पर्यायको भेददृष्टिसे अनेक पर्यायोंके रूपमें देखा और यह अनेकता उन गुणोंमें नियत प्रकारसे है। यह पर्याय इस गुणकी है। तो एक समयमें जो अनन्त पर्यायें हो रही हैं, अनन्त गुण होनेके कारण वहाँ भी पर्यायोंमें किसी एक पर्यायमें दूसरी पर्याय नहीं है और भिन्न भिन्न समयोंमें जो वे अनन्तानन्त पर्यायें होती रहती हैं तो समयभेद में भी अर्थात् पूर्व समयकी पर्याय उत्तर समयकी पर्यायमें नहीं हैं तो यों गुणोंमें तिर्यक रूपसे और ऊर्ध्वांश रूपसे दोनों प्रकारसे व्यतिरेक घटित होता है किन्तु गुणोंमें एक पदार्थमें चूंकि अनन्त गुण हैं इस कारण अपने अपने स्वरूपकी दृष्टिसे एक गुणमें दूसरा गुण नहीं है, लेकिन वे सभीके सभी गुण पहिले समयमें भी थे, अब भी हैं और भविष्यमें अनन्त समय तक वे ही गुण रहेंगे, इस कारण गुण अन्वयी कहे गए हैं और पर्यायें व्यतिरेकी कही गई हैं।

तल्लक्षणं यथा स्याज्ज्ञानं जीवो य एव तावांश्च।
जीवो दर्शनमिति वा तदभिज्ञानात् स एव तावांश्च ॥ १५५ ॥

उदाहरणपूर्वक गुणोंमें अन्वयिताका दिग्दर्शन—उपर्युक्त गाथामें बताया था कि पर्यायोंमें तो व्यतिरेकका लक्षण घटित होता है, किन्तु गुणोंमें व्यतिरेकका लक्षण घटित नहीं होता। उसी बातको इस गाथामें स्पष्ट कह रहे हैं कि गुणोंमें अन्वय लक्षण ही घटित होता है। जिस समय जीवको ज्ञानस्वरूप कहा जाता है उस समय वह उतना ही है और जिस समय जीवको दर्शन स्वरूप कहा जाता है उस समय जीव दर्शनमात्र ही है। इस प्रकार जीवको बतानेमें प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह वही है। जिस समय ज्ञानस्वरूप जीवको जाना और बादमें दर्शनस्वरूप जाना तो दर्शन स्वरूप जीवको जाननेके समयमें यह प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह वही जीव है जिसे ज्ञानस्वरूपमें जाना था और परिपूर्णतया जाना था। तो ऐसा प्रत्यभिज्ञान होनेसे भी गुणोंमें अन्वय सिद्ध होता है। तो एक समयमें अनेक गुण हैं और उन अनेक गुणोंमें एक प्रकारसे व्यतिरेक सिद्ध होता था, किंतु एक समयमें रहने वाले गुणोंमें भी अन्वय सिद्ध हो रहा है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञान ऐसा ही होता है—यह वही जीव है जिसे ज्ञान-स्वरूपमें जाना था। यही जीव है जिसे अब दर्शन स्वरूपमें जाना जा रहा है।

एष क्रमः सुखादिषु गुणेषु वाच्यो गुरूपदेशाद्वा।
यो जानाति स पश्यति सुखमनुभवतीति स एव हेतोश्च ।१५६।

आनन्द आदिक सभी गुणोंमें अन्वयिताका कथन—यही क्रम सुखादिक गुणोंमें भी लगाना। जिस समय जीवको आनन्दस्वरूपमें देखा जाता है उस समय वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव आनन्दमात्र है। और, ऐसा समझनेमें हेतु यह है कि देखिये ! जो दशा है वही तो दीखती है और वह ही अनादिसे अनुभव करता है ऐसी प्रतीति होती है तो इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानसे सिद्ध होता है कि गुणोंमें अन्वय है। ये गुण कोई भिन्न भिन्न चीज नहीं है कि एक जीवमें भिन्न भिन्न सत्त्वको लिए हुए गुण हों, किंतु वह एक पदार्थ है और पदार्थ होनेसे उसमें एक स्वभाव है और सत् होनेके कारण वह निरन्तर उत्पादव्यय करता रहता है। अब पदार्थ और स्वभाव तथा पर्याय ये तीनों बातें ज्ञानमें लेनी पड़ीं, इससे पदार्थ तो एक अखण्ड अवक्तव्य है। अब उस ही पदार्थको वक्तव्य बनानेके लिए जो भेदव्यवहार किया गया है उससे उस स्वभावके अंश किए गए। और, वह अंश शक्तिके रूपमें आया। इसी प्रकार पर्यायोंको वक्तव्य करनेके लिए उसके अंश किए गये और वे अंश पृथक पृथक रूप स्वरूपमें इस प्रकारसे आये कि यह अमुक गुणकी पर्याय है, यह अमुक गुणकी पर्याय है। यों गुण और पर्यायोंका भेद एक तीर्थप्रवृत्तिके लिए किया गया है। तो जो शक्तिभेद किया गया वह जीवका सर्वस्व सार है जैसा कि स्वभाव। उनमेंसे जिस किसी भी शक्ति याने गुणरूपमें पदार्थ को देखा जा रहा है, पदार्थ उस समय तन्मात्र विदित होता है, क्योंकि वह स्वभाव है। जैसे कि जब केवल स्वभावरूपसे देखा जाता है तो वह स्वभावमात्र विदित होता है। जीवको जब चैतन्य स्वरूपमें निरखा तो जीव चिन्मात्र विदित हुआ। अब कुछ भेददृष्टि करके जब ज्ञानरूप देखा तो ज्ञानमात्र दर्शन स्वरूप देखा तो दर्शनमात्र और आनन्दस्वरूप देखा तो आनन्दमात्र यह जीव दृष्टगत हुआ। यही कारण है कि इस हीका एकान्त हठ करके कुछ एकान्दवाद निकला। जैसे एक दर्शन मानता है कि यह ब्रह्म केवल आनन्द स्वरूप है। एक दर्शन स्वीकार करता है कि यह आत्मा केवल दृष्टिस्वरूप है, चेतना स्वरूप मात्र है और वह चेतना एक दर्शनरूपमें स्वीकार किया गया है। उसमें ज्ञान नहीं माना। एक दर्शन जीवको ज्ञानमात्र मानता है। ज्ञानाद्वैत, वैसे ज्ञानमात्र अथवा दर्शनमात्र अथवा आनन्दमात्र जैन दर्शनने भी माना है किन्तु वह उस दृष्टिकी बात है, एकान्त नहीं किया गया है। तो यों जीव जब आनन्दस्वरूप देखा गया तो आनन्दमात्र समझा गया। वहाँ भी अन्वय ही दीखा।

अथ चोद्दिष्टं प्रागप्यर्था इति संज्ञका गुणा वाच्याः।
तदपि न रूढिवशादिह किन्त्वर्थाद्यौगिकं तदेवेति ॥ १५७ ॥

अर्थ शब्दकी गुणवाचकता—यहाँ पहिले बताया गया था कि गुणोंका अर्थ इस संज्ञासे भी कहा जाता है याने गुणोंका नाम अर्थ भी है और वह अर्थ शब्द केवल रूढिसे भी नहीं, किन्तु यौगिक रूपसे भी है। धातुमें प्रत्यय लगाकर धातुके अर्थके अनुरूप अर्थ करना यह यौगिक अर्थ है तो गुणोंको अर्थ भी कहते हैं। अर्थ शब्दका क्या व्युत्पत्यर्थ है सो आगे बतायेंगे। अभी यह जानें कि जिस गुणका व्युत्प-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

र्थ यह है कि जो भेदा जाय उसे कहते हैं गुण यांने पदार्थको स्वभावरूपमें देखा, अब उस ही स्वभावमें भेद करके गुण समझमें आया। गुण्यते भिद्यते द्रव्यं अनेन इति गुणः जो भेदा जाय उसे गुण कहते हैं। अथवा जिन शक्तियोंके द्वारा पदार्थ भेदा जाय एक अखण्ड अवक्तव्य पदार्थको अंश रूप कर करके समझाया जाय तो वे अंश तब गुण कहलाते हैं। तो जैसे गुण शब्दका यौगिक अर्थ यह है कि जिस अर्थसे शक्तिका स्वरूप विदित हुआ इसी प्रकार अर्थका भी यौगिक अर्थ है और वह क्या अर्थ है सो अगली गाथामें बताते हैं।

स्यादृगिताविति धातुस्तद्रूपोयं निरूच्यते तज्ज्ञैः।
अत्यर्थोनुगतार्थादनादिसन्तानरूपतोपि गुणः॥ १५८॥

अर्थ शब्दकी व्युत्पत्त्यर्थसे गुणवाचकताका स्पष्टीकरण—ऋ इतौ एक धातु है अर्थात् ऋ धातुका गमन अर्थ है। जो गमन करे उसे अर्थ कहते हैं। अर्थ शब्द का यौगिक अर्थ एक यह भी है अर्यते निश्चीयते इति अर्थः जो निश्चित किया जाय, जो जाना जाय, निर्णीत किया जाय उसे अर्थ कहते हैं। प्रायः जितने गत्यर्थक धातु हैं उनका जानना भी अर्थ होता है। तो चाहे यह कहा जाय कि जो चले सो अर्थ है अथवा यह कहा जाय कि जो जाना जाय सो अर्थ है। यौगिक अर्थ दोनों बनते हैं, पर जहाँ यह अर्थ है कि जो जाना जाय सो अर्थ है। इस अर्थमें तो पदार्थ आया, क्योंकि सभी जगह पदार्थ ही जाना जाता है। जब कभी गुणोंका भी ज्ञान किया जाता तो गुणोंके रूपमें पदार्थ जाना जाता है। केवल गुण नहीं जाना जाता। जैसे वस्त्र सफेद है यह ज्ञात किया तो रूपसे वस्त्र को जाना न कि केवल सफेद रूपसे। जब कभी जो पदार्थ जाना जाता है वह वह किसी गुण के रूपमें अथवा पर्याय के रूपमें जाना जाता है, यदि गुणों के रूपमें न जानकर पर्याय के रूपमें न जानकर केवल पदार्थ को ही जान लिया जाय तो वहीं तो मोक्ष मार्ग का अपूर्व पुरुषार्थ है। और स्वानुभवके निकटकी स्थिति है। तो एक अर्थ का अर्थ है पदार्थ और एक अर्थ से अर्थका वाच्य हुआ गुण जो गमन करे सो अर्थ। यह गुण त्रिकाल द्रव्यमें चलता रहता है। इसका कभी लोप नहीं होता। त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंमें इसका गमन है इस कारण इसे अर्थ कहते हैं। अनादि संतान रूपसे यह गुण साथ साथ चले आते हैं। इस कारण गुणोंका अर्थ नाम देना यह अन्वर्थक ही है।

अयमर्थः सन्ति गुणा अपि किल परिणामिनः स्वतः सिद्धाः।
नित्यानित्यत्वादप्युत्पादादित्रयात्मका सम्यक्॥ १५९॥

गुणोंकी स्वतः सिद्धता, स्वतः परिणामिता व उत्पादादित्रयात्मकता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का समर्थन—इस प्रसंगमें जो कुछ भी वर्णन किया गया है उस सबका सारांश यह है कि गुण भी स्वत: सिद्ध और परिणामी है। स्वत: सिद्ध तो यों है कि जैसे पदार्थों का सत्त्व किसीने उत्पन्न नहीं किया तो पदार्थका स्वभाव भी उत्पन्न नहीं किया गया। स्वभाव स्वभाववानमें सहज है और उस ही स्वभावमें भेद दृष्टिसे निरखने पर गुण विदित हुए तो गुण भी स्वत: सिद्ध कहलाये और परिणमे भी इस प्रकार हैं कि जैसे पदार्थ परिणमे हैं। जो कुछ भी है वह नियमसे है। वह नियमसे परिणमनशील है। तो जो है उस ही सत्‌को जब अंश विभाग कल्पनासे देखा तो जो भी शक्तियाँ विदित हुई जो गुण जाना गया वह गुण भी परिणमनशील है, क्योंकि गुण बराबर पदार्थ कहलाता है। जैसे कोई कहे कि वृक्ष हिला तो वृक्ष हिला इसके मायने यह है कि उसके डाले पत्ते, फल फूल हिले, क्योंकि वे वृक्षके अंग हैं। ऐसे ही पदार्थ परिणमे ऐसा कहने पर यह ध्वनित हुआ कि पदार्थमें गुण परिणमा। तो यों गुण परिणामी हैं। तो स्वत: सिद्ध एवं परिणामी होनेसे ये गुण कथंचित् नित्य भी हुए और कथंचित् अनित्य भी, और नित्यानित्यात्मक जब हुआ तो उससे यह सिद्ध हुआ कि उत्पादव्यय और ध्रौव्य है। जिस दृष्टिमें ये गुण अनित्य विदित हो रहे हैं उस दृष्टिमें उत्पाद और व्यय है। उत्पादव्यय हुए बिना अनित्यता क्या कहलायेगी? नवीन अवस्था उत्पन्न होना और पुरानी अवस्था विलीन होना इस ही धारामें रहनेपर अनित्य कहा जायगा। सो जैसे द्रव्यमें उत्पाद और व्यय होता है तो द्रव्यको ही अंश विभागसे समझकर जो गुण जाने गये वे गुण भी निरन्तर नवीन अवस्थामें आते हैं और उनकी पुरानी अवस्था विलीन होती है। तो यों गुण उत्पादव्यय स्वरूप हैं। अतएव अनित्य हैं। और नित्य यों हैं कि गुण शाश्वत रहते हैं।

दृष्टान्तपूर्वक गुणोंकी नित्यानित्यात्मकताका वर्णन—जैसे आममें कितने ही रंग बदलते जायें किन्तु रूपशक्ति वही है। बदलनेके समयमें भी कोई अन्तर नहीं आता कि पहिले नीला था अब हरा हुआ। तो इस बीचमें कुछ न रहा। रूप शक्ति वही है। वह रूप गुण पहिले नीली पर्यायमें था वही अब हरित पर्यायमें आ गया, तो जो गुण ध्रुव हैं जैसे कि द्रव्य ध्रुव है, पदार्थ अनादि अनन्त है उसका कभी लोप नहीं हो सकता यों ही पदार्थका भेददृष्टि से देखनेपर जो गुण समझ में आये वे सब भी ध्रुव हैं नित्य हैं। यों गुण नित्यानित्यात्मक हैं एक दृष्टिसे, तो यह विभाग किया जा सकता है कि गुण नित्य है और पर्याय अनित्य है, किन्तु इस दृष्टिमें यह आशय रखा गया कि जो शक्तिमात्र है वह तो नित्य है और उस शक्तिकी जो अवस्था है वह अनित्य है, किन्तु जब शक्ति और अवस्था कोई भिन्न-भिन्न नहीं हैं तब उस सबको गुण रूपमें ही देखा इस दृष्टिमें वे गुण नित्यानित्यात्मक सिद्ध होते हैं।

अस्ति विशेषस्तेषां सति च समाने यथा गुणत्वेपि।
साधारणास्त एके केचिदसाधारणा गुणा सन्ति ॥ १६० ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणोंमें साधारणता व असाधारणताका भेद—पदार्थ गुणोंका पिण्ड है। उन गुणोंमें दो प्रकारसे भेद पाया जाता है। कुछ गुण तो होते हैं सामान्य और कुछ होते हैं विशेष। अथवा गुणत्व सामान्यकी अपेक्षासे सभी गुणोंमें समानता है, क्योंकि सभी गुण हैं, इस प्रकारसे समानरूपसे विदित होते है, किन्तु विशेष दृष्टिसे देखा जाय तो उन गुणोंमें कुछ तो साधारण गुण हैं और कुछ असाधारण गुण हैं। साधारण गुण उन्हें कहते हैं जो सर्व द्रव्योंमें पाये जायें और साधारण गुणोंकी दृष्टिसे द्रव्यमें भेद नहीं किया जा सकता कि यह जीव है, यह पुद्गल है आदिक। कुछ असाधारण गुण होते हैं। असाधारण गुण उन्हें कहते हैं जो किसी एक जातिके द्रव्यमें ही पाया जाय, अन्य जातिके द्रव्यमें न पाया जाय। असाधारण गुणसे जातिभेद पड़ता है। तो यों वस्तुमें २ प्रकारके गुण हैं—साधारण और असाधारण। दोनों प्रकारके गुण होनेसे ही वस्तुमें वस्तुपना होता है। यदि किसी द्रव्यमें केवल साधारण गुण माना जाय, असाधारण गुण न माना जाय तो साधारणगुण भी न टिकेंगे क्योंकि वे व्यक्ति ही कुछ नहीं हैं, फिर उसमें साधारण गुण क्या आया ? चीज ही नही कुछ और यदि असाधारण गुण ही माने जायें, साधारण गुण न माने जायें तो असाधारण गुण रहे कैसे ? जैसे द्रव्यमें साधारण गुण अस्तित्व है और द्रव्योंमें असाधारण गुण जैसे जीवमें चेतन है तो एक जीवकी ही बात यहाँ उदाहरणमें लें कि जीवमें यदि चैतन्यको नहीं माना जाता तो अस्तित्व किसका ? जब कोई व्यक्ति ही नहीं, पदार्थ ही न रहा तो है कुछ न रहे। तो चेतनके बिना जीवका अस्तित्व कुछ नहीं है और कोई साधारण गुण ही मानता याने जीवमें अस्तित्व मानता है, चेतन नहीं मानता तो चेतन बिना अस्तित्व क्या ? और चेतन माने, अस्तित्व न माने तो जब कुछ है ही नहीं तो चेतन कहाँसे ठहरेंगे। यों साधारण और असाधारण दोनों प्रकारके गुण माननेसे ही वस्तुका वस्तुत्व बढ़ता है। अब साधारण और असाधारणका अर्थ बताते हैं।

साधारणास्तु यतरे ततरे नाम्ना गुणा हि सामान्याः।
ते चाऽसाधारणका यतरे ततरे गुणा विशेषाख्याः॥ १६१॥

साधारण और असाधारण गुणोंका लक्षण— जितने साधारण गुण हैं वे सामान्य नामसे कहे जाते हैं अर्थात् वह सामान्य गुण है और जो असाधारण गुण है वे सब विशेष नामसे कहे जाते हैं, अर्थात् वे विशेष गुण हैं जो सामान्य रीतिसे प्रत्येक द्रव्यमें पाये जायें ऐसे गुणोंको साधारण गुण कहते हैं जैसे अस्तित्व सभी द्रव्योंमें समान रूपसे है। जीव वह भी है, पुद्गल वह भी है, धर्मादिक द्रव्य वह भी है। तो हैपने की अपेक्षासे उनमें सामान्यपना आया। और जो गुण खास खास द्रव्यमें ही पाये जायें उन्हें असाधारण गुण कहते हैं। जैसे चेतन यह जीव जातिके पदार्थमें ही पाया जाता है अन्यमें नहीं। जैसे मूर्तिकता रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड होना यह पुद्गल द्रव्यमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही पाया जाता है अन्य द्रव्यमें नहीं। तो जो गुण खास-खास द्रव्यमें ही पाये जायें, सबमें नहीं, उन्हें असाधारण गुण कहते हैं। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि जो सब द्रव्योंमें रहे वह तो साधारण गुण है और जो किसी विशेष द्रव्यमें रहे वह विशेष गुण कहलाता है। तो साधारण गुण और असाधारण गुण दो प्रकारसे क्यों विदित हो रहे हैं, इसका वर्णन अब बताते हैं।

तेषामिह वक्तव्ये हेतुः साधारणैर्गुणैर्यस्मात्।
द्रव्यत्वमस्ति साध्यं द्रव्यविशेषस्तु साध्यते त्वितरैः ॥ १६२ ॥

साधारण गुणोंसे द्रव्यसामान्यकी सिद्धिमें अस्तित्व गुणसे द्रव्यसामान्य की सिद्धि– साधारण और असाधारण गुण क्यों बताये गए हैं पदार्थोंमें, इसका कारण यह है कि साधारण गुणोंसे तो द्रव्य सामान्यकी सिद्धि होती है और विशेष गुणोंसे विशेष द्रव्य सिद्ध किया जाता है। जैसे साधारण गुण हैं ६ अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। अस्तित्व गुणके कारण यह व्यवस्था विदित हुई कि पदार्थ है। पदार्थका अस्तित्व अस्तित्व गुणके कारण व्यवस्थित होनेमें है, उसीकी तो चर्चा है। जो नहीं है उसकी चर्चा कैसे की जा सकती है? कभी कभी ऐसा विदित होता है कि जो नहीं है उसकी भी चर्चा होती है। सो वहाँ भी बात यह है कि कहीं किसी समय किसी प्रकार है तब वहाँ चर्चा बनती है। जैसे कोई कहे कि खरगोशके सींग उदाहरणमें बहुत दिये जाते हैं और होते वे हैं नहीं! तो जो नहीं है तो जो नहीं है उसकी भी तो चर्चा की गई लेकिन सर्वथा नहीं है उसकी चर्चा नहीं होती। खरगोश तो है कहीं, सींग भी होती हैं, किसी भी जगह होती हों। तो ये दो शब्द जो बोले गए हैं इन शब्दोंका वाच्य तो है कहीं। गाय, भैंस आदिकमें सींग पाये जाते। खरगोश जानवर होता ही है। अगर सींग होते ही नहीं तो यह शब्द ही न बनता। जितने शब्द बने हुए हैं उनका वाच्य होता ही है। ना हो तो शब्द ही नहीं उठ सकता है। तो खरगोश भी है, सींग भी हैं, पर यहाँ नास्तित्व बताया जा रहा खरगोशके सींगका याने खरगोशमें सींग नहीं हैं। शब्द जो बोले गए हैं उन शब्दोंका वाच्य अर्थ अवश्य है। खरगोश भी है, सींग भी हैं। तो जो नहीं है उसके तो शब्द भी कोई नहीं होते, चर्चा ही क्या हो सकेगी? तो द्रव्यमें साधारण गुण अस्तित्व है, इस अस्तित्व गुणसे द्रव्य सामान्य सिद्ध होता है। जीव है, पुद्गल है, सब कोई है पने की दृष्टिमें सारे द्रव्य एक समान हैं। जैसे कोई कहे सत्, तो ऐसा कहनेसे यह विभाग न बनेगा कि जीव ही ग्रहणमें आया, अन्य ग्रहणमें न आया। सत् सत् कहते ही सब कुछ ग्रहणमें आ जाता है। तो साधारण गुणोंसे द्रव्य सामान्य विदित होता है।

वस्तुत्व गुणसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि—जैसे यहाँ अस्तित्व गुणसे सब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंका अस्तित्व समझा गया वैसे वस्तुत्व आदि गुणोंसे भी द्रव्य सामान्य जाना जाता है। वस्तुत्व गुण—इसका तीन प्रकारसे अर्थ किया जाता है। पहिला अर्थ यह कि अपने स्वरूपसे होना, पर स्वरूपसे न होना यह गुण वस्तुत्व कहलाता है। यदि यह बात न हो तो कोई पदार्थ ही नहीं रह सकता। अपने स्वरूपसे भी हो और पर-स्वरूपसे भी हो तो पदार्थ क्या रहा? वह तो पर बन गया। खुद भी क्या रहा? और, परस्वरूपसे जैसे नहीं है इसी तरह स्वरूपसे भी न हो जाय तो असत् हो गया। तो यह बात होना भी आवश्यक है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नहीं है। यह गुण साधारण गुण है। यह कला समस्त द्रव्योंमें पाई जाती है। सभी द्रव्य अपने अपने स्वरूपसे हैं पर स्वरूपसे नहीं हैं। वस्तुत्वका दूसरा अर्थ यह है कि जिसमें गुण बसे। तो गुण बसे ऐसी बात सभी द्रव्योंमें है, इस अर्थकी अपेक्षासे भी वस्तुत्व गुण साधारण गुण हुआ और उससे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था हुई। तीसरा अर्थ है जिसमें अर्थ क्रिया हो उसे वस्तु कहते हैं। अब कैसा अर्थ हुआ यह बात वस्तु होने नहीं बताया। जानने देखने की ही क्रिया हुई या मूर्तपनेकी परिणतिकी क्रिया हुई यह बात वस्तुत्वमें नहीं बनी हुई है, किन्तु सामान्यतया यह बताया गया कि जिसमें अर्थक्रिया हो सो वस्तुत्व गुणके कारण पदार्थकी अर्थक्रिया होती है। तो यह भी एक साधारण गुण है और इस गुणसे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था बनायी गई है।

द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व व प्रदेशवत्त्व गुणसे भी द्रव्य सामान्यकी सिद्धि— तीसरा साधारण गुण है द्रव्यत्व गुण। जिस गुणके कारण पदार्थ निरन्तर परिणमता रहे उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं। यह गुण भी सब द्रव्योंमें समानरूपसे पाया जाता है। सभी पदार्थ तभी हैं रह पाते हैं जबकि वे प्रतिसमय परिणमन किया करते हैं। तो द्रव्यत्व गुणसे भी सभी द्रव्य समानरूपसे विदित हुए। चौथा गुण है अगुरुलघुत्व गुण जिस गुणके कारण पदार्थ अपने स्वरूपमें ही परिणमता है, पर पदार्थके स्वरूपमें नहीं परिणमता। इस अगुरुलघुत्व गुणके कारण द्रव्यकी व्यवस्था बनी है। यदि कोई पदार्थ पर पदार्थके रूपसे परिणमने लगे तो इसका अस्तित्व नहीं रह सकता। इस कारण अगुरुलघुत्व गुण है ही पदार्थमें, जिससे कि वह अपने स्वरूपमें ही परिणमता है, परस्वरूपसे नहीं परिणमता, किन्तु यह गुण समस्त द्रव्योंमें पाया जाता है, इस गुण के कारण द्रव्यमें विभाग न हो सके कि यह जीव है, यह पुद्गल है आदिक तो अगुरुल-घुत्व गुण भी साधारण गुण है। ये चारों गुण समझमें आनेपर भी अभी द्रव्य कुछ समझा नहीं गया, क्योंकि किसमें कहाँ निरखे यह गुण। तो उसके लिए प्रदेशवत्त्व गुण मदद देता है। प्रदेशवत्त्व गुणके प्रसादसे प्रत्येक पदार्थ प्रदेशवान रहता है। जैसे कि अभी जीवको ऐसा अनुभव होता कि यह शरीर प्रमाण विस्तारमें है, तो है वह एक जीव लेकिन इतने विस्तारमें है तो प्रदेशरूप तो समझमें बात आने लगी ना। कोई पदार्थ एक प्रदेश भी है तो अर्थ यह हुआ कि उसका विस्तार नहीं है। न रहा विस्तार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर प्रदेश तो वहाँ भी है जहाँ गुण समझे जा रहे हैं। तो प्रदेशवत्व गुणके कारण पदार्थोंमें प्रदेशवत्वकी व्यवस्था हुई, यह भी साधारण गुण है। इससे द्रव्योंमें विभाग न बन सका।

प्रमेयत्व गुणसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि—छठा साधारण गुण है प्रमेयत्व गुण। जो ज्ञानमें ज्ञेय रह सके उसे प्रमेयत्व कहते हैं। यहाँ एक जिज्ञासा हो सकती है कि प्रमेयत्व गुणकी आवश्यकता क्या हुई थी ? पदार्थका अस्तित्व बन गया। अब ज्ञानमें आये अथवा न आये यह बात कोई अलग ही हुई। प्रमेयत्व न भी हो तो पदार्थोंका अस्तित्व तो बन ही गया, किन्तु यह जिज्ञासा स्वरूप दृष्टिसे शान्त हो जायगी। जो सत् है वह प्रमेय ही होता है। असत् प्रमेय नहीं होता। और, जो सत् है वह नियमसे प्रमेय ही होगा। अप्रमेय नहीं रह सकता। जिसका ज्ञान विशुद्ध है, निरावरण है तो ज्ञानकी ओरसे यह कला प्रकट हुई है कि जो भी सत् है वह ज्ञानमें आयेगा। तो सर्व सत्को ज्ञेय होना ही पड़ा। न हो ज्ञेय तो वह सत् ही नहीं रह सकता। भले ही कुछ छद्मस्थोंमें यह विभाग किया जायगा कि साधारण ५ गुण ही मान लेना, प्रमेय न मानना तो ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो छद्मस्थके ज्ञानमें नहीं आ रहे, नहीं आ रहे फिर भी वे पदार्थ हैं तो वह एक सावरण ज्ञानकी बात है। और चाहे इस प्रकार भेद डाल लें, पर वस्तुमें वस्तुकी ओरसे यह भेद न करेगा। प्रत्येक वस्तुमें प्रत्येक गुण है। चाहे उसे कोई गुण न भी जान सके, मगर गुण प्रमेय है ही निरावरण ज्ञान होनेपर। पर पुरुष शरीर प्रमेयको प्राप्त कर सकता है। यों ६ साधारण गुणोंसे द्रव्य सामान्यकी व्यवस्था होती है।

असाधारण गुणोंसे द्रव्यविशेषकी सिद्धि—पदार्थमें जो विशेष गुण पाये जाते हैं उनसे द्रव्य विशेषकी सिद्धि होती है। यदि विशेष गुण न हो तो वहाँ सामान्य गुण भी नहीं ठहरता और सामान्य गुण होना जैसे विशेष गुण होनेके लिए आवश्यक है इसी प्रकार विशेषगुण होना सामान्य गुण बनाये रखनेके लिए आवश्यक है। सामान्य गुणोंसे जैसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि होती है उसी प्रकार विशेष गुणोंसे द्रव्य विशेषका विभाग बनता है। जैसे कि जहाँ चैतन्य पाया जाय वह जीव है। जहाँ मूर्तपना पाया जाय कि पुद्गल है, जहाँ गति हेतुता है वह धर्म द्रव्य है। जहाँ स्थिति हेतुता है वह अधर्म द्रव्य है। जो अवगाहन हेतु है वह आकाश द्रव्य है। जहाँ परिणमन हेतुपना है वह काल द्रव्य है, तो इन विशेष गुणोंके द्वारा विशेष द्रव्यका विभाग बन जाता है और द्रव्य विशेष अथवा विशेष गुण होना यह अर्थक्रियाके लिए आवश्यक है। सामान्य गुण अर्थक्रियामें सहयोगी तो है पर विशेष गुण हुए बिना किस प्रकारकी क्रिया होगी किस पदार्थमें यह बात बन ही न सकेगी। इस कारण अर्थक्रिया होनेमें विशेष गुणके अस्तित्वका बहुत बड़ा सहयोग है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संदृष्टिः सदिति गुणः स यथा द्रव्यत्वसाधको भवति ।
अथ च ज्ञानं गुण इति द्रव्यविशेषस्य साधको भवति ॥१६३॥

उदाहरणपूर्वक साधारण गुणोंसे द्रव्यसामान्यकी व असाधारण गुणोंसे द्रव्य विशेषकी सिद्धिका प्रतिपादन—इसी उक्त तथ्यको उदाहरणपूर्वक इस गाथा में दिखाया जारहा है कि जैसे सत् यह गुण सामान्यद्रव्यका साधक है अर्थात् अस्तित्व है, इतने मात्रसे द्रव्य सामान्यकी सिद्धि है कि है कुछ। और जब कहा ज्ञान गुण है तो यह ज्ञानगुण द्रव्यविशेषका साधक है अर्थात् ज्ञानगुण कहनेसे एक जीव द्रव्यकी सिद्धि होती है। जिसमें ज्ञानगुण है वह क्या है ? उत्तर मिलेगा—कोई भी पदार्थ। तो यों अस्तित्व गुण द्रव्यत्वका साधक है बस है कोई द्रव्य। और विशेष गुण जैसे कि ज्ञान गुण कहा तो वह किसी द्रव्य विशेषका ही साधक है अर्थात् जीव। तो प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखता है। वह स्वरूप विशेष गुणसे ही विदित होता है। तो यों विशेष गुण एक द्रव्य विशेषका साधक है और सामान्य गुण द्रव्य सामान्यका साधक है। इस तरह गुणोंमें भेद है कि कोई गुण साधारण है और कोई गुण असाधारण है। अब उत्पादव्ययकी बात देखी जाय तो द्रव्यसे गुण अलग नहीं है और द्रव्य में उत्पादव्यय होता ही है। इसमें विवाद न रहा तो भेददृष्टिसे परखे गये जो गुण हैं उनमें भी उत्पादव्यय माना जा सकता है। यह हुआ अंशरूपसे और वह द्रव्य हुआ एक समस्त रूपसे। तो जब उत्पादव्यय माना है तो विशेष गुणमें है या साधारण गुणमें। यहाँ भी विशेष गुण और साधारण गुण पृथक नहीं हैं। वस्तु एक है, उसके ही परखनेके लिए गुण बताये गए हैं। उन सब गुणोंमें यह विभाग बनायें कि कुछ गुण ऐसे हैं जो सब द्रव्योंमें पाये जा सकते। किसी एकका अस्तित्व सबमें नहीं पाया जाता, मगर अस्तित्व गुण जैसे एकमें है वैसे ही दूसरेमें है। कहीं अस्तित्व गुण एक हो, दुनियामें सर्वव्यापक हो और वह फिर सब पदार्थोंमें पाया जाता हो ऐसा नहीं है किंतु सभी पदार्थ सत् हैं इस बातको जाहिर करने वाला जो अस्तित्व गुण है, वह सब द्रव्यों में समान है, इसलिए इसे सामान्य गुण कहते हैं। जो समानमें हो उसे सामान्य कहते हैं। कहीं अद्वैत एक न बन जायगा कि कोई एक सद्ब्रह्म हो और वह सबमें पाया जाता हो। तो उत्पादव्यय कह ही चुके। साधारण और असाधारण गुण प्रत्येक पदार्थ के उसमें ही हैं। तो जहाँ द्रव्यमें उत्पाद हो तो सभी गुणोंमें उत्पाद समझ लीजिए और जैसे द्रव्य शाश्वत् हैं इसी प्रकार सभी गुणोंको शाश्वत् समझना चाहिये।

उक्तं हि गुणानामिह लक्ष्यं तल्लक्षणं यथाऽऽगमतः ।
सम्प्रति पर्यायाणां लक्ष्यं तल्लक्षणं च वक्ष्यामः ॥१६४॥

पर्यायोंका लक्षण कथन करनेका संकल्प—यहाँ तक गुणोंका लक्ष्य और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लक्षण कहा गया। गुणोंका लक्षण क्या है यह भी बताया और गुणोंका लक्ष्य क्या है, अर्थात् गुणोंके परिज्ञानसे पहिचानना किसको है यह भी बताया गया है। अब गुणोंका लक्ष्य क्या है ? पदार्थ। कोई अवक्तव्य अखण्ड द्रव्य, उसे ही तो समझनेके लिए भेद दृष्टिसे अंश करके गुणोंकी बात कही जाती है। और गुणोंका लक्षण क्या हुआ ? तो यह सब कहा ही गया है और साधारण असाधारण प्रकाररूपसे भी गुणोंके विषयमें प्रकाश डाला है। अब उन गुणोंकी कोई न कोई अवस्था होती ही है, उन्हें कहते हैं पर्याय। जब अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो वह है एक द्रव्यकी एक पर्याय। और, जब भेद दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें जितने गुण विदित किए गए उन गुणोंकी पर्याय। किसी भी रूपसे देखें पर्यायका स्वरूप है अवस्था परिणमन, व्यक्ति। सो अब पर्यायोंका लक्ष्य और लक्षण कहते हैं।

क्रमवर्तिनो ह्यनित्या अथ च व्यतिरेकिणश्च पर्यायाः।
उत्पादव्ययरूपा अपि च ध्रौव्यात्मकाः कथञ्चिच्च ॥ १६५ ॥

क्रमवर्तिता व अनित्यताके परिचय द्वारा पर्यायोंका लक्ष्यीकरण—पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं अर्थात् गुणोंकी तरह एक साथ रह सकें ऐसा नहीं है, क्योंकि पर्यायें समयानुसार उत्तरोत्तर नवीन-नवीन होती रहती हैं। तो एक पर्यायमें दूसरी पर्याय होती ही नहीं, समझ ही नहीं पाता, अवसर ही नहीं मिलता। तो सब पर्यायें एक साथ द्रव्यमें कैसे पायी जा सकती हैं ? वे क्रमसे ही होती हैं। क्रमवर्ती कहकर यह अर्थ न लेना कि जिस क्रमसे होना नियत है उस क्रमसे ही होता है। ऐसा अर्थ यहाँ विवक्षित नहीं है, किन्तु पर्यायोंकी तरह एक साथ नहीं हुआ करता है पर्यायें एक द्रव्यमें, इस बातको समझानेके लिए क्रमवर्ती शब्द कहा है, तो पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं। पर्यायोंका कोई एक ही विशेषण सोचा जाय तो उस ही विशेषणसे पर्यायके सब विशेषण जान लिए जाते हैं। यहाँ दूसरा विशेषण दिया गया है कि पर्यायें अनित्य होती हैं। तो क्रमवर्ती जो होंगी वे अनित्य होंगी ही। क्रमवर्ती विशेषणसे ही जाहिर हो जाता है कि पर्यायें अनित्य हैं। जब क्रमसे हुआ तो तब हुआ, तब उत्पाद है। जब न था तब न था। अगली समयमें और कुछ होगा तो इसका विनाश है तो यों अनित्य होना उस पहिले विशेषणसे ही ध्वनित हो जाता है, फिर भी विशेष स्पष्टीकरणके लिए यहाँ विशेष दिया है कि पर्यायें अनित्य हैं।

व्यतिरेकिता, उत्पादव्ययमयता व कथंचित् ध्रुवताके परिचय द्वारा पर्यायोंका लक्ष्यीकरण—पर्यायें व्यतिरेकी हैं। यह विशेषण भी पूर्व कहे गए विशेषणोंसे अपने आप ध्वनित हो जाता है। फिर भी स्वरूप विशद बनानेके लिए यहाँ विशेष लिया है। व्यतिरेकीका अर्थ है भिन्न-भिन्न होना, पूर्वपर्यायका स्वरूप जुदा है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्तर पर्यायका स्वरूप जुदा है। पूर्व पर्यायमें उत्तर पर्याय नहीं, उत्तर पर्यायमें पूर्व पर्याय नहीं। इस तरह ये पर्यायें व्यतिरेकी हैं, भिन्न-भिन्न हैं। देखिये ! जो क्रमवर्ती होगा वह भिन्न तो होगा ही। तो क्रमवर्तीके कहनेसे व्यतिरेकी सिद्ध हो जाता है। जो अनित्य हुवे वे व्यतिरेकी होंगे, फिर भी अनित्यके साथ व्यतिरेकीपनेकी व्याप्ति स्पष्ट न होनेसे इसे अलगसे कहा है कि पर्याय व्यतिरेकी होती हैं। और, चौथा विशेषण कह रहे हैं कि पर्यायें उत्पादव्ययरूप हैं, नाना पर्यायोंका उत्पाद पूर्वपर्यायका व्यय होना, यह बात प्रतिसमय पदार्थमें चलती ही रहती है। यों वे पर्यायें कथंचित् ध्रौव्य स्वरूप होती हैं। ध्रौव्य किस तरह हुई? पर्यायें नवीन नवीन हुईं, बदली गईं पर कोई पर्याय शून्य न रही। कितने ही परिणमन होनेपर भी पर्याय तो रही ही। पर्यायपना मिटता नहीं इस कारणसे पर्यायें कथंचित् ध्रुव होती हैं।

तत्र व्यतिरेकित्वं प्रायः प्रागेव लक्षितं सम्यक्।
अवशिष्टविशेषमितः क्रमतः संल्लक्ष्यते यथाशक्ति ॥ १६६ ॥

पर्यायोंके लक्षणोंका संक्षिप्त परिचय–ऊपरकी गाथामें जो पर्यायोंके लक्षण में ४-५ विशेष दिए गए हैं उनमें व्यतिरेकीपनेका तो वर्णन पहिले बहुत आ चुका है। अब शेष रहे क्रमवर्ती अनित्य उत्पादव्ययस्वरूप और कथंचित् ध्रौव्य इन विशेषणोंका वर्णन किया जायगा। यद्यपि इन विशेषणोंमेंसे कोई भी एक विशेषण कहा जाय इतने मात्रसे पूर्ण बोध हो जाता है। जैसे जिस मनुष्यके सम्बंधमें लोगोंको विशेष परिचय है उस मनुष्यमें विशेषतायें अनेक हैं रिस्ते भी अनेक हैं, पर एक ही बात कहते ही वह पूरा मनुष्य परिचयमें आ जाता है, तो इसी प्रकार जो द्रव्य गुण पर्यायोंके सम्बंध में विशेष जानकारी रखता है ऐसे पुरुषोंको कोई भी एक शब्द बोला जाय तो उससे उस जातिकी बात जितनी भी है, उस ज्ञानीको विदित है, वह सब उसके ज्ञानमें आ जाता है। जब कहा कि पर्यायें व्यतिरेकी हैं कोई कथन मात्रसे क्रमवर्ती होना, अनित्य होना, उत्पादव्यय स्वरूप होना यह सिद्ध हो जाता है और व्यतिरेकी है, ऐसा कहनेसे यह तो नहीं ज्ञात किया गया कि वह ऐसा परस्पर भिन्न है कि वह होकर मिट जाय और दूसरा कुछ न हो ऐसी भी नौबत आ सके, ऐसा नहीं होता। पर्यायोंके व्यतिरेकीपन समझनेके बावजूद भी यह बात ज्ञानीके परिचयमें बैठी रहती है कि पर्यायें तो कथंचित् ध्रुव हैं, कोई न कोई पर्याय रहती है। पर्याय सामान्यकी अपेक्षा नित्य है, व्यतिरेकी है, अतएव क्रमवर्ती है। व्यतिरेकी है अतएव अनित्य है। व्यतिरेकी है अतएव उत्पाद व्यय स्वरूप है, फिर इन सब विशेषणोंके कहनेकी आवश्यकता क्यों हुई ? इसके दो कारण हैं - एक तो विशेष प्रतिपादन करना, दूसरी बात सूक्ष्म रूपसे इसमें परस्पर व्याप्ति भी नहीं है। जो व्यतिरेकी हो वह क्रमवर्ती ही हो यह बात स्पष्ट नहीं होती। गुणोंके स्वरूप हैं। तो प्रत्येक गुण अपने अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। और एक गुणमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूसरे गुणका व्यतिरेक है, भिन्न भिन्न उनका स्वरूप है, व्यतिरेकपन तो गुणोंमें आयगा लेकिन गुण क्रमवर्ती हों यह बात नहीं आती। गुण सभी सहकारी होते हैं। इस तरह गुण व्यतिरेकी हैं ऐसा कहनेसे अनित्य ही है, यह बात स्पष्ट जाहिर नहीं होती। जो दार्शनिक पदार्थोंको ध्रुव मानते और अनेक पदार्थ मानते—जैसे कि विशिष्टाद्वैतवाद में पदार्थ अनेक हैं और वे अद्वैत स्वरूप हैं, ध्रुव हैं तो व्यतिरेकी तो वे होंगे ही क्योंकि अनेक हैं और अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। तो इतने मात्रसे अनित्यकी बात नहीं जाहिर होती। जब अनित्य जाहिर न हो तो उत्पादव्यय कैसे जाहिर हो? और जो व्यतिरेकी हैं वे सभी ध्रुव हों यह बात नहीं बनती। जैसे क्षणिकवादमें पदार्थ व्यतिरेकी हैं लेकिन ध्रुव नहीं हैं तो यहाँ सब विवादोंका सम्बन्ध करनेके लिए पर्यायोंके इन सब विशेषणोंकी बात कही जा रही है और उनमेंसे व्यतिरेकीपनकी बातपर तो बहुत प्रकाश डाला जा चुका है। अब क्रमवर्तीपनेके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जायगा।

अस्त्यत्र य प्रसिद्धः क्रम इति धातुश्च पादविक्षेपे।
क्रमति क्रम इति रूपस्तस्य स्वार्थानतिक्रमादेषः॥ १६७॥

वर्तन्ते ते नयतो भवितु शीलास्तथा स्वरूपेण।
यदि वा स एव वर्ती येषां क्रमवर्तिनस्त एवार्थात्॥ १६८॥

पर्यायोंकी क्रमवर्तिताका प्रतिपादन—इन दो गाथाओंमें क्रमवर्तीका लक्षण बता रहे हैं। क्रम शब्दमें क्रम धातु मिली है। क्रम धातुका अर्थ है पादविच्छेद। पादविच्छेदका मतलब है कदमोंका धरना। चूंकि कदमोंका धरना क्रमसे भी होता है अतएव क्रम धातुका अर्थ है क्रमसे गमन करना। गमन करनेका भाव है यहाँ होना। क्रमसे होनेका नाम है क्रम धातुका अर्थ। उस ही धातुसे क्रम शब्द बना है। तो क्रम धातुका जो अर्थ है उसका उल्लंघन न करके यहाँ क्रमवर्ती शब्दमें क्रमका भाव लिया गया है अर्थात् जो क्रमसे वर्तन करे याने क्रमसे होवे उसे क्रमवर्ती कहते हैं। पर्यायें सभी क्रमसे होती हैं क्योंकि पर्यायें हैं कालस्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाले तत्त्व। तो काल होता है क्रमसे। प्रत्येक समयमें जो जो अवस्थायें होती रहती हैं उनको पर्यायें कहते हैं। तो ये पर्यायें क्रमसे होंगी। एक अखण्ड द्रव्यमें जो पर्याय है वह अखण्ड है, ऐसा मानकर देखें तो प्रत्येक समयमें उस उस अखण्ड द्रव्यका परिणमन होता है। तो जो भी परिणमन होता है वह पर्याय है। ये पर्यायें क्रमसे हुआ करती हैं अतः इन्हें क्रमवर्ती कहते हैं। भेददृष्टिसे निरखनेपर वही द्रव्य गुणों रूपमें दीखा और जब पर्यायें दीखीं इस ही भेद दृष्टिके प्रसङ्गमें तो प्रत्येक गुणकी एक एक पर्याय हुई। ये पर्यायें प्रत्येक गुणकी प्रति समयमें होती रहती हैं। दूसरे समयकी पर्याय पहिले समयकी पर्याय नष्ट होते समय होती है। यों पूर्व पूर्व पर्यायें नष्ट होती हैं उत्तर पर्यायें उत्पन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती हैं। यों अनन्त पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं तो उनको क्रमवर्ती कहते हैं। अथवा इस प्रकारका भी अर्थ करते हैं कि क्रम स्वरूपसे होनेका जिनका स्वभाव है उन्हें क्रमवर्ती कहते हैं। क्रमवर्ती शब्दसे सहभावी गुणोंकी प्रतिपक्षता बताई गई है। गुण सहभावी हैं। एक साथ उनका होना है, उनका अस्तित्व है। इनका अस्तित्व क्रमसे होता है। इस ही क्रमवर्ती शब्दके भेदसे अब अगली गाथामें स्पष्ट करते हैं।

अयमर्थः प्रागेकं जातं समुच्छिद्य जायते चैकः।
अथ नष्टे सति तस्मिन्नन्योप्युत्पद्यते यथा देशः॥ १६६ ॥

पर्यायोंकी क्रमवर्तिताका स्पष्टीकरण—पर्यायें क्रमवर्ती हैं, इसका अर्थ यह है कि पहिले एक पर्याय उत्पन्न हुई फिर उसका नाश होकर दूसरी पर्याय हुई, फिर दूसरेका भी नाश होकर अन्य पर्याय (दूसरी पर्याय) हुई। इस प्रकार पूर्व-पूर्व पर्याय नष्ट होनेपर उत्तर-उत्तर पर्याय होती जाती है, इसीका नाम क्रमवर्ती है। अब इस कमवर्तीपनेको अभेद दृष्टि और भेद दृष्टिसे देखा जा सकता है। अभेद दृष्टिसे निरखनेपर अनन्त गुणोंका अभिन्न पिण्ड जिसे एक देश जाना गया था, तो वह पदार्थ जिस अवस्था सम्पन्न जब जब होता है उसको नजरमें रखकर यह कह सकते हैं कि एक समयका देश दूसरे समयसे भिन्न है। तो अवस्थाभेदसे उस एक पदार्थमें भिन्नता आती है, वहाँ समूची एक पर्याय मिट गई है और भेद दृष्टिसे निरखनेपर जितने गुण जाने गए उतनी ही पर्यायें और एक समयमें ऐसी अनेक पर्यायें हैं वे निर्यक रूपमें व्यतिरेकी हैं। लेकिन पर्यायोंका स्वरूप कालकी अपेक्षा होता है। अतः प्रति समयमें वे ही अनेक पर्यायें पूर्व पूर्व पर्याय नष्ट होकर उत्तर-उत्तर पर्यायें होती हैं। यों काल-क्रमकी अपेक्षा ये पर्यायें परस्पर भिन्न हैं। यों अभेद दृष्टि व भेद दृष्टि दोनोंसे निरखने पर पर्यायोंका क्रमवर्तीपना सिद्ध होता है।

ननु यद्यस्ति स भेदः शब्दकृतो भवतु वा तदेकार्थात्।
व्यतिरेकक्रमयोरिह को भेदः पारमार्थिकस्त्विति चेत्॥ १७० ॥

शङ्काकार द्वारा व्यतिरेक और क्रममें अर्थभेदके अभावकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार एक शङ्का रख रहा है कि व्यतिरेकीपन और क्रमवर्तीपनमें शब्द भेद ही माना जाय तब तो यह बात ठीक बनती है। रहो, क्योंकि दोनोंका एक ही अर्थ है। क्रमसे होता है तो जो क्रमसे हो रहे हैं पूर्वपर्याय नष्ट हो उत्तर पर्याय उत्पन्न हो तो वे पर्यायें अभिन्न ही तो हैं। उनमें व्यतिरेक है। तो व्यतिरेकपन और क्रमवर्ती पन दोनोंका एक ही अर्थ होनेसे शब्दभेद माना जाय तब तो ठीक लग रहा है और यदि दोनोंमें अर्थभेद माना जाता तो यह बतलावो कि वास्तवमें क्रमवर्तीपन और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यतिरेकीपन इन दोनोंमें अन्तर क्या है ? इस शङ्काका भाव यह है कि यहाँ क्रमवर्ती-
पन और व्यतिरेकीपनमें अन्तर पूछा गया है। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं।

तन्न यतोस्ति विशेषः सदंशधर्मे द्वयोः समानेपि।
स्थूलेष्विव पर्यायेष्वन्तर्लीनाश्च पर्ययाः सूक्ष्माः ॥ १७१ ॥

लौकिक दृष्टान्तपूर्वक व्यतिरेक और क्रममें अर्थभेदका दिग्दर्शन— शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि व्यतिरेक और क्रमवर्ती दोनों यद्यपि एक सत्के अंशरूप धर्म हैं और एक ही पदार्थके अंशरूप धर्मकी समानता है फिर भी इन दोनोंमें अन्तर है, अथवा यह कहो कि पूर्व समयवर्ती पर्याय और समयवर्ती पर्याय ये दोनों कालकृत अंश हैं। इन अंशोंमें समानता है अर्थात् एक स्थूल दृष्टिसे प्रतिसमय होने वाली पर्यायों में असमानता नजर नहीं आती, किन्तु कुछ अनेक पर्यायोंके गुजरनेके बाद इसमें असमानता दृष्टिगोचर होती है। जैसे कोई बालक एक वर्षमें चार इंच वृद्धिको प्राप्त होता है तो भले ही १ वर्षमें या ६ माहमें समझमें आ जाता है कि यह बालक पहिले से कुछ बढ़ गया है लेकिन बढ़ तो रहा है वह प्रति मिनटमें। यदि प्रतिमिनटमें न बढ़ता होता तो उन मिनटोंका समूहरूप एक वर्ष है, उसमें भी बढ़ना नहीं बन सकता। तो प्रति मिनटमें बढनेपर भी उस बालककी लम्बाईमें क्या असमानता विदित होती है ? नहीं। समानता नजर आती है। तो यों पूर्व समयवर्ती पर्याय और उसके निकट की उत्तरवर्ती पर्याय इन दोनोंमें समानता है, पर समानता होने पर भी अन्तर है, विशेषता यह है कि असमानता विदित नहीं हो पा रही, दृष्टिगोचर नहीं हो रही, तब भी युक्ति यह बतलाती है कि पूर्वसमयकी पर्यायसे उत्तर समयकी पर्याय भिन्न है। यदि इन दोनों पर्यायोंमें व्यतिरेकीपना न हो ऐसी अनेक पर्यायें होनेपर भी विसदृश परिण-मन नजर न आने चाहिए। जैसे कि प्रति मिनटमें बालककी वृद्धि न मानी जाय तो एक वर्षमें भी वृद्धि न बन सकेगी। यों ही यदि पूर्व समय और उत्तर समयकी पर्यायमें व्यतिरेक न माना जाय तो अनेक समयोंकी पर्याय गुजरनेके बाद एक एक दम विसदृश पर्याय नजर आ जाती है यह विसदृश यह व्यतिरेक भी न होना चाहिए। जिस प्रकार स्थूल पर्यायोंमें सूक्ष्म पर्यायें अन्तर्लीन हो जाती हैं और ऐसा होनेपर भी उन सूक्ष्म पर्यायोंमें लक्षण भेदसे भेद है वह बात समझमें आ जाती उसी प्रकार सर्वत्र यही बात समझना चाहिए कि सर्व पर्यायोंमें चाहे सदृषता न जाहिर होती हो तब भी व्यतिरेक है।

उदाहरण पूर्वक व्यतिरेक व क्रममें अर्थभेद रहनेका प्रतिपादन— विसदृशताकी बात यहाँके विभाव पर्यायोंकी कही जाती जहाँ कि विसदृशता दृष्टिगोचर हो जाती है, किन्तु जहाँ स्वभाव परिणमन हो रहा है ऐसे नित्य शुद्ध पदार्थोंमें और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपाय शुद्ध पदार्थोंमें परमात्मामें जो स्वभाव पर्यायें होती रहती हैं वे सब सदृशरूप हैं, इतनेपर भी पूर्व समयकी पर्यायसे उत्तर समयकी पर्यायमें व्यतिरेक है, व्यतिरेक हुए बिना पर्याय न बन सकेगी। और पर्यायोंके हुए बिना द्रव्यका सत्व न रह सकेगा। तो यों प्रत्येक समयकी पर्यायोंमें परस्पर व्यतिरेक है। क्रमवर्ती शब्द कहने पर भी यह व्यतिरेक अर्थ ध्यानमें नहीं आता। क्रमवर्ती शब्दका अर्थ इतना ही है कि क्रमसे होता है। तो जिस शब्दसे जो अर्थसे जो शब्द ध्वनित होता है उस शब्दका उतना ही अर्थ आता है। तो क्रमवर्तीसे क्रमवर्तीपना ही विदित होता है। अब उनमें व्यतिरेक है, यह बात समझनेके लिए व्यतिरेकीपनेकी बात कही गई है। तो मोटेरूपमें यहाँ यह भाव समझना कि जैसे कहा जाता है ना कि स्थूल पर्याय चिरस्थायी है और इसी दृष्टिसे उस पर्यायको कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप भी कहा है। जैसे मनुष्य पर्याय। कोई मनुष्य ८० वर्ष तक जीवित रहता है तो ८० वर्ष तक वह एक पर्यायमें रहा। मनुष्य पर्याय ८० वर्ष तक स्थायी रही, यह एक स्थूल दृष्टिसे निरखा गया। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर तो वहाँ भी प्रतिसमय परिणमन होता रहा। लेकिन वे सूक्ष्म पर्यायें इस स्थूल मनुष्य पर्यायमें गर्भित हुई सो यों गर्भित हो जाय तो भी लक्षण भेदसे वे भिन्न-भिन्न हैं, एक ही मनुष्यभवमें प्रतिसमय जो बातें गुजरती हैं उनमें तो परस्पर व्यतिरेक है। यों व्यतिरेक और क्रमवर्तीमें लक्षणभेदसे भेद होता है। इसी बातको अब आगे बतायेंगे कि व्यतिरेक शब्दसे कौन सा मर्म परखा गया, जिससे कि यह समझा जा सके कि क्रमवर्तीपने विशेषणमें जो मर्म जाना गया है उस मर्मसे भिन्न है व्यतिरेकी शब्द द्वारा वाच्यमर्म। तो व्यतिरेकका स्वरूप जाननेपर यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि क्रमवर्तीपनेका मर्म और है और व्यतिरेकीपनेका मर्म और है।

तत्र व्यतिरेकः स्यात् परस्परा भावलक्षणेन यथा।
अंशविभागः पृथगिति सदृशांशानां सतामेव ॥ १७२ ॥

तस्माद्व्यतिरेकित्वं तस्य स्यात स्थूलपर्ययः स्थूलः ॥
सोऽयं भवति न सोयं यस्मादेतावतैव संसिद्धिः ॥ १७३ ॥

व्यतिरेकका स्वरूप – व्यतिरेकका स्वरूप कह रहे हैं जिससे कि यह ज्ञात हो जाय कि क्रमवर्तीमें और व्यतिरेकमें अन्तर क्या है? उनमें परस्पर अभावके लक्षणसे अंश विभाग जाने जाते हैं और इसी विभागका नाम व्यतिरेक है, यह वह नहीं है इस चिन्हके द्वारा व्यतिरेकका परिचय होता है। व्यतिरेकका अर्थ है विभिन्न। परस्परमें पृथक। सो पर्यायोंमें ऐसा पार्थक्य है हि कि जो पूर्व समयवर्ती पर्याय है वह अन्य है उत्तर समयवर्ती पर्याय अन्य है, ऐसा यह भी नहीं है। इस चिन्हके द्वारा जो पार्थक्य विदित होता है उसको व्यतिरेक कहते हैं। एक समयवर्ती पर्यायका द्वितीय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समयवर्ती पर्यायमें अभाव लाना इसका नाम व्यतिरेक है । किसी एक पर्यायमें अन्य
पर्याय नहीं है । ऐसा जताना व्यतिरेकका काम है और क्रमवर्तीका काम एक साथ सब
न होना किन्तु क्रमसे होना, इतना ही परिचय कराना क्रमवर्तित्वका काम है । यद्यपि
स्थूल दृष्टिसे स्थूल पर्यायोंका समानरूपसे परिणमन होता है । जैसे एक मनुष्य भव है
अब ७० ८० वर्ष तक वह मनुष्य भव रहा, कहनेको १ भव है किन्तु इन ८० वर्षोंमें
रोज-रोज घन्टे-घन्टे मिनट-मिनट समय-समय परिणमन नया-नया होता ही रहा
है । तो यह बात विदित न हो सकी इन इन्द्रिय द्वारा इस कारण कहा जाता है कि
यह एक पर्याय है अथवा सदृश सदृश अथवासूक्ष्म पर्यायोंका समूहरूप जो एक विशाल
समय तकका पर्याय धारा प्रवाह है उसको एक पर्याय कहते हैं । तो स्थूल पर्यायोंमें
सूक्ष्म पर्यायें अन्तर्निहित हैं और उन सूक्ष्म पर्यायोंकी दृष्टिसे एक समयवर्ती पर्यायसे
अन्य समयवर्ती पर्याय भिन्न है । यों भिन्न-भिन्न समयमें होने वाले भिन्न-भिन्न परिण-
मनोंके आकारमें परस्पर अभाव सिद्ध करना इसीका नाम व्यतिरेक है । यद्यपि व्यति-
रेक गुणोंमें भी परस्पर विदित होते हैं । जैसे एक भवमें अनन्त गुण हैं ज्ञान, दर्शन
चारित्र, आदिक तो वहाँ भी तो यह निर्णय है कि जो ज्ञान है सो दर्शन नहीं, जो
दर्शन है सो ज्ञान चारित्र आदिक नहीं । तो यों स्वरूपदृष्टिसे गुणोंमें भी व्यतिरेक है
किन्तु त्रैकालिक व्यतिरेक नहीं कि एक गुणकी जितनी पर्यायें हैं उन सब पर्यायोंमें
यह गुण नहीं, अब यह गुण नहीं, ऐसा व्यतिरेक नहीं घटित होता, इसलिए गुणोंमें
अन्वयीपनेकी मुख्यता है । व्यतिरेक नहीं माना गया किन्तु पर्यायोंमें एक समयमें अनन्त
पर्यायें हैं उन पर्यायोंमें भी परस्पर व्यतिरेक है अनन्त गुण होनेसे अनन्त उन प्रत्येक
गुणोंकी पर्यायें हैं । तो उनमें भी व्यतिरेक है और समयानुसार त्रिकाल होने वाली
पर्यायोंमें भी व्यतिरेक और ऊर्द्धव्यतिरेक ये दोनों पर्यायमें पाये जाते हैं, किन्तु गुणोंमें
तिर्यक व्यतिरेक है ऊर्द्ध व्यतिरेक नहीं है इस कारण व्यतिरेकपन पर्यायोंमें ही घटित
किया जाता है । अब क्रमका स्वरूप कहते हैं ।

विष्कम्भः क्रम इति वा क्रमः प्रवाहस्य कारणं तस्य ।
न विवक्षितमिह किञ्चित्तत्र तथात्वं किमन्यथात्वं च ॥ १७५ ॥

क्रमवर्तित्वं नाम व्यतिरेकपुरस्सरं विशिष्टं च ।
स भवति भवति न सोऽयं भवति तया च तथा न भवतीति १७५

क्रमका स्वरूप—विष्कम्भ और क्रम इन दोनोंका एक अर्थ है अथवा जो
विस्तार युक्त हो वह क्रम कहलाता है । क्रम वहाँ ही होगा जहाँ विस्तार पाया जाता
है । एक बिन्दु मात्र अथवा एक अद्वैत प्रदेश मात्रमें क्रम क्या घटित होगा ? क्रमप्रवाह
का कारण है । जहाँ क्रम है वहाँ प्रवाह है । जैसे नदी बह रही है तो उसका प्रवाह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चल रहा है। उस प्रवाहका अर्थ ही यह है कि क्रम-क्रमसे वह चलता जा रहा है। तो क्रमसे प्रवाह होना, क्रमसे परिणतियाँ होना, परिणतियोंका प्रवाह चलना, इसमें क्रमसे परिचय बनता है। तो ऐसे क्रममें यह विवक्षित नहीं है कि यह वह है अथवा अन्य है। क्रममें केवल क्रमपर ही दृष्टि है, प्रवाहपर ही दृष्टि है। अब उसमें यह निरखना कि यह वह नहीं है, यह व्यतिरेकका काम है। क्रमवर्तीपनेकी दृष्टिमें यह वह नहीं है, यह नहीं देखा जाता। एक अन्तर और है—क्रमवर्तीपना व्यतिरेकके पहिले होता है। व्यतिरेक पुरस्पर होता है, व्यतिरेक सहित होता है। व्यतिरेक है तब क्रमवर्तीपना बनेगा। तो वह क्रमवर्तीपना व्यतिरेक सहित है, एक पर्यायके पश्चात् दूसरी पर्याय, दूसरीके पश्चात् तीसरी। इस तरह बराबर प्रवाह चलते रहने का नाम क्रम है।

क्रम और व्यतिरेकके तत्त्वका मर्म—क्रममें प्रवाह मुख्य है और व्यतिरेकपना विवक्षित नहीं है इस कारण क्रम व्यतिरेकका कारण है। क्रम है तब व्यतिरेक बन रहा है। व्यतिरेक होनेसे क्रम बनाना यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि कथंचित् व्यतिरेक गुणोंमें भी पूरे हैं पर वहाँ क्रम कहाँ हैं? किन्तु जहाँ क्रम होगा वहाँ व्यतिरेक अवश्य होगा। तो व्यतिरेकका कारण क्रम है और व्यतिरेक क्रमका कार्य है तो इसमें कारण कार्यका विभाग है। कारण कार्य और व्यतिरेकको एक नहीं कह सकते, यह शङ्काकारकी इस शङ्काका उत्तर चल रहा है। जिसमें शङ्काकारने यह पूछा कि व्यतिरेकपना और क्रमवर्तीपनामें क्या शब्द भेद ही है या अर्थभेद भी? यदि मात्र शब्दभेद है तब तो कोई प्रश्न नहीं। बात एक ही रही। और, यदि दोनोंमें अर्थभेद है तो वह भेद बतायें कि क्या इनमें परस्परमें भेद है? उसी अर्थभेदको बताया जा रहा है। क्रमका अर्थ है प्रवाह और व्यतिरेकका अर्थ है पार्थक्य। प्रवाह और पार्थक्य इन दोनोंमें अन्तर है। जहाँ प्रवाह है वहाँ पार्थक्य होता है, इस कारणसे क्रम और व्यतिरेक एक नहीं हैं। इन दोनोंमें कार्य कारणभाव पाया जाता है। कार्य और कारण एक कैसे हो सकते हैं? जो कारण है सो कारण है, जो कार्य है सो कार्य है। यदि कारण कार्य एक होने लगें तो अग्नि धूम ये भी एक बन जायेंगे। तो क्रममें और व्यतिरेकमें अर्थभेद है, शब्दभेद है, इस कारण इन दोनोंको अलग-अलग कहा है। यह प्रकरण चल रहा है पर्यायोंके एकार्थवाचक शब्दोंके विवरणमें। पर्यायोंको ४ विशेषणोंसे बताया गया था कि पर्यायें क्रमवर्ती हैं अनित्य हैं, व्यतिरेकी हैं उत्पाद व्यय स्वरूप हैं और कथंचित् ध्रुव हैं। उनमेंसे व्यतिरेकका तो लक्षण पहिले कहा है। यहाँ क्रमवर्ती का लक्षण ही चल रहा है। तो क्रमवर्तीके लक्षणमें व्यतिरेक स्वयं ध्वनित हो जाता है। यहाँ पर्याय क्रमसे हो रही हैं वहाँ व्यतिरेक भी सिद्ध हो रहे हैं, तब वहाँ यह प्रश्न उठना प्राकृतिक था कि क्रम और व्यतिरेकमें अन्तर क्या है? उसी उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि क्रम तो कारण है और व्यतिरेक कार्य है। क्रममें व्यतिरेक विविक्षित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं और व्यतिरेकमें क्रम विवक्षित नहीं।

ननु तन्न किं प्रमाणं क्रमस्य साध्ये तदन्यथात्वे हि।
सोऽयं यः प्राक् स तथा यथेति य प्राक्तुनिश्चयादिति चेत् ।१७६।

क्रम और व्यतिरेककी सिद्धिमें प्रमाणकी पृष्टव्यता—अब शङ्काकार कहता है कि क्रम और व्यतिरेककी सिद्धि करनेमें क्या प्रमाण है ? जो पहिले था सो ही यह है, अन्तर कुछ जाहिर नहीं हुआ। पहिले भी यही निरूपण था और अब भी यही विश्लेषण किया जा रहा है। क्रम और व्यतिरेक ये केवल शब्दभेद हैं। बात एक ही कही जा रही है। पर्यायें एकके बाद एक होती हैं। यही भिन्नताकी बात है वही क्रमकी बात है। क्रमकी सिद्धिमें अथवा क्रम अन्य प्रकार है उस सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं है। यदि प्रमाण है तो बताओ। शङ्काकारने यह पूछा कि क्रमका स्वरूप और व्यतिरेकका स्वरूप किस युक्तिसे जाना जाता है जो हम आपके अनुभवमें भी उतरे ? उसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि—

तन्न यतः प्रत्यक्षादनुभवविषयात्तथानुमानाद्वा।
स तथेति च नित्यस्य न तथेत्यनित्यस्य प्रतीतत्वात् ॥ १७७ ॥

प्रमाण द्वारा क्रम और व्यतिरेककी मौलिक सिद्धि—यहाँ केवल दो बातें निरखना है एक नित्यपनेका ज्ञान हो और एक अनित्यपनेका ज्ञान हो तो उन्हीं बोधों क्रम और व्यतिरेकका ज्ञान हो तो उन्हीं बोधोंमें क्रम और व्यतिरेकका स्वरूप जाहिर हो जाता है। जहाँ नित्यता है वहाँ व्यतिरेक घटित न होगा, जहाँ अनित्यता है वहाँ व्यतिरेक भी घटित होगा और क्रम भी घटित होगा। कदाचित् नित्यतामें व्यतिरेक घटित हो जाय पर क्रम तो घटित होता ही नहीं है। सो देखिये ! प्रत्यक्ष प्रमाणसे अपने अनुभवसे और अनुभवसे और अनुमान प्रमाणसे ये दोनों बातें सिद्ध होती हैं। यह उस प्रकार नहीं है, इस प्रकारके बोधसे तो अनित्यता जाहिर होती है। मनुष्य भव था, अब देवभव आया। यह देवभव मनुष्यभवकी तरह नहीं है। पहिले बालक था, अब जवान हुआ। यह जवान बालककी तरह नहीं है। यह उस प्रकार नहीं है, इस तरहकी जहाँ प्रतीति है वहाँ अनित्यता साबित होती है। यह उसका प्रकार है। जहाँ यह बात जाहिर होती है वहाँ नित्यपनेकी प्रतीति होती है। यह मनुष्य वही तो है। उदाहरणमें जो कुछ बताया जायगा तो पर्यायें बतायी जायेंगी। तो स्थूल पर्यायें तो नित्यताके दृष्टान्तमें ले लो और सूक्ष्म पर्यायको नित्यताके दृष्टान्तमें ले लो। वस्तुतः नित्यताके दृष्टान्तमें द्रव्य और गुण लिये जा सकते हैं। और अनित्यताके दृष्टान्तमें पर्यायें ली जा सकती हैं। तो पर्यायोंमें यह बात विदित हो रही है कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। भिन्न–भिन्न समयोंमें जितने परिणमन होते जाते हैं वे सब परस्पर भिन्न हैं। क्रमसे होते हैं और क्षणिक हैं। द्रव्य शाश्वत् हैं और वही है, उसमें बदल नहीं होता। जो बदलका अंश है वह यहाँ विवक्षित नहीं किन्तु हमेशा रहता है द्रव्य और जिस स्वभाव रूपसे है उसी स्वभावरूप रहता है। जैसे जीव निगोद जैसी अवस्थाओंमें रहा जहाँ ज्ञानकी ओरसे देखा तो जोड़ सा लगता था कितना कर्मोंसे आवृत था, कितना कुयोनियोंमें घूमा लेकिन सदैव चित्स्वरूप रहा और उसका प्रमाण यह है कि छोटी योनियोंसे हटकर मनुष्य भवमें यही जीव आता है तो यहाँ विकास विदित होता है। तो स्वभाव यदि किसी समय मिट गया होता तो यह फिर कहाँसे आता ? तो स्वभाव दृष्टिसे पदार्थ ही यह वही है। अनादि अनन्त वही है। उसमें बदल नहीं होता है। तो इस तरह यह उस प्रकार नहीं है इस बुद्धिसे अनित्यता विदित होती है। यह उस प्रकार ही है, इसमें नित्यता जाहिर होती है।

अयमर्थः परिणामि द्रव्यं नियमाद्यथा स्वतः सिद्धम्।
प्रति समयं परिणमते पुनः पुनर्वा यथा प्रदीपशिखा ॥१७८॥

स्वतः सिद्धि पदार्थके प्रतिसमय होने वाले परिणमनोंमें क्रमकी झलक-उपर्युक्त शंका और उत्तर के रूप में कहे गये प्रकरण का यह अर्थ है कि द्रव्य जिस प्रकार स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार नियम से परिणामी भी है। परिणाम हुए बिना सत्त्व आ नहीं सकता। इस कारण जैसे कि पदार्थ स्वतः ही सत् है, किसी दूसरे की कृपासे, सम्बन्धसे, प्रभावसे सत् नहीं है, इसी प्रकार वस्तुमें परिणमनका स्वभाव सो परिणमनशील भी स्वतः है। किसी दूसरे पदार्थके सम्बन्ध से प्रभावसे परिणमन-शीलता स्वतः है और इसी कारण ही अपनी कलासे निमित्त जो पाकर विभाव रूप परिणम गया। तो जैसे वस्तु स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार परिणामी भी नियमसे है और स्वतः है, जैसे कि दीपक की सिखा बराबर परिणमन करती है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ भी प्रति समय परिणमन करता है। यह दृष्टान्त लौकिक दृष्टान्त है, जैसे दीपककी लौ तो वही हैं जो घंटा भरसे जल रही है किन्तु दीपककी सिखा स्थिर नहीं रह पाती। थोड़े न थोड़े रूपमें उसमें तरंग मंदता तीव्रता होती रहती है, तो जैसे वहां देख रहे हैं कि दीप शिखा प्रतिसमय परिणमन कर रही बारबार मंद तीव्र छोटी बड़ी आदिक रूपमें परिवर्तन कर रही है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ भी प्रतिसमय परिणमता है। पदार्थमें जो अगुलंघुत्व नामक गुण है उस गुणके कारण पदार्थ प्रति समय अपनी षड्गुण हानि वृद्धिमें परिणमता है फिर उस हीके फलमें व्यक्तरूप नजर आता है, तो यहाँ तक यह निर्णय कराया कि पदार्थ स्वतः सत् है, स्वतः सिद्ध है, अतएव अनादि अनन्त है और अपने ही सहाय है, परिणमता है, अपने ही चतुष्टयसे सत्त्व है, अपने ही स्वरूप से है अतएव यह निर्विकल्प है, अखण्ड है, उसमें यहां दो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बातें देखिये—जान लेनेसे ये सब बातें गर्भित हो जातीं हैं कि पदार्थ स्वत: सत् है और स्वत: ही नियम से परिणामी है।

इदमस्मि पूर्वं पूर्वभाव विनाशेन नश्यतोशस्य।
यदि वा तदुत्तरोत्तर भावोत्पादेन जायमानस्य ॥१७६॥

पूर्वपर्यायका व्यय और उत्तर पर्यायका उत्पादन होने में व्यतिरेककी झलक—पूर्व पूर्व भावके विनाशके द्वारा जो किसी अंशका विनाश हो रहा है और उत्तर उत्तर भावके उत्पाद द्वारा जो किसी अंशका उत्पाद हो रहा है बस उस हीका तो यह परिणमन कहलाता है। परिणमनका अर्थ है पूर्वभावके रूपसे तो विनाश हो जाना और उत्तर भावके रूपसे उत्पाद हो जाना। परिणमनमें वस्तु वही है, कुछ नवीन उत्पाद नहीं होता न वस्तुका विनाश होता, किन्तु उस ही सद्भूत पदार्थके किसी अंशकी व्यक्ति है तो पूर्व अंशका व्यय है अथवा आविर्भाव और विलीन शब्द से कहा जाय तो भी कह सकते हैं लकिन इन शब्दों में एकान्त की गुंजाइश है, यों तो परिणामिकभाव आविर्भाव और तिरोभाव समान है। पदार्थ में अनन्तानन्त पर्यायें हर समय हैं, ऐसा उनका दर्शन है, उन पर्यायों में से किसी पर्यायका उत्पाद है और किसी पर्यायका तिरोभाव है। इस मंतव्यको यदि इस निगाह से देखा जाय कि द्रव्य होता है अनादि अनन्त इस कारणभूतकी सब पर्यायोंमें उस द्रव्यमें हुई थी भविष्यकी सर्व पर्यायें इस द्रव्यमें होगी किन्तु जब यह दृष्टिमें लिया गया है कि द्रव्य अनादि अनन्त हैं, इतने लम्बे द्रव्यको निरखनेपर यों ही दिखेगा कि बस अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है तो जितनी विशालतामें द्रव्यको देखा, उसमें अनन्त पर्यायें मान ली गई, अब उन अनन्त पर्यायोंमेंसे एक पर्यायका अविर्भाव है और बाकी पर्यायोंका तिरोभाव है किसीका होकर तिरोभाव है किसी का न हुए तिरोभाव है ऐसी दृष्टिमें तो यह बात मानी जा सकती थी किन्तु पदार्थमें प्रतिसमय सर्वपर्यायें हैं, उनमें किसी का आविर्भाव है, किसी का तिरोभाव है, यह एक दृष्टान्त बन जाता है, इस कारण यहाँ उत्पाद और व्यय शब्दसे कहना होता है, जो चीज थी ही नहीं, जो चीज परिणमती न थी उसका उत्पाद और जो परिणति हुई थी उसका व्यय तो यों पदार्थ में पूर्व-पूर्व भावका विनाश और उत्तरभावका उत्पाद होता है और इसी उत्पाद व्ययसे यह सिद्ध होता है कि इन समस्त परिणमनोंमें परस्पर व्यतिरेक है।

तदिदं यथा स जीवो देवो मनुजाद्भवन्नथाप्यन्य:।
कथमन्यथात्वभावं न लभेत स गोरसोपि नयात् ॥ १८० ॥

उदाहरणपूर्वक पर्यायोमें परस्पर अन्यथात्वकी (व्यतिरेककी) सिद्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्व-पूर्व भावका विनाश और उत्तर-उत्तर भावका उत्पाद होता है, इस सम्बन्धमें दृष्टान्त दे रहे हैं कि जैसे कोई जीव पहिले मनुष्य पर्यायमें था, अब मनुष्य पर्यायसे देव पर्यायमें आया तो यहाँ देव पर्यायके रूपसे उत्पाद हुआ और मनुष्य पर्यायके रूपसे विनाश हुआ, पर जीव वह एक ही है, जो कि इन अनेक पर्यायोंमें जा रहा है। फिर भी पर्याय सहित पदार्थको देखनेपर मनुष्य जीवसे देव जीव कथंचित् भिन्न है, क्योंकि अर्थ क्रिया, विचार शरीर आदिक सभी बातोंमें अन्तर है। एक चेतन वही है इस कारण वह एक है, पर पर्यायकी मुख्यतासे देखनेपर मनुष्य जीव अन्य है और देव जीव अन्य है, अथवा अजीव पदार्थका दृष्टान्त लो। जैसे दूधसे दही बना तो दूध अन्य है और दही अन्य है और तभी रसके परित्यागी दूधका त्याग करनेपर दहीके त्यागी कहने पर दहीके त्यागी नहीं कहलाते। तो स्वाद भी भिन्न है, गंध भी भिन्न है, स्पर्श भी भिन्न है सभी भिन्नतायें आ गई, यों दूधसे दही कथंचित् अन्यथा है ऐसे ही समस्त पदार्थ जब पूर्वभवसे विनष्ट होते हैं और उत्तरभवको उत्पन्न होते हैं तब फिर उनका भी उत्पादव्यय इसी परिणमनरूप कहा जायगा। मूल भूत पदार्थ सर्व पर्यायोंमें हैं केवल एक पर्यायका उत्पाद व्यय अविर्भाव तिरोभाव होता है।

तिरोभाव व व्यय शब्दके लक्ष्य—तिरोभाव शब्दसे यहाँ व्यय को यों नहीं कहा कि तिरोभावका अर्थ यह है कि है, मगर ढका हुआ है, और ऐसा तिरोभाव सांख्य सिद्धान्तमें व्यतीत हुई पर्यायोंका भी है और पर्यायोंमें होने वाली पर्यायोंका भी है। बिना उनके तिरोभाव भविष्यमें होने वाली पर्यायमें लगानेकी बात और अधिक फिट बैठती है है और ढकी है, अब उसे उघाड़ दिया तो उसका अविर्भाव हो गया, लेकिन पदार्थमें ऐसी व्यवस्था नहीं है कि उसमें अनन्त पर्यायें एक साथ हुई। यहाँ तो इसलिए कहा गया कि अनन्त पर्यायोंका पिण्ड कि चूंकि द्रव्य अनादि अनन्त हैं और समूचे द्रव्य को समझना है जिससे अनादि अनन्तपना भी ज्ञात हो तो उस बोध के लिए अनन्त पर्यायोंका पिण्ड द्रव्य कहा गया। द्रव्य तो प्रत्येक जब कभी भी देख लो एक पर्यायमें ही रहेगा, उसमें दो पर्यायें भी नहीं होतीं हाँ भेद दृष्टिसे एक समयमें जो अनन्त पर्यायें दिखी हैं, वे सब कल्पनाकी बातें हैं, भेद दृष्टिसे निरखनेकी बातें हैं, जैसे कि एक अखण्ड है उसे भेद दृष्टिसे देखनेपर अनेक गुण शक्तियाँ उसमें दृष्टिगत होती हैं पर परमार्थतः पदार्थ क्या है ? तो वह अवक्तव्य है एक स्वभावी है, एक सत् है और प्रतिसमय एक पर्यायमें रहता है, जो भी परिणमन हुआ उस पर्यायको हम भेद दृष्टिसे उपयोग किए बिना बोल नहीं सकते। अतएव वे निर्विकल्प हैं, यों पदार्थ स्वतः सिद्ध है और नियमसे स्वतः परिणामी है।

सत्ता व परिणामिताका परस्पर अविनाभावित्व—कभी कल्पना करो कि पदार्थ सत् है, बस है से ही मतलब है परिणामी न माना जाय तो क्या हानि है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसे अनेक दर्शन भी हैं कि जो वस्तुका अस्तित्व मानते हैं किन्तु परिणमन नहीं मानते। जैसे अद्वैतवादी, ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि है एक ब्रह्म, किन्तु वह परिणामी है, उसमें परिणमन नहीं होता ? तो परिणमन जब नही होता, तो उसका अस्तित्व समझना कठिन होता है। जसका अस्तित्व भी समझाते हैं और परिणमन नहीं होता यह भी मानते हैं तो इसके लिए फिर एक दूसरा तत्व "प्रकृति" मानना पड़ा कि उसमें परिणमन होता है, पर प्रकृतिमें कुछ भी परिणमन हो, प्रकृति अचेतन है, अचेतनके परिणमनसे कोई चेतन कैसे दुःखी हो जाता है। चेतनमें जो दुःखका परिणमन होता है उससे तो इसे परिणामी मानना होगा ? इस प्रश्नके उत्तरमें फिर यह बात कहनी पड़ती है कि दुःखी चेतन नहीं हो रहा है। दुःखी परिणमन भी प्रकृतिमें चल रहा है, लेकिन यह चेतन बुद्धि उस निश्चित अर्थको चेतती है। यह बुद्धि अचेतन है, क्योंकि वह प्रकृतिका धर्म है, लोकमें बुद्धिका जो निश्चय होता है ऐसे पदार्थको इस ब्रह्मने चेत लिया, बस चेतनाके कारण यह भ्रम होता है कि ब्रह्ममें दुःख है। यों एक सीधी परिणमनशीलताको न माननेपर यों अनेक कल्पनायें करनी होती हैं जिनसे कोई विशेष भी नहीं बनता और न स्पष्ट कर्तव्यका भान हो पाता। प्रत्येक पदार्थ स्वतः सिद्ध है और नियमसे स्वतः परिणामी है ऐसा माननेसे ही पदार्थकी व्यवस्था संगत होती है।

ननु चैवं सत्यसदपि किञ्चिद्वा जायते सदेव यथा।
सदपि विनश्यत्यसदिव सदृशा सदृशत्वदर्शनादितिचेत् ॥१८१॥

सदृशोत्पादो हि यथा स्यादुष्णः परिणमन यथा वन्हिः।
स्यादित्यसदृशजन्मा हरितात्पीतं यथा रसालफलम् ॥ १८२ ॥

वस्तुका ही उत्पादव्यय मान लेनेका शंकाकारका कथन—शङ्काकार कहता है कि ऐसा माननेसे कि पूर्व भवका विनाश और उत्तर भवका उत्पाद यह होता रहता है, इस सिद्धान्तमें तो यह ध्वनित है कि सत्की तरह असत् भी पैदा हो जाता है और असत्की तरह सत् पदार्थ भी नष्ट हो जाता है। अनेक घटनाओंमें ऐसा विदित होगा कि उत्पन्न असत् होता है इसी प्रकार अनेक घटनाओंमें यह विदित होता है कि असत् पदार्थ नष्ट हुआ और अनेक घटनाओंमें यह विदित होता है कि सत् पदार्थ नष्ट हुआ। जैसे जहां परिणमन समान नजर आ रहा है वहां जो उत्पाद हो रहा है सो यह विदित हो रहा कि सत्का उत्पाद हो रहा। जो था, जो है वही उत्पन्न हो रहा कोई नया नहीं, और जहां असदृश विलक्षण पर्याय बन रही है वहां यों लग रहा कि जो न था उसका उत्पाद हो रहा। किसी किसीका समान उत्पाद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता और किसीका असमान उत्पाद होता, कुछ यह जाहिर हो रहा कि देखो सत्की तरह असत् भी पैदा हो गया और असत् की तरह सत् भी पैदा हो गया, दृष्टान्त लो जैसे अग्नि बराबर जल रही है प्रतिसमय परिणम रही है, नवीन नवीन पर्यायें उसमें बन रही हैं तो क्या बन रहा है ? सत् ही बन रहा है ! कर्म बन रहा है कर्म कर्म ही होता चला जा रहा है, तो वहाँ सत् ही तो उत्पन्न होता हुआ जा रहा है। कोई नई चीज तो नहीं बनती। अग्निमें ठंढापन आ जाय तो लगेगा ऐसा कि कोई उसमें नई चीज आ गई। तो अग्निका जो उष्णरूप परिणमन है वह उसका समान उत्पाद है और वहाँ विदित हो रहा कि सत्का ही उत्पाद हो रहा, असत्का नहीं। लेकिन कच्चा आम हो कोई और वह पकनेपर पीला हो गया तो वहाँ तो एकदम नई बात बन गई। हरा था पीला हो गया, जो न था सो हो गया। तो यों असत्का उत्पाद बन गया। तो नवीन नवीन पर्यायोंकी उत्पत्ति होनेमें यह जाहिर हुआ कि कहीं तो जो था सो ही उत्पन्न हुआ और कहीं जो न था सो उत्पन्न हुआ। इसी तरह कहीं तो यह लगेगा कि जो न था सो ही नष्ट हुआ और कहीं यह लगेगा कि जो था सो नष्ट हो गया। तो प्रतिसमय वस्तुमें जो परिणमन हो रहा है उसमें उत्पन्न होना और नष्ट होना माना जाय तो यहाँ दोष आता है। इसलिए वस्तुमें उत्पादव्यय नहीं है, ऐसा मानकर फिर यह शङ्का नहीं उठ सकती। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं।

नैवं यतः स्वभावादसतो जन्म न सतो विनाशो वा।
उत्पादादित्रयमपि भवति च भावेन भावतया ॥ १८३ ॥

वस्तुकी नित्यता व भावसे भावान्तर होनेकी उत्पादव्ययरूपता बताते हुए शंकाका समाधान—उपर्युक्त शंका ठीक नहीं है, कारण कि एक स्वाभाविक बात है यह कि न तो कभी असत्का जन्म होता है और न सत् पदार्थका विनाश होता है। सर्वत्र यही बात है कि कोई सत् है और अगले समयमें उसका कोई भावान्तर बन गया, कोई नवीन अवस्था ही बन गई पदार्थ तो वहीका वही बन रहा। तो जब पदार्थ शाश्वत् है, तो असत्का उत्पाद नहीं कहा जा सकता। आममें जैसे पहिले हरापन था अब पकनेपर पीलापन आया तो कुछ विलक्षण रंग बन जानेसे लग रहा ऐसा कि देखो अब यहाँ असत्का उत्पाद हुआ। पीला था तो नहीं और बन गया। तो जो न था वह हो गया, किन्तु यह दृष्टि न दें कि कुछ न था और हो गया पीला। थी आममें आमकी ही सकल, अवस्था दूसरी हो गई। तो ऐसा कहीं भी नहीं होता कि असत्का उत्पाद हो जाय। यदि असत्का उत्पाद होने लगे फिर तो जगतमें व्यवस्था ही कुछ न रही। कुम्हार घड़ा बनायेगा तो उसे मिट्टी लानेकी क्या जरूरत ? हिकमत लड़ाया, बस असत्का उत्पाद होने लगा। होना होगा तो घड़ा हो जायगा क्योंकि वह तो असत्से होता है। तो कोई जगतमें व्यवस्था न बनेगा, कार्य कारणभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न रहेगा। इससे जानना कि कभी भी असत्का उत्पाद नहीं होता। इसी प्रकार सत् पदार्थका कभी नाश नहीं होता। लग रहा ऐसा हरापन था देखो उसका नाश हो गया, पर हरा तो कोई सत् नहीं है। वह तो एक आमकी अवस्था थी। आम तो नहीं मिटा। तो सत्का कभी विनाश नहीं होता। प्रक्रिया यह चलती जाती है कि पदार्थ अपने एक स्वरूपको छोड़कर दूसरे स्वरूपमें आ जाता है। जो पदार्थ है ही नहीं वह तो कहींसे भी नहीं आ सकता। और जो पदार्थ है वह कहीं नष्ट हो ही नहीं सकता। अतः यह निर्णय रखना चाहिए कि न तो असत्की उत्पत्ति है और न सत्का विनाश है किन्तु पदार्थमें प्रतिसमय एक भावसे दूसरा भाव बन जाता है। वह क्या है? भावान्तर एक भावको छोड़कर दूसरा भाव आना अथवा एक भावसे दूसरा भाव प्रकट होना इसका अर्थ क्या है? इसी बातको अब कहते हैं।

अयमर्थः पूर्वं यो भावः सोप्युत्तरत्र भावश्च।
भूत्वा भवनं भावो नष्टोत्पन्नो न भाव इह कश्चित् ॥ १८४ ॥

भावसे भावान्तरताका स्पष्टीकरण—जो पहिले भाव था वही उत्तर भावरूप हो जाता है जो रंगरूप शक्ति पहिले हरे रूपमें थी वही रूप शक्ति अब पीले रूपमें हो गई। कुछ न था और हो जाय, ऐसा तो कहीं भी नहीं है। जहाँ इतना भी विलक्षणपना नजर आ रहा है कि कहाँ तो पीला था और वह नई चीज बन गई तो वहाँ भी कोई नवीन चीज नहीं बनी, भावसे भावान्तर ही हुआ। अथवा यों कहो कि हो करके होनेका नाम भाव है। होकर होता जा रहा है उसे भाव कहते हैं और इस दृष्टिमें नित्यका अर्थ यही बनेगा कि पदार्थके होते रहनेका नाश नहीं। होना सो नित्य है। कोई नित्य अपरिणामी नहीं होता कि है, बस उसमें कोई परिणमन नहीं यह एक नित्य एकान्तकी बात हो जायगी। अगर कोई पदार्थ परिणमनरहित है, अपरिणामी कूटस्थ नित्य है तो उसका अन्दाज तो करो कौन सा पदार्थ जिसका कोई व्यक्त रूप न समझमें आये इस पदार्थकी सत्ता ही क्या जानी जायगी? कोई सत् ऐसा होता ही नहीं कि जो अपरिणामी हो। तो नित्यपनेका भी यही अर्थ है कि पर्यायें होते रहनेसे कभी भी व्यय नहीं होते, होते ही रहना, होकर होना, यह क्रम जारी रहे इसका नाम है नित्य। लोक व्यवहारमें भी कहते कि भाई नित्यप्रति ऐसा करो तो वह नित्य क्या चीज रही? वह कोई एक बात रही। रोज रोज जारी रहना, इसीका नाम लोकव्यवहारमें भी नित्य कहते हैं। तो नित्य यही है कि पदार्थोंकी परिणतियोंका व्यय न होना, होकर होनेका नाम भाव है नष्ट और उत्पन्न होने वाला कोई भाव नहीं होता। कोई सत् ऐसा नहीं जो नष्ट हो जाये अथवा न था और उत्पन्न हो जाय, क्योंकि आकारका ही नाम भाव है। आकारका अर्थ यहाँ संस्थान नहीं किन्तु कोई भी अवस्था कोई भी सकल, उसका नाम आकार है। चाहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भावरूप व्यक्ति हो और चाहे संस्थानरूप व्यक्ति हो, सभीका नाम भाव है। जैसे रूप रस गंध स्पर्शमें आम है, वह उसका भाव है, और जो संस्थान है, जितना गोल लम्बा जैसा कुछ है आम वह उसका आकार है। तो आकारका ही नाम भाव है। वस्तुका एक आकार बदलकर दूसरे आकाररूप हो जानेका नाम भावान्तर है।

"होकर होनेका नाम भाव है" इसका सम्बन्धित प्रकाश द्वारा स्पष्टीकरण—रूप ये गंध स्पर्श बदलकर दूसरे रूप हो गए रूप रस शक्ति वही है, तो इसी का नाम भावान्तर है। तो आममें कुछ दिन बाद जो पीला रूप हो जाता है तो केवल रूप नहीं बदला उसमें रूप रस गंध स्पर्श चारों बदले हुए हैं। पहिले कड़ा था अब नरम हो गया है, पहिले कुछ और तरहका गंध था अब और प्रकारकी गंध आती है। पहिले उसमें कोई दूसरा रस था अब कोई दूसरा रस आ गया, रूप, रस, गंध, स्पर्श और उसके संस्थान बनावा इन सबको मिलाकर आकार कहते हैं। तो आकारका नाम भाव है। एक आकार बदलकर दूसरा आकार होने इसका नाम भावान्तर है। प्रत्येक वस्तुमें प्रतिसमय एक आकारसे दूसरा आकार होता रहता है। इससे समझना चाहिए कि नवीन पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं होती, और न किसी सत् पदार्थका विनाश होता है। केवल एक अवस्थाएं बदलती रहती है। जो लोग अवस्थाओंको और अवस्था जिसमें होती है ऐसे उस सूक्ष्म सत्से भिन्न माना है उनको भी व्यवस्था बनाने के लिए किसी पदार्थको नित्य और किसी पदार्थको अनित्य मानना पड़ता है। जैसे इस जगतकी सृष्टि यह रचना कैसे हो रही है ? तो आधार बताया जाता कि पुरुष और प्रकृति इन दोके मेलसे हो रही। पुरुष तो है अपरिणामी, प्रकृति है परिणामी। फिर जब यह प्रश्न आता है कि लो प्रकृति तो अब अनित्य हो गई तो वहां उत्तर देना पड़ता है कि प्रकृतिके भी दो रूप हैं अव्यक्तरूप और व्यक्तरूप। अव्यक्त तो ज्योंका त्यों कहलाता है और व्यक्त रूप बुद्धि अहंकार इंद्रिय आदिक रूपमें बनता रहता है। तो चलो अब यहाँ प्रकृतिको नित्यानित्यात्मक मानना ही पड़ा, ऐसे ही पुरुष भी सत् है तो उसे भी नित्यानित्यात्मक मान लिया जाय तो झगड़ा लम्बा नहीं बनाना पड़ता। तो कोई भी पदार्थ जो है वह नष्ट नहीं होता। जो कुछ भी नहीं है वह उत्पन्न नहीं होता। उत्पाद व्ययका अर्थ तो होकर होनेका नाम है। इसलिए चाहे उत्पाद व्यय कहो और चाहे होकर होना कहो दोनों बातें एक अर्थके वाचक हैं। नवीनकी उत्पत्ति और सत्का विनाश वाला यहाँ उत्पाद व्यय अर्थ न लगाना। इसी बातको दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं।

दृष्टान्तः परिणामी जलप्रवाहो य एव पूर्वस्मिन्।
उत्तरकालेपि तथा जलप्रवाह स एव परिणामी ॥ १८५ ॥

"भूत्वा भवनं भावः" का दृष्टान्तपूर्वक समर्थन—जैसे जलका प्रवाह है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह पहिले समयमें जो जलप्रवाह परिणमन करता है वही जलका प्रवाह दूसरे समयमें परिणमन करता है। जल प्रवाहका दृष्टान्त इस कारण किया है कि वहाँ होकर होते रहना, चलते रहना, बदलते रहना यह बात स्पष्टतया विदित होती है। और जो यहाँ दिख रहे हैं, घड़ी पुस्तक चौकी आदिक, ये कुछ होते हुए नजर नहीं आते। यद्यपि होना हमेशा सभी पदार्थोंमें है। एक अवस्थासे दूसरी अवस्था होना यह प्रतिसमय होता रहता है, किन्तु इस पदार्थमें समझ तो नहीं बैठती कि यह घड़ी होती जा रही है, ये काठ चौकी पुस्तक आदिक परिणमन करते निरन्तर चले आ रहे हैं, यह बात कुछ ध्यानमें तो नहीं आती। तो स्पष्टतया समझमें आये, इसके लिए जल प्रवाहका दृष्टान्त दिया है। जल बढ़ रहा है तो आँखोंसे ओझल हो गया, वह प्रवाह आगे बढ़कर अब जरा कुछ दौड़ते जावो, देखते जावो तो यह समझमें आयगा कि यह प्रवाह यहाँ गया। तो जैसे जल प्रवाह चलता जा रहा है कौन चलता जा रहा है? वही क्या करता जा रहा? निरन्तर चलता जा रहा। ऐसे ही समस्त पदार्थोंकी बात है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करते जा रहे हैं। बदलते जा रहे हैं। भावसे भावान्तररूप होते चले जा रहे हैं। कौन होते चले जा रहे? वहीके वही पदार्थ। तो इस दृष्टान्तसे यह बात प्रतीत हो जायगी कि पदार्थ वहीका वही है जो भावसे भावान्तर रूप होता चला जा रहा है। तो वही सत् है, उसका आकार बदला, किन्तु असत्का उत्पाद नहीं हुआ, और वही सत् है। आकार बदला, बदले जानेपर भी और पूर्व आकार न रहनेपर भी पदार्थ वही है। कहीं सत् पदार्थ नष्ट नहीं हो गया। यों एक सत् पदार्थका होते रहना बस यही पदार्थमें एक प्रकृति पड़ी हुई है जिसको न समझकर लौकिक पदार्थोंकी व्यवस्था बनानेके लिए ब्रह्मा, विष्णु महेशके रूपमें तीन देवताओंकी कल्पना करते हैं। ब्रह्मा रचता है, विष्णु रखाये रहते हैं और महेश संघार करते हैं। और, जिनकी दृष्टिमें यह बात आ जायगी कि जो पदार्थ सत् है उसमें प्रकृति पड़ी ही हुई है कि भावान्तर बनना, पूर्व भावका विलीन होना और पदार्थ वहीका वही रहना, उन्हें इन अलगसे व्यापार करने वाले तीन देवताओंके माननेकी आवश्यकता न होगी। उनकी दृष्टिमें तो देवता ज्ञानानन्द स्वरूप ही रहेगा। तो यह पदार्थकी प्रकृति है कि वह सत् है और निरन्तर भावोंमें भावान्तर अपना करता रहता है।

यत्तत्र विसदृशत्वं जातेरनतिक्रमात् क्रमादेव।
अवगाहनगुणयोगाद्देशांशानां सतामेव॥ १८६ ॥

"भूत्वा भवनं भावः" में स्वजातिका अतिक्रमण न करके विसदृश होनेके तथ्यका प्रकाश—इस प्रसंगमें उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित किया जा रहा है यह उत्पादव्यय नष्ट उत्पन्न होनेके रूपमें नहीं है किन्तु होकर होनेका नाम भाव है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो जो हो वह उत्पाद है और जो हो चुका उसका व्यय है। इसको दो प्रकार द्रव्य में घटित किया जाता है। एक तो प्रदेशाकारमें और दूसरा गुण पर्यायमें। प्रदेशाकार में यह बात निरखना है कि किसी द्रव्यके प्रदेश फैलते हैं और संकुचित होते हैं। उनके कारण वहाँ आकार बनता है। तो उन आकारोंमें उत्पाद व्यय कोई नवीन बातका नहीं है किन्तु वहां ही कुछ होकर होनेका नाम है, यह घटित किया जायगा। इसी प्रकार गुण पर्यायोंमें भी कुछ नवीन बात होने या नष्ट होने की नहीं है, किन्तु होकर होनेका ही नाम उत्पाद व्यय है। यों आकारमें और गुण विकारमें उत्पादव्यय घटित करते हुए दिखाना है। तो अभी जो दृष्टान्त दिया गया था वह आकारकी अपेक्षासे था, जैसे कि जल प्रवाह पहिले समयमें परिणमन करता वही जल प्रवाह दूसरे समयमें परिणमन करता है। फिर भी जल प्रवाह चलता जा रहा है तो उसमें प्रदेशकी मुख्यतासे कुछ दृष्टान्तोंसे लेना है। तो इस दृष्टान्तमें विशदृशता बतायी गई। परिणमन कुछ सदृश होता है और कुछ विसदृश होता है। तो यहाँ विसदृशता का दृष्टान्त दिया है। तो जो भी विसदृशता हो रही है, एक अवस्थासे दूसरी अवस्था में जो कुछ असमानता दृष्टगत् होती है अथवा असमानता है वह अपने स्वरूपको न छोड़कर अपनी जातिका उल्लंघन न करके जो कुछ हो रहा है वह देशांशोंके अवगाहन गुणके सम्बन्धसे हो रहा है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि व्यञ्जन पर्याय नाम है द्रव्यके विकारका। जैसे गुण पर्याय प्रतिसमय होती रहती है इसी प्रकार व्यञ्जन पर्याय भी प्रतिसमय होती रहती है। कहीं व्यञ्जनपर्यायोंमें समानता रहती है तो कहीं असमानता रहती है। जो पदार्थ निष्क्रिय हैं अथवा शुद्ध हैं उनमें व्यञ्जनपर्यायों की समानता रहती है। और पर्याय विकार हैं, आकारसे आकारान्तर रूप होते रहते हैं, उनकी व्यञ्जन पर्यायोंमें असमानता रहती है। तो एक समयकी व्यञ्जन पर्यायसे दूसरे समयकी व्यञ्जन पर्यायमें समानता भी होती है और असमानता भी होती है। तो जब कभी असमानता हो तो उस समय भी द्रव्यके स्वरूपका नाश नहीं होता, किन्तु द्रव्यके देशांश प्रदेश अथवा आकार पहिले कैसे ही क्षेत्रोंमें घिरे हुए थे, अब वे ही देशांश दूसरे क्षेत्रको घेरने लगे। बस यही विभिन्नता है। जैसे जब कभी यह जीव चींटीके भवमें था तब इसके प्रदेशने थोड़ा सा स्थान घेरा और वही चींटी जब कुछ बढती है तो उसी भवमें दूसरा और कोई स्थान घेर लेता है, और मरण करके अगर हाथीका जन्म ले लिया तो उसके प्रदेश बहुत विस्तृत हो जाते हैं। कितना ही क्षेत्र घेर लिया गया। तो यों आकारसे आकारान्तर होनेमें देशांशका संकोच विस्तार हुआ। अथवा पहिले किसी क्षेत्रको घेरा था, अब अन्य क्षेत्रको घेरने लगे, इस प्रकार की विडम्बना तो है, पर द्रव्यके स्वरूपको छोड़ दिया हो या द्रव्य स्वरूपका नाश हुआ हो, द्रव्य बिगड़ गया हो, ऐसा वहाँ नहीं है। तो जितनी असमानता होती है, वह भी अपनी जातिका उल्लंघन न करके ही होती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्तो जीवस्य लोकासंख्यातमात्रदेशाः स्युः ।
हानिर्वृद्धिस्तेषामवगाहनविशेषतो न तु द्रव्यात् ॥ १८७ ॥

आत्मप्रदेशोंके विस्तारकी हानि वृद्धिमें अवगाहनविशेषकी कारणरूपता
पूर्व समयके आकारसे दूसरे समयका आकार होनेपर परस्परमें विभिन्नता भी हो, तो भी वह असतानता द्रव्यकी जातिका स्वरूपका उल्लंघन न करके ही होता है। इस विषयमें दृष्टांत दिया जा रहा है कि जैसे एक भवके असंख्यात लोक प्रमाण प्रसिद्ध होते हैं। उन प्रदेशोंकी हानि अथवा वृद्धि केवल अवगाहनकी विशेषतासे है किन्तु द्रव्यकी अपेक्षासे नहीं है। जीवमें जितने लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं वे उतने ही आरम्भसे अन्त तक अर्थात् अनादि अनन्त रहते हैं। चाहे किसी भवमें यह जीव गया हो पर जीवका प्रमाण परमार्थसे अपने आपमें प्रदेशकी दृष्टिसे घटता बढता नहीं है। उन प्रदेशोंमें कभी कुछ प्रदेश घट जायें कभी कुछ प्रदेश बढ जायें, ऐसा नहीं हो सकता, किन्तु जिस शरीरमें जितने छोटे या बड़े क्षेत्र मिलते हैं संकोच विस्तारकी रीतिसे वे प्रदेश उतनेमें ही समा जाते हैं। जीवोंके अवगाहन अर्थात् जीवके द्वारा ग्रहण किए गए शरीरका अवगाहन कमसे कम अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और अधिकसे अधिक हजार योजन कोशके अवगाहन प्रमाण है और इनके बीच कितनी प्रकारके अवगाहन हैं वे गिनतीसे परे हैं। इतने अवगाहनके देहोंमें यह जीव उतने ही छोटे–बडे अपने प्रदेशको घेरे हुए रहता है। आत्मा तो उन सब स्थानोंमें उतना ही है जितना कि वह है। सिर्फ एक क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर रूप हुआ है तो क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर रूप हुआ है। तो क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर ग्रहण किए मात्र इतनी अपेक्षासे ही आत्माके प्रदेशोंकी हानि और वृद्धि समझी जाती है। वैसे तो जो है सो ही है। एक और मोटा दृष्टान्त लो ! जैसे बच्चोंके खेलनेका गुब्बारा होता है तो जब उसमें हवा भरी नहीं होती तो वह बहुत थोड़े क्षेत्रमें समाया रहता है। उसका सारा प्रमाण एक अंगुलका मुश्किलसे होता है और उसमें जब हवा भर देते हैं तो उसका प्रमाण डेढ़ हाथ बराबर भी हो जाता है। तो यों वह रबड़ फैला और संकुचित हुआ, इतनेपर भी रबड़ जितनी पहिले उतनी ही अब है। अब कहीं रबड़के अणु प्रदेश बढ़ नहीं गए और पहिले वह कभी घट नहीं गया था। तो संकोच विस्तारके कारण ये हानि वृद्धि हैं लेकिन इनमें प्रदेश वस्तुतः जितने अनादिसे हैं उतने ही अनन्तकाल तक हैं। उनकी हानि वृद्धि नहीं है। इसी बातको दूसरे दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं।

यदि वा प्रदीपरोचिर्यथा प्रमाणादवस्थितं चापि
अतिरिक्तं न्यूनं वा गृहभाजनविशेषतोऽवगाहाच्च ॥ १८८ ॥

अवगाहनविशेषतासे अतिरिक्त व न्यून होनेकी सिद्धिमें एक दृष्टान्त–

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे दीपककी किरणें उतनी ही हैं जितनी कि वे हैं, अब उस दीपकको यदि कोई एक मटकामें रखदे तो उसका प्रकाश मटकाके अन्दर रहेगा। वहांसे उठाकर कमरेमें रख दिया तो उसका प्रकाश कमरे भरमें फैल जाता है। तो दीपकके प्रकाशकी किरणोंमें जो यह न्यूनता और अधिकता आयी है यह अवगाहन गुणके निमित्तसे है। दीपकमें स्वयंमें जितनी योग्यता है, जितनी किरणें हैं, जितना सामर्थ्य है वह तो उतना ही रखता है, उसमें कहीं न्यूनाधिकता नहीं आयी। दीपकको जैसी भी छोटी बड़ी कोई जगह मिलो, आवरण मिले, वस्तु मिली, जिसमें दीपक रखा जाता हो, दीपकका प्रकाश उसी क्षेत्रमें पर्याप्त रहेगा। तो जैसे दीपकके फैलने और संकुचित होनेमें कारण आवरक द्रव्य हैं, दीपकमें स्वयंमें तो जितनी बातें हैं वे सब स्थानोंमें हैं, ऐसे ही समझिये कि आत्मामें जो छोटे बड़े देहोमें फैलनेकी बात होती है वह आवरक देहके निमित्तसे होती है। वस्तुत: जीवमें जितने लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं उतने ही सदैव रहते हैं। यह दृष्टान्त जो दिया गया है वह स्थूल रीतिसे सुगम समझानेके लिए दिया गया है।

लौकिक प्रकाशकी वास्तविक स्थितिपर प्रकाश—यदि वस्तुत्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो वस्तु स्वरूप यह कहता है कि किसी भी वस्तुका द्रव्य गुणपर्यायस्वरूप चतुष्टय उस द्रव्यसे बाहर नहीं हो सकता। तो यहाँ यह निर्णय करें कि दीपक कितने पदार्थका नाम है। दीपक है एक लौका नाम जितना कि वह लौ है। तब दीपकका द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव प्रकाश रूप रस आदिक कुछ भी लौके बाहर न होगा। यह जो प्रकाशका फैलाव घटाव नजर आता है वह दीपकका प्रकाश नहीं है, किन्तु दीपकका निमित्त पाकर जो पदार्थ है प्रकाशमें आया है वह ही पदार्थ प्रकाशित है और वह प्रकाश उन्हीं पदार्थोंका है। दीपक भी तो पौद्गलिक पदार्थ है और घट पट आदिक भी पौद्गलिक हैं। जैसे दीपकमें प्रकाशकी योग्यता है ऐसे ही समस्त पुद्गलमें प्रकाशकी योग्यता है फिर भी योग्यतायें विभिन्न हैं। दीपकमें प्रकाशकी योग्यता बहुलतया है। बड़ी शक्तिमें है और स्वयं प्रकाशित रहें, इस प्रकारके स्वभाव को लिए हुए है। घट पट आदिकमें प्रकाशकी इतनी योग्यता नहीं है और वह स्वयं सहज प्रकाशित हो ऐसा भी वहाँ नहीं है किन्तु दीपकका निमित्त पाकर ये घट पट आदिक अपनी योग्यताके अनुसार स्वयं प्रकाशित होते हैं। तभी यह बात समानताकी देखी जाती है कि दीपकके होते हुए भी कोई पदार्थ कम चमक रहा है कोई विशेष चमक रहा है। यह दीपककी ओरसे ही प्रकाश जाना होता तो वह सर्वत्र एक सा होता है। यह विभिन्नता भी यह सिद्ध करती है कि जिस पदार्थमें जितने प्रकाशरूप होनेकी योग्यता है वह पदार्थ दीपक आदिकका निमित्त पाकर उतने रूपमें प्रकाशमें हो जाता है। दृष्टान्त यहांपर यह वस्तुत्व समझानेके लिए नहीं दिया गया, किन्तु लौकिकजनोंको यह समझानेके लिए दिया गया है कि जैसे दीपकका यह प्रकाश जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि व्यवहारमें दीपकसे सम्बन्धित मालूम होता है, आवरकके योगसे जैसे यह घट दढ हो जाता है फिर भी दीपकमें किरणें उतनी ही हैं ऐसे ही जीवके प्रदेश छोटे बड़े देह को पाकर अपना क्षेत्र घटा बढ़ा लेते हैं फिर भी जीवमें प्रदेश लोक प्रमाण असंख्यात उतने ही हैं जितने थे और उतने ही रहेंगे उनमें हानि वृद्धि नहीं होती, यों हानि वृद्धि न होने का प्रबंध है और हानि वृद्धि होनेकी अपेक्षासे उत्पाद व्यय है।

अंशानामवगाहे दृष्टान्तः स्वांशसंस्थितं ज्ञानम् ।
अतिरिक्तं न्यूनं वा ज्ञेयाकृति तन्मयान्न तु स्वांशैः ॥ १८९ ॥

गुणांशोंके अवगाहनकी दृष्टि अब अंशोंका जो अवगाह होता है अर्थात् अंशीमें अंश समा जाते है और गुण व्यक्त होते हैं इसका तात्पर्य इस दृष्टान्तसे समझ लेना कि जैसे ज्ञानगुण जितने भी हैं वे अपने अंशोंमें स्थित हैं। ज्ञानगुणके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं और ज्ञानगुण उन समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोंमें है। जिस तरह कि द्रव्यके प्रदेशकी बात समझी जाती है कि द्रव्यके एक एक प्रदेश हुए अंश और वे क्षेत्रांश जैसे उस सारे परिपूर्ण द्रव्यमें समाये हुए हैं, जीवके जैसे वे प्रदेश कारण पा करके विस्तृत हो जाते हैं और कारण पाकर संकुचित हो जाते हैं ऐसे ही ज्ञानमें जो अंश हैं या अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे अविभाग प्रतिच्छेद कभी कमती होते हैं कभी बढ़ती होते हैं। सो यह बात केवल ज्ञेय पदार्थका आकार धारण करनेसे होती है। जितना बड़ा ज्ञेय है उतना ही बड़ा ज्ञानका आकार हो जाता है। वास्तवमें ज्ञानगुणके अंशोंमें न्यूनाधिकता नहीं है। जैसे कि आत्माके प्रदेशमें न्यूनाधिकता नहीं है किंतु वह क्षेत्रांश कारण पाकर कभी संकुचित हो जाता है कभी विस्तृत हो जाता है। वह है क्षेत्रदृष्टिसे बात और यहां ज्ञानमें कही जा रही है भावदृष्टिसे बात। ज्ञान भावके अंश अविभाग प्रतिच्छेद कभी विस्तृत व्यक्त होते हैं कभी कुछ कम हो जाते हैं उसका कारण ज्ञेयाकार धारण करना है। इस दृष्टांतको और स्पष्ट करते हैं।

तदिदं यथा हि संविद्धृतं परिच्छिन्ददिहैव घटमात्रम् ।
यदि वा सर्वं लोकं स्वयमवगच्छच्च लोकमात्रं स्यात् ॥ १९० ॥

गुणांशोंके अवगाहनका उदाहरण - दृष्टांत इस प्रकार है कि जिस समय ज्ञान घटको जान रहा है उस समय वह ज्ञान घटमात्र है याने ज्ञानका वहां क्या स्वरूप है तो ज्ञान तो जाननमात्र है और जानन होता है ज्ञेयाकार धारणरूप, तो वह जानन जैसा जानन हो रहा है, ज्ञेयाकारका धारण हो रहा है उतने मात्र है। यहां आकार धारणसे मतलब पदार्थकाजो तिकोना चौकोना आकार है उसके धारणसे नहीं है किंतु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाननसे है। अर्थ विकल्पको आकार कहते हैं। पदार्थके सम्बन्धमें जो जानन चल रहा है वह आकार कहलाता है। सो ज्ञेयाकार धारण करना यह जानन कहलाता है। तो जिस समय ज्ञान घटको जान रहा उस समय वह ज्ञान घटमात्र है अर्थात् घटका जानन मात्र है। वहां क्या बात है ? जैसा घट है जितना घट है उस प्रकार उतना जानन है और जब सम्पूर्ण लोकको जान रहा है यह ज्ञान उस समय वह ज्ञान लोकमात्र है। केवल ज्ञान अवस्थामें ज्ञान समस्त लोकको जानता है। वह ज्ञान लोकमात्र हो गया। हम आपका ज्ञान यहां किसी पदार्थको जानता है तो उस समयमें पदार्थ मात्र है। यहां यह बात तो स्पष्ट होती है कि यहां हम आपके ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद कम व्यक्त हैं और केवल ज्ञानमें अविभाग प्रतिच्छेक अधिक व्यक्त हैं। समस्त व्यक्त होकर भी अगुर्लघुत्व गुणके कारण उन अंशोंमें अविभाग प्रतिच्छेद षट्गुण हानिवृद्धिरूपमें कम बढ़ वहां भी होता है तो जैसे द्रव्य और द्रव्य प्रदेशमें जीवके सम्बन्धमें बात कही गई थी कि जीवके क्षेत्रांश संकुचित होकर जीवमें समा जाते हैं और कभी विस्तृत हो जाते हैं तो प्रदेश अधिक नहीं हो गए। जीवमें प्रदेश उतने ही जुदे कारण पाकर विस्तृत हो गए। इस प्रकार प्रत्येक गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। जितने भी अनुजीवी गुण हैं, उन गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद हैं। उनके अंश हैं। जैसे गर्मीका अविभाग प्रतिच्छेद है तब उसका नाम होता है कि अब १०० अंश गर्मी है, अब उससे कम गर्मी है, अब उससे अधिक गर्मी है। तो जैसे गर्मीकी डिग्रियां हैं इसी प्रकार प्रत्येक गुणोंमें अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। और वे अविभाग प्रतिच्छेद घट बढ रूप से आते रहते हैं। तो यहां छद्मस्थ जीवके ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद कम व्यक्त हैं और ज्ञान गुणके अविभाग प्रतिच्छेद अधिक व्यक्त हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी ज्ञान गुण घटता बढता नहीं है, इसी बातको अब बताते हैं।

न घटाकारेपि चितः शेषांशानां निरन्वयो नाशः ।
लोकाकेरेपि चितः नियतांशानां न चाऽसदुत्पत्तिः ॥ १९१ ॥

गुणांशोंकी न्यूनाधिक व्यक्तिमें भी निरन्वय नाशका व असदुत्पादका अभाव—घटाकार होनेपर ज्ञानके शेष अंशोंका निरन्वय नष्ट नहीं होता, और ज्ञान लोकाकार भी हो गया तब भी ज्ञानमें नवीन अंशोंकी कहीं उत्पत्ति न होगी। ज्ञान गुणमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे सब नियत हैं और अनादिसे अनन्तकाल तक हैं क्योंकि उन्हीं अविभागोंका प्रतिच्छेदका समुदाय तो ज्ञान गुण है अथवा ज्ञान गुण तो एक गुण है, वह किसी भी समय कितने अविभाग प्रतिच्छेदमें व्यक्त हो सकता है? इस आधारको लेकर इस सम्भावनाके बलपर उनमें यह अंदाज किया जा सकता है कि ज्ञानगुणमें ऐसे अविभाग प्रतिच्छेद होते है। इतनी कुछ सम्भावना आनेपर भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और भी ऐसे अविभाग प्रतिच्छेद माने जा सकेंगे कि जिसका व्यक्तरूप भी न हो लेकिन स्वरूप प्रतिष्ठाके लिए अगुरुलघुत्व गुण द्वारा हानि वृद्धिका माध्यम बनाये रखे। इसी बातको और भी स्पष्ट करते हैं।

किन्त्वस्ति च कोपि गुणोऽनिर्वचनीयः स्वतः सिद्धः।
नाम्ना चाऽगुरुलघुरिति गुरुलक्ष्यः स्वानुभूतिलक्ष्यो वा ।१६२।

अगुरुलघुत्व गुण द्वारा शक्तिके सदा रहनेकी व्यवस्था– द्रव्यके गुणोंमें एक अगुरुलघुत्व नामक गुण है जो कि वचनों द्वारा अगम्य है स्वतः सिद्ध है, गुरुजनों और सर्वज्ञ आचार्यदेवकी उपदेश परम्परासे विदित हुआ है अथवा स्वानुभूत प्रत्यक्षसे ही वह लक्ष्यमें आता है। इस अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे किसी भी शक्तिका कभी नाश नहीं होता। जो शक्ति जिस स्वरूपको लिए हुए है वह सदा उसी स्वरूपमें रहता है, इस कारण ज्ञान गुणमें तरतमता होनेपर भी ज्ञान गुणके अंशोंका विनाश नहीं होता अगुरुलघुत्व गुण उसे कहते हैं जिस गुणके निमित्तसे उन शक्तियोंमेंसे किसी भी शक्तिका न तो नाश होता और न किसी नवीन शक्तिका उत्पाद होता। यह अर्थ अगुरुलघुत्व शब्दके अर्थसे ज्ञात होता है। अ मायने नहीं गुरु मायने बड़ा लघु मायने छोटा न हो उसे अगुरुलघुत्व कहते हैं। तो बड़ा न बना पदार्थ इसका भाव क्या है कि पदार्थोंमें कोई असत् नवीन शक्तियाँ नहीं आयी। पदार्थ लघु नहीं बना इसका अर्थ क्या है कि पदार्थोंमें जो शक्तियाँ हैं उन शक्तियोंमेंसे किसीका नाश नहीं होता। यदि शक्तियोंका नाश हो जायगा तो पदार्थ लघु हो जायगा। अथवा नवीन शक्तियाँ आ जायेंगी तो पदार्थ गुरु बन जायगा, वजनदार हो जायगा, क्योंकि शक्तियोंके पिण्डका ही नाम पदार्थ है। शक्तियाँ कम बढ़ हों तो पदार्थमें गुरुत्व लघुत्व बन बैठेगा। तो अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे यह व्यवस्था है कि किसी नवीन शक्तिका उत्पाद नहीं होता। यह बात भी केवल इतने मात्रसे उन शक्तियोंमें सद्गुण हानि वृद्धि चलती रहती है। और उस बलपर फिर यह व्यवस्था बनी हुई है कि नवीन शक्तियोंका उत्पाद नहीं होता और सद्भूत शक्तियोंका विनाश नहीं होता।

अगुरुलघुत्व गुण द्वारा वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी व्यवस्था– प्रसंग यहाँ यह चल रहा है कि वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन तत्त्व चलते ही रहते हैं। इस बातको क्षेत्र दृष्टिसे भी घटायें और भाव दृष्टिसे भी घटायें। क्षेत्र दृष्टिमें बताये गये थे द्रव्यके प्रदेश व्यक्तरूपमें कम बढ़ भी होता रहे, जैसे कि आत्माके प्रदेश जिस शरीरका निमित्त पाते हैं उस प्रमाण वे प्रदेश फैल जाते हैं अथवा संकुचित हो जाते हैं, इतनेपर भी प्रदेश उतने ही रहते हैं जितने कि जीवमें अनादि अनन्त हैं। तो इस ही प्रकार भावदृष्टिमें इस उत्पाद व्ययको यों बता रहे हैं कि गुणके अंश कभी अधिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यक्त होते है कभी कम व्यक्त होते हैं। तो जिस समय जितने अविभाग प्रतिच्छेदकी व्यक्ति है वह तो है गुणोंमें उत्पाद अंश और पूर्व समयमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद की व्यक्ति थी अब वे नहीं रहे क्योंकि उत्तर व्यक्ति हो गई तो वह पूर्व समयकी स्थिति का हो गया व्यय। इतनेपर भी गुणमें अंश उतने हैं जितने कि अनादि अनन्त हैं, उनमें न कोई कम हो न बढ़े। इस दृष्टिसे वहाँ रह गया ध्रौव्य तो गुणोंमें इस प्रकारका उत्पादव्यय ध्रौव्य जो हो रहा है उसमें निमित्त खास करके है अगुरुलघुत्व गुण द्रव्योंमें साधारण गुण है किन्तु अर्थ क्रिया वस्तुके असाधारण गुणोंसे हुआ करती है। तो भले ही असाधारण गुणोंसे वस्तुमें अर्थक्रिया हो, लेकिन उस अर्थक्रिया होनेके लिए व्यवस्थित परिणमन शक्ति चाहिए। तो उसका मूल अगुरुलघुत्व नामक साधारण गुणके कारण होता है। तो यों अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे गुणांशमें बढती व्यक्त हुई फिर वे वे गुणांश उतने ही हैं जितने कि गुणोंमें अनादि अनन्त हुआ करते हैं। यो गुणांशोंमें उत्पादव्यय ध्रौव्यकी बात समझना यों पदार्थमें गुणकी अपेक्षा क्षेत्र व्यक्तिकी अपेक्षा उत्पादव्यय ध्रौव्य ये तीन पदार्थ हैं। यों पदार्थ तृतीयात्तक है।

ननु चैवं सत्यर्थादुत्पादादित्रयं न संभवति।
अपि नोपादानं किल करणं न फलं तदनन्यात् ॥ १८३ ॥

अपि च गुणः स्वांशानामपकर्षे दुर्बलः कथं न स्यात्।
उत्कर्षे बलवानिति दोषोऽयं दुर्जयो महानिति चेत् ॥ १८४ ॥

शक्तिका उत्पादव्यय माने बिना उत्पादव्ययध्रौव्यकी कारणकी व फलकी सिद्धि न हो सकनेका शङ्काकारका कथन— यहां शङ्काकार शङ्का करता है कि जो यह कहा है कि किसी शक्तिका कोई नाश नहीं होता और किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्ति नहीं होती। सो ऐसा माननेपर यहाँ दो दोष आते हैं—पहिला दोष तो यह है कि फिर गुणोंका उत्पादव्यय और ध्रौव्य घटित नहीं हो सकता और न किसीका कारण बन सकता, न फल ही कुछ हो सकता। जब उत्पादव्यय ध्रौव्य न घटेगा तो कारण कार्यभाव कहाँसे आया? और जब कारणकार्यभाव नहीं बना, उत्पादव्ययध्रौव्य न रहा, परिणमन ही कुछ नहीं है तो यों अर्थक्रिया न होनेपर फल भी कहाँसे होगा? तो गुणोंको इस तरह नित्य माननेसे कि न नये गुण आते हैं और न गुणोंका कभी नाश होता है, ऐसा नित्य माना जानेपर उत्पादव्ययध्रौव्य सम्भव नहीं है। पहिला दोष तो यह है। और दूसरा दोष यह है कि यह प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक गुणोंके अंशोंमें कभी न्यूनता हो जाती है और कभी अधिकता हो जाती है। जैसे ज्ञान जब केवल घटको जान रहा है तो वहां ज्ञान घटमात्र है, इससे पहिले पर्वत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को जान रहा था, तो पर्वतका जानना छोड़कर जब घटाकार ही जाननेमें आया तो बड़ेसे छोटे ज्ञानमें ज्ञानांशमें न्यूनता ही तो चाहिए। तो यों अंशोंकी कमीसे न्यूनता होनेके कारण उस स्थितिसे गुण दुर्बल हो जायेंगे, क्योंकि वह सूक्ष्म बन गया पतला हो गया संकुचित हो गया। तो यों गुण दुर्बल हो गया और कभी गुणकी अधिकता भी आती है जैसे कोई घड़ेको जान रहा था अब जान रहा है समुद्रको तो घट ज्ञानमें ज्ञान अव्यक्त था। उस घटाकार ज्ञानका परिमाण छोटा था और समुद्र परिमाण जो ज्ञान हुआ उसका समुद्राकार बड़ा रहा तो देखो कभी ज्ञानमें अधिकता भी प्रतीत होने लगती है। तो ऐसी अवस्थामें वह गुण बलवान शक्ति वाला बन जायगा। तो दूसरा दोष यह आता है। तो शक्तिको नित्य माननेपर अर्थात् जो है शक्ति वह सदा रहती ही है उसका कभी नाश नहीं होता। और नवीनका उत्पाद नहीं होता। दोनों बातों में नित्यता स्वीकार करलें तो यों शक्तिको नित्य माननेपर ये दोष दोनों अनिवार्य हैं। इस कारण यह कहना अयुक्त है कि किसी शक्तिका कभी नाश नहीं होता और किसी नवीन शक्तिका उत्पाद नहीं है। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतः परिणामि द्रव्यं पूर्वं निरूपितं सम्यक।
उत्पादादित्रयमपि सुघटं नित्येऽथ नात्यनित्येर्थे ॥ १९५ ॥

द्रव्यकी परिणमनशीलताके कारण उत्पादादिककी सिद्धि करते हुए शङ्काकारकी उक्त शङ्काका समाधान—ऊपर जो शङ्का उठाई गई है कि शक्ति को नित्य माननेपर दो दोष आते हैं वह शङ्का युक्त नहीं है, क्योंकि पहिले जो बताया गया था कि द्रव्य परिणमनशील है, तो इस ही सिद्धान्तमें सब समाधान आ जाते हैं। जब द्रव्य परिणमनशील है तो द्रव्य तो रहा ही था और वह है परिणमनशील, निरन्तर परिणमता रहता है। तो जो परिणमता रहता है वह तो सदा ही रहा ना कुछ परिणमता रहता है। यह परिणमन बननेकी अवस्थायें किसकी बन जाती हैं ? वह तो स्थायी तत्त्व रहा ना ! तो द्रव्य परिणमनशील है, इस सिद्धान्तसे ही यह बात सिद्ध होती है। नित्य पदार्थमें ही उत्पादव्यय सम्भव है अनित्यमें नहीं। तो जो सदा रहता है वही तो नानारूपोंमें परिणमता हुआ चला जाता है। जो अनित्य है, पहिले समयमें है दूसरे समयमें उसका लगार भी नहीं है तो परिणमन अब किसका बनेगा ? यों समाधान यही है कि द्रव्य परिणमनशील है, सर्वत्र परिणमता रहता है। जो परिणमता रहता है वह तो है ध्रुव और परिणत रहनेमें जो जो परिणमन आता रहता है वह है अध्रुव ! तो यों पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, इसलिए उत्पादव्यय होता है। यह तभी तो सम्भव है जबकि वह पदार्थ चिरकाल तक रहता हो। तो उत्पादव्ययध्रौव्य नित्य पदार्थमें ही सम्भव है, अनित्य पदार्थमें सम्भव नहीं है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए एक दृष्टान्त देते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जम्बूनदे यथा सति जायन्ते कुण्डलादयो भावाः ।
अथसत्सु तेषु नियमादुत्पादादित्रयं भवत्येव ॥ १९६ ॥

दृष्टान्तपूर्वक उत्पादादिकमें द्रव्यकी परिणमनशीलताकी कारणरूपता का समथन—जैसे स्वर्णके होनेपर ही यदि कुण्डल आदिक अवस्थायें उत्पन्न होती हैं. जब यह बात स्पष्ट विदित है तो यह सिद्ध हुआ कि उन कुण्डल आदिक भावोंके होने पर उसमें उत्पाद आदिक घटित ही हैं। जब सोनेको ठोकपीटकर कुण्डलाकार बन जाता है उस समय सोना अब पहिली परिणतिमें न रहा पहिले वह सोना था पाँसी-रूप। अब उसे कलाकार ठोक पीटकर कुण्डलके आकार बनादे तो पाँसारूप जो पर्याय थी उसका हो गया विनाश और कुण्डलरूप पर्यायका हो गया उत्पाद। सोनेको देखो तो वह दोनों अवस्थाओंमें है। जब वह पाँसेरूपमें था तब भी और जब कुण्डलरूपमें आया तब भी। तो उत्पाद व्ययकी भी बात समझमें आ सकी। तो सोनेमें ये तीन बातें घटित हो हुई कि कुण्डल पर्याय बनी और पाँसापर्यायका विनाश हुआ। और सोना दोनों अवस्थाओंमें रहा। हुआ क्या कि सोनेके प्रदेशमें किसी प्रदेशका नाश नहीं हुआ। सोना जितना था वही है, केवल एक क्षेत्रका क्षेत्रांतर हो गया। पहिले वह पाँसेरूपमें था अब वह कुण्डलाकाररूपमें आया। यह तो परिवर्तन हुआ प्रत्येक सोनेके प्रदेशमें किसी प्रकारकी नवीन उत्पत्ति हुई हो अथवा नाश हुआ हो, यह बात संगत नहीं हुई। इससे सिद्ध है कि सोनेको यदि अनित्य ही मान लिया जाता तो उसमें उत्पादव्यय आगे सम्भव न थे। कल्पना करो कि सोना अनित्य ही होता तो जो अनित्य है उसका तो समूल नाश हो गया। अगर समूल नाश न हो तो अनित्य नहीं कहा जा सकता। अनित्य माननेका अर्थ है कि अगले समयमें भी कुछ न रहा। तो जब कुछ भी न रहा, पाँसेके नाश होनेपर कुछ भी चीज न रही तो कुण्डल अब किसका बन गया? कुण्डल जिसका बना है वह तो नित्य मानना ही होगा। तो सोने को यदि अनित्य ही मान लिया जाय तो पाँसे पर्यायका विनाश होनेपर उसके साथ सोना भी नष्ट हो गया। अब वह कुण्डल किसका बने? तो सर्वथा अनित्यमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात सम्भव नहीं होती। और, जो नित्य होता है वह है सदैव अनादि, और अनन्तकाल तक, किन्तु उसका स्वभाव परिणमनका है। प्रत्केक पदार्थ परिण-मनशील हुए बिना उनकी सत्ता नहीं रह सकती। तो द्रव्य है और वह परिणमनशील है, इस सिद्धान्तमें ही उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित होता है। इस सिद्धान्तके विरुद्ध याने सर्वथा नित्य अथवा अनित्य माननेपर उत्पादव्ययध्रौव्य सम्भव नही होते। जैसे सर्वथा अनित्य होनेपर उत्पादव्यय बन ही नहीं सकता, क्योंकि सर्वथा अनित्य जब मूलसे ही नष्ट हो गया तो अब पर्याय किसकी बने? तो ऐसे ही सर्वथा नित्य माननेपर भी उत्पादव्यय नहीं बनता। सर्वथा नित्यका अर्थ है कि उसमें किसी प्रकारका परिणमन न हो। परिणमन न हो यह बात सिद्ध करनेके लिए मानना होगा कि परिणामी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथवा परिणमनशील नहीं है। तो जब वस्तुमें परिणमनकी कला ही नहीं मानी गई तो परिणमन कैसा ? और परिणमन बिना वस्तुका सत्त्व कैसे विदित हो ? इस कारण मानना होगा कि वस्तु परिणमनशील है, शाश्वत है, और इसी कारण वस्तुमें उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों होते चले जाते हैं।

होकर होते रहनेमें नित्यत्वकी झलक–शङ्काकारकी यह कहना कि शक्ति को नित्य माननेपर उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित नहीं होते, यह बात उनकी युक्तिसंगत नहीं है, बल्कि नित्य माननेपर उत्पादव्यय ध्रौव्य सम्भव है। नित्यका अर्थ परिणामी नहीं। जो वस्तु है वह सदा परिणामी हुआ करती है। उसकी नित्यताको समझना चाहिए और नित्यका अर्थ ही यह है कि मात्र नित्यशक्ति बनी रहे। नित्यशक्ति बनी रहे इसे सूत्रजी में यों कहा है तद् अन्वय: नित्य: अर्थात् वस्तुका जो होना है, वस्तुके परिणमनकी बातका कभी व्यय न हो उसे नित्य कहते हैं। तो इस प्रकारके नित्य समस्त पदार्थ हैं। जो भी सत् है उनके परिणमनका कभी व्यय नहीं होता, याने कभी ऐसा समय न आयगा कि कोई वस्तु परिणमन न करे। परिणमन किए बिना ही रहे यह तो सत्त्वका स्वभाव नहीं है। जो सत् है वह निरन्तर किसी न किसी रूपमें परिणमता रहेगा। बस जो परिणमन है वह उत्पादव्ययरूप है। और वह परिणमन जिसका होता है वह तत्त्व ध्रुव है। यों शक्तिमें परिणमन होता है इस कारण उत्पाद-व्यय ध्रौव्य तीनों घटित हो जाते हैं।

अनया प्रक्रियया किल बोद्धव्यं कारणं फलं चैव।
यस्मादेवास्य सतस्तद्द्वयमपि भवत्येतत् ॥ १६७ ॥

शक्तिको कथंचित् नित्य माननेपर ही कारण व फलकी उपपत्ति—शङ्काकारने अपनी शङ्कामें यह भी कहा था कि किसी शक्तिका कभी नाश नहीं होता और न किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्ति होती है। ऐसा माननेपर कोई किसीका भी कारण नहीं हो सकता और न दूसरोंका फल ही हो सकता। इस सम्बन्धमें यह बता रहे हैं कि पदार्थको कथंचित् नित्य माने बिना कारण और फल घटित न हो सकेंगे। कारण और फल कथंचित् नित्य पदार्थमें ही घटित हो सकते हैं। कारण भी सत् पदार्थमें ही घटित हो सकते हैं कारण भी सत् पदार्थमें ही हो सकेगा और फल भी सत् पदार्थमें ही हो सकेगा। जो अनित्य है अर्थात् होते ही नष्ट हो गया वह किसीका कारण कैसे हो सकेगा ? जो अनित्य है, होते ही नष्ट हो गया उसका फल क्या कहा जायगा ? क्षणिक पदार्थ तो स्वरूपलाभका ही एक समयमें कर सका, उससे कारण और फलकी बात न चल सकेगी। तो जब पदार्थका ध्रुव माना जाय, कथंचित् नित्य माना जाय तो जैसे उत्पादव्यय ध्रौव्य नित्य पदार्थमें ही सम्भव है इसी प्रकार कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

औरफल घटित होना भी नित्य पदार्थमें ही सम्भव है। लोकव्यवहारमें भी कारणपने की खोज नित्य पदार्थोंमें ही की जा सकती है। जो सर्वथा क्षणिक है उसका तो विकल्प भी नहीं, उसका व्यवहार भी नहीं, उसमें कार्य कारण विधान कैसे होगा कारण कार्यपना भी परमार्थतः एक ही पदार्थमें होता है। एक ही पदार्थकी पूर्व अवस्था कारण बनती है और उत्तर अवस्था कार्य होती है। उत्तर पूर्व अवस्था आये बिना उत्तर अवस्थाकी प्राप्ति किए जानेका अवसर न होगा। जब पूर्व अवस्था आये तो प्रत्येक अवस्था चूंकि एक एक समयकी होती है सो स्वभावतः वह पूर्व अवस्था उत्पन्न होकर विलीन होगी। बस वही समय उत्तर अवस्था के उत्पादका है। तो जब कोई पदार्थ सत् हो, सदा रहे तब ही तो उसमें कार्य कारणपना बन सकता है ? यही बात फलके सम्बन्धमें है। फल है उसका परिणाम तो फल भी एक परिणति है, किन्तु वाञ्छाके अनुसार परिणतिको फल कहा जाता है। जो परिणति इष्ट हो जिस परिणतिमें हित हो उस परिणतिको फल कहा करते हैं। फल भी कोई अलग चीज नहीं है, अपने भाव पदार्थका परिणमन ही फलरूपसे कहा जाता है। तो जब पदार्थ नित्य हो तो उसमें उपाय और फलकी बात बन सकती है। सर्वथा क्षणिकमें उत्पादव्यय ध्रौव्य भी नहीं बनता। कारण कार्यकी विधि भी नहीं बनती और फलकी प्रक्रिया भी नहीं बनती, इस कारण जो अभी कहा गया है कि सत्में उत्पादव्यय ध्रौव्य होता है और वह नित्य है। उसमें अवस्थाओंका होते रहना जारी है। पदार्थ परिणमनशील है और उसी पदार्थको जब भेद दृष्टिसे देखते हैं तो शक्त्यांशोंके रूपमें ज्ञात होता है। तो जैसे पदार्थ कथंचित् नित्य हैं, परिणामी है जब उसमें उत्पाद आदिक घटित होते हैं ऐसे ही भेद दृष्टिमें निरखे गए यह शक्ति भी नित्य है और परिणामी है। तभी इसमें उत्पादव्यय ध्रौव्य घटित होते हैं और कारण कार्य एवं फलका विधान भी घटित होता है।

आस्तामसदुत्पादः सतो विनाशस्तदन्वयादेशात् ।
स्थूलत्वं च कृशत्वं न गुणस्य च निजप्रमाणत्वात् ॥१९८॥

अन्वयदृष्टिसे गुणमें स्थूलत्व व कृशत्वकी अनुपपत्ति—अब शङ्काकार की अन्तिम शङ्का थी कि नवीन नवीन शक्तियोंका उत्पाद न माननेपर शक्तिको नित्य माननेपर शक्ति दुर्बल और बलवान होती जाया करेगी अर्थात् जब शक्तिके अंश कुछ कम प्रकट होते हैं और कभी शक्त्यांश अधिक व्यक्त होते हैं तो ऐसी अवस्थामें जब व्यक्ति अधिक हो तो शक्ति बलवान हो जायगी। यों शक्तिमें दुर्बलता और बलवत्ता अथवा सूक्ष्मता और स्थूलता आ जायगी। इस शङ्काके समाधानमें कहा जारहा है कि कमती और अधिक व्यक्तिका अर्थ है क्या सो समझिये ! जैसे ज्ञान कभी घटाकार होता है तो उस समय कहा गया कि ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद यहाँ कम व्यक्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं। जब ज्ञान लोकाकार होता है, लोकप्रमाण समस्त तत्त्वका जाननहार होता है तो वहां बताया गया कि ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद अधिक व्यक्त हो गए। तो इन स्थितियोंमें केवल आकारभेद है। ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदमें न्यूनता और वृद्धि जो यहाँ बताई गई है उससे यह अर्थ न लेना कि ज्ञानके अंशोंका नाश हुआ है अथवा ज्ञानके नवीन अंशोंकी उत्पत्ति हुई है। ये सब तो ज्ञानावरण कर्मके निमित्तसे ज्ञानके अंशोंमें व्यक्तता और अव्यक्तता होनेकी बात कही गई है। अधिक अंशोंके दबनेसे ज्ञान दुर्बल कहा गया है और अधिक अंशोंके प्रकट होनेसे ज्ञानको सबल कहा गया है। इसके सिवाय सबलता और दुर्बलताका कोई अन्य अर्थ नहीं है। अविच्छिन्नता संततिसे देखनेसे गुणोंका रहस्य विदित होता है। अविच्छिन्नता संततिके देखे जानेपर न तो असत्की उत्पत्ति सिद्ध होती है न सत्का विनाश सिद्ध होता है। इसके साथ ही साथ जो शक्तिकी प्रमाणतामें स्थूलता और कृशता भी सिद्ध नहीं होती। शक्ति गुण जैसा जो है वह अनादि अनन्त है। शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद कम और अधिक व्यक्त होने पर भी शक्ति उतने ही अविभाग प्रतिच्छेदरूप है, उसमें न्यूनता और वृद्धि नहीं होती।

तत्त्वस्वरूपकी स्वतःसिद्धता व स्वसहायता— इस अध्यायमें तत्त्वका लक्षण बताया जा रहा है। तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है। जब हम सत्त्वको लक्ष्यमें लेना चाहते हैं तो हमें वहाँ लक्षण सत्त्व विदित होता है। जो सत् हो वह तत्त्व है। लेकिन सत् लक्षण हो तत्त्व लक्ष्य हो, ऐसी कुछ पदार्थमें पृथक पृथक बात नहीं जुड़ी हुई है। तत्त्वका और सत्त्वका पार्थक्य नहीं है और न आधार आधेय भाव है। पदार्थ वही है, उसको भेद दृष्टिसे निरखनेका एक उपाय बताया गया है। इस कारण व्यवहारसे यह कथन कि तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है परमार्थतः तत्त्व सन्मात्र है। जो सत् है वही वह तत्त्व है, ऐसा वह तत्त्व स्वतः सिद्ध है। जो है वह अपने आप है। किसीके द्वारा कुछ बताया गया नहीं है। कभी कोई पर्याय किसी निमित्तको पाकर व्यक्त होता है तो उस व्यक्त विभावकी स्थितिमें भी निमित्तसे उस परिणतिकी निष्पन्नता नहीं है। वह परिणति तो पदार्थमें अपने स्वभावतः प्रकट हुई है। और, फिर जो उत्पाद आदिकमय सत् है वह सत् किसीसे उत्पन्न होता ही नहीं है। यों तत्त्व स्वतः सिद्ध है। तत्त्व स्वतः सिद्ध है और है वह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप। तो वहाँ यह भी निरखना है कि तत्त्वोंमें जो अवस्थाओंका उत्पाद है वह भी स्वतः सिद्ध है। पदार्थोंमें पर्यायोंका उत्पाद किसी परद्रव्यसे नहीं हुआ करता है। तो उत्पाद भी स्वतः सिद्ध है इसी प्रकार उत्पाद होना पूर्वपर्यायके व्ययका अविनाभावी है। सो पूर्वपर्यायका व्यय भी स्वतः सिद्ध है। यहांमें सत्त्वके कारण यह उत्पादव्ययकी परम्परा अनादि निधन है। सो जैसे उत्पादव्यय स्वतः सिद्ध चलता रहता है। ऐसे ही पदार्थोंमें जो ध्रुवता है वह भी स्वतः सिद्ध है। जो तत्त्व सन्मात्र है और वह स्वतः सिद्ध है इसका अर्थ यह भी हुआ कि पदार्थ परिणामी है और उसका परिणाम भी स्वतः सिद्ध होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है । ये सब प्रक्रियायें पदार्थमें अपने सहायपर हो रही हैं । जैसे सत्त्व किसी अन्यके बलपर नहीं है इसी तरह पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्य क्षेत्र होना भी किसी अन्य पदार्थके बलपर नहीं है ।

वस्तु स्वातन्त्र्यके अवगमकी मोहप्रक्षयमें साधकतमता –प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, अपने अपने स्वरूप चतुष्टयको लिए हुए है अपने आपमें अपना परिणमन निरन्तर करता रहता है । किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है। ऐसे तत्त्वका परिज्ञान होना इस जीवनमें अपनी भलाईके लिए कितना उपयोगी है ? यदि तथ्यकी बात कही जाय तो कर्तव्यमात्र श्रेष्ठमन वाले जीवका (मानवका) यही है कि पदार्थकी स्वतंत्रताका परिज्ञान करले। जितना भी क्लेश है वह सब मोहका है । और, मोहका अर्थ है किसी पदार्थसे अपना सम्बन्ध है नहीं और सम्बन्ध समझा जाय तो वहाँ अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि निरन्तर क्लेश सहना ही पड़ता है। जहाँ यह बोध हो कि मैं आत्मतत्त्व समस्त पदार्थोंसे निराला स्वतंत्र हूं जैसे कि अन्य सभी पदार्थ निराले और स्वतंत्र हैं। तो ऐसी स्वतत्रताका भान होनेपर मोह रहनेका अवसर नहीं रहता । मोहका विनाश हुआ कि जीवका कल्याण हस्तगत हो गया । मोहके विनाशका उपाय पदार्थोंकी स्वतंत्रताका परिज्ञान करना है । इस उपाय को छोड़कर अन्य किसी उपायमें कोई जीव चले तो उसे सफलता नहीं प्राप्त होती । जो प्रभाव जिस विधिसे बनता है वह प्रभाव उस विधिसे ही हो सकेगा । तो क्लेशको दूर करनेका हम आप सबका उद्देश्य है । क्लेश दूर होगा मोहके क्षयसे और मोहका क्षय होगा पदार्थकी स्वतंत्रताके ज्ञानसे । इस कारण पदार्थोंका सत्य स्वरूप समझना चाहिए जो कि स्वभावत: स्वतंत्र हैं । पदार्थोंका सत्य स्वरूप जाननेसे मोह संकट दूर होगा और इससे ही शाश्वत आनन्द प्राप्त होगा ।

इति पर्यायाणामिह लक्षणमुक्तं यथास्थितं चाथ ।
उत्पादादित्रयमपि प्रत्येकं लक्ष्यते यथाशक्ति ॥ १९९ ॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका स्वरूप कहनेका संकल्प --अब तक पर्यायोंका लक्षण बताया गया है । पर्यायोंके बतानेसे उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनों धर्मोंकी सिद्धि होती है । वस्तुमें परिणमन हो तब उत्पादव्ययकी बात समझी जा सकती है । और, जब उत्पादव्यय होता है तो आखिर किस तत्त्वमें होता है । उसके उत्तरमें ध्रुव तत्त्व का निखार होता है । तो वस्तुके लक्षणमें गुण और पर्याय दोनोंका बताना आवश्यक है । इसीलिए द्रव्यका लक्षण कहा गया है 'गुणपर्ययवद् द्रव्यं । जो गुण और पर्याय वान हो उसे द्रव्य कहते हैं । जहाँ लक्षण बतानेकी बात कही जावे वहां भेददृष्टि हो ही जाती है । चाहे आत्मभूत लक्षण भी कहा जा रहा हो तब भी लक्ष्यसे किस रूपमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्त्व नजर आयगा और लक्षण से किस रूपमें तत्त्व विदित होगा ? एक धर्मी और एक धर्म बन ही जायगा। लक्ष्य धर्मी और लक्षण धर्म हो जाता है। तो यद्यपि पदार्थ गुण पर्यायोंसे जुदा नहीं है फिर भी पदार्थका लक्षण बतानेके लिए गुणपर्यायवत्ताका जो कथन है सो द्रव्य लक्ष्यधर्मी हो गया और गुणपर्यायवत्ता लक्षण अथवा धर्म हो जाता है। तो गुण और पर्याय दोनोंका कथन अब तक हुआ। गुण ही सब मिलकर द्रव्य कहे जाते हैं। अथवा द्रव्यको ही भेददृष्टिसे निरखनेपर गुण कहा जाता है। सो जैसे द्रव्य नित्यानित्यात्मक है वैसे ही गुण भी नित्यानित्यात्मक है। अब इसके बाद द्रव्य नित्यानित्यात्मक है तो उसमें नित्यत्व जो अंश है, जिस दृष्टिमें अनित्यत्व दिखता है उस दृष्टिमें अनित्यत्व नहीं है। अतएव नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो धर्म हुए। इसी प्रकार गुणमें भी नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो धर्म हुए। किंतु स्पष्ट समझनेके लिए नित्यत्व धर्मसे गुणको मुख्य कहना और अनित्वत्व धर्मसे गुणकी अवस्थाको मुख्य करना इस प्रकार अनित्यपना पर्यायमें रहा और नित्यपना गुणमें रहा। यों गुण पर्यायवान द्रव्य है यह लक्षण घटित किया गया। अब उत्पादव्ययध्रौव्यका भिन्न-भिन्न स्वरूप वर्णन किया जायगा। वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही पर्याय दृष्टिसे निरखे जाते हैं। सो पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता रखकर उत्पादव्यय ध्रौव्यका वर्णन किया जाता है।

उत्पादस्थितिभङ्गाः पर्यायाणां भवन्ति किल न सतः।
ते पर्याया द्रव्यं तस्माद् द्रव्यं हि तत् त्रियतम् ॥ २०० ॥

पर्यायोंके उत्पाद, व्यय ध्रौव्यकी उपपत्ति उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों पर्यायके होते हैं, पदार्थके नहीं होते अर्थात् पदार्थका उत्पाद होना, पदार्थकी स्थिति रहना पदार्थका भङ्ग होना ये एकान्ततः पदार्थमें घटित नहीं होते। उत्पाद स्थिति और व्यय ये तीनों पर्यायमें होते हैं और वे सब पर्यायें ही मिलकर द्रव्य कहलाती हैं। इस कथनमें यह बात सिद्ध की गई कि पदार्थ तृतीयात्मक होता है। उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप सत् होता है। न तो किसी पदार्थका एकान्ततः नाश है और न किसी पदार्थकी एकान्ततः उत्पत्ति है। इसलिए ये तीनों ही पदार्थकी अवस्थाओंके भेद हैं। इसी कारण ये तीनों अवस्थायें मिलकर ही द्रव्य कहलाती हैं। इन तीनोंका समुदाय ही द्रव्यका पूर्ण स्वरूप है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके प्रभावसे उदाहरण—तत्त्व तृतीयात्मक होता है। इसकी अभिव्यक्तिके लिए दो उदाहरण देते हैं– एक तो दूध, दही और गोरस। गाय का दूध और दही जामन मिलकर बनता है दही और ये दोनों कहलाते हैं गोरस। तो दूध कहकर जो तत्त्व ज्ञात होता है यह दधि और गोरस कहकर नहीं। और, दधि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहकर दूध ज्ञात होता है वह दुग्ध और गोरस कहकर नहीं। और, गोरस कहनेसे जो तत्त्व विदित होता है वह दूध और दही कहनेसे नहीं। इसका प्रमाण यह है कि जिसने दूधका त्याग किया है ऐसा पुरुष दही खा लेता है और उसके व्रतका भङ्ग नहीं है। जिसने दधिका त्याग किया है वह दुग्ध ले लेगा और उसके व्रतका भङ्ग न होगा, किन्तु जिसने गोरसका त्याग किया है वह दूध और दही दोनों ही ग्रहण न कर सकेगा। तो इससे मालूम होता है कि ये तीनों बातें अपना अपना प्रथक प्रथक स्वरूप लिए हुए हैं। यही बात उत्पादव्ययध्रौव्यके सम्बन्धमें है और, इस उदाहरणसे उत्पादव्ययध्रौव्यका प्रभाव प्रथक है, यह अंदाजमें आता है। दूसरा उदाहरण ले कि कोई पुरुष तो सोनेकी छोटी कलशियोंका इच्छुक था, सो प्रभुमूर्तिका अभिषेक करने की इच्छासे यह पुरुष बाजार गया। दूसरे नगरका कोई पुरुष मुकुट लेनेकी इच्छासे बाजार गया, तीसरे नगरका कोई पुरुष स्वर्ण खरीदनेकी इच्छासे बाजार गया। सुयोग वश वे तीनों ही एक दूकानपर पहुंचते हैं, जिस दूकानपर कलशिया तोड़कर मुकुट बनाये जा रहे थे। उस स्वर्णकारने सोचा था कि ये स्वर्णकी कलशियाँ बहुत दिनोंसे रखीं हैं, इनकी बिक्री नहीं हुई, सो वह यह सोचकर मुकुट बनवाने लगा कि इनकी बिक्री हो जायगी। तो कलशियाँ तोड़कर मुकुट बनाये जा रहे थे। इस घटना को देखकर उन तीनों व्यक्तियोंपर जुदा जुदा प्रभाव पड़ा। जिसे कलशियाँ चाहिये थी वह तो विषाद करने लगा। वह सोचने लगा कि यदि मैं १०–५ मिनट पहिले आ गया होता तो हमें बनी बनाई कलशियां मिल जातीं। न हमें समयका विलम्ब होता और न उनकी अलगसे बनवायी देनी पड़ती। दूसरा व्यक्ति—मुकुट खरीदने वाला खुश होने लगा—सोचा वाह, अभी १०–५ मिनटमें ही हमें इष्ट भूषण मिला जारहा है। और तीसरा व्यक्ति—सोना खरीदने वाला न तो खुश होता है और न विषाद करता है क्योंकि उसे तो सोना लेनेसे मतलब! तो इससे विदित होता है कि ये तीनों ही तत्त्व अपना जुदा स्वरूप रखते हैं।

पर्यायोंके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूपकी उत्पत्ति उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन रूप पर्यायके हैं। यदि ये पदार्थके मान लिए जायें तो उत्पाद हुआ। इसका अर्थ होगा कि नवीन पदार्थ उत्पन्न हुआ अथवा व्यय हुआ। यह कहनेपर यह मान लिया जायगा कि पदार्थका नाश हो गया। पर पदार्थका न नाश है न नवीनकी उत्पत्ति है। ये तो पदार्थकी अवस्थाओंके भेद हैं। और ध्रौव्यकी पर्यायोंकी दृष्टिमें ही विदित होता है अर्थात् उत्पाद व्यय हो होकर पर्यायोंका बनता चले जाना यह ध्रौव्य है। यह उत्पादव्ययका प्रक्रम अनन्त काल तक चलता रहेगा। इस निश्चयमें जो तत्त्व विदित हुआ उसका नाम है ध्रौव्य। अब उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे उत्पादका स्वरूप कहते हैं।

तत्रोत्पादोऽवस्था प्रत्यग्रं परिणतस्य तस्य च।
सदसद्भावनिबद्धं तदतद्भावत्ववन्नया देशात् ॥ २०१ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पादका स्वरूप--परिणमनशील द्रव्यकी नवीन अवस्थाका नाम उत्पाद है। पदार्थ जैसे स्वत:सिद्ध है उसी प्रकार स्वत: परिणामी भी है। पदार्थका स्वरूप किसने उत्पन्न किया ? जो है वह स्वयं है। तो इसी प्रकार पदार्थ निरन्तर परिणमता ही रहे, एक समयका परिणमन बिल्कुल न रहेगा। इस स्वभावको, शीलको किसने बनाया ? पदार्थ सत् है। इसी कारण उसमें परिणमशीलता भी है तो प्रत्येक द्रव्य परिणमशील है तब वह निरन्तर परिणमता रहता है। उन परिणमनोंमें जो नवीन अवस्था है उसे तो उत्पाद कहते हैं और जो पूर्व अवस्था विलीन हुई उसे व्यय कहा गया। तो नवीन अवस्था होनेका नाम उत्पाद है और यह उत्पाद द्रव्यार्थिक नय की दृष्टिमें सद्भावरूप है और पर्यायार्थिक दृष्टिमें असद्भावरूप है अर्थात् वह पर्याय हुई तो कुछ नवीन बात नहीं हुई। वही द्रव्य है इस प्रकारमें हुआ। तो द्रव्यमें ये सब पर्यायें हैं और एक दृष्टिमें द्रव्य माना गया है अनन्त पर्यायोंका समूह। अतीतमें जितनी पर्यायें हुईं भविष्यमें जितनी पर्यायें होंगी उन सबका समूह द्रव्य है। तब द्रव्यके इस लक्षणकी दृष्टिसे समस्त पर्यायें द्रव्यमें सद्भावरूप हैं वे ही अब व्यक्त हुई हैं। तो द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिमें पर्यायें सद्भावनिबद्ध हैं और पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि में अवस्थायें असद्भाव निबद्ध हैं जो न था वह हुआ। नवीन अवस्थाके होनेका नाम ही तो यह है कि वह अवस्था न थी अब नवीन हुई है। तो यों द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिमें ये अवस्थायें असद्भाव निबद्ध हैं। सद्भावके सम्बन्धमें एकान्तवादियोंने बताया है कि प्रत्येक पर्यायें द्रव्यमें सदा हैं उनमें क्रमशः व्यक्ति चलती रहती है। लेकिन द्रव्यमें सदा समस्त पर्यायें हैं, यह बात सङ्गत नहीं बैठती। किंतु द्रव्य अनादिसे अनन्त काल तक रहता है और किसी न किसी पर्यायमें सदैव रहेगा, इस कारण गुणपर्यायों का पुञ्ज द्रव्य है, ऐसा मानकर संकल्पसे यह समझा गया कि द्रव्यमें अनन्त पर्यायें हैं और वह सद्भावनिबद्ध हैं। जब पर्यायार्थिक दृष्टि करते हैं तो नवीन-नवीन पर्यायें विदित होती हैं, और इस परिज्ञानमें पर्यायें असत् अर्थात् जो न थीं वह हुई हैं। यों पर्यायें असद्भाव निबद्ध हैं। इसका समर्थन सद्भाव और असद्भावकी जानकारीसे होता है। द्रव्यार्थिक नयमें तद्भाव है और पर्यायार्थिक नयमें असद्भाव है। जो न था वह यहाँ हुआ है। यों उत्पाद द्रव्यार्थिक नयसे कुछ नवीन नहीं किंतु पर्यायार्थिक दृष्टिसे नवीन ही हुआ।

अपि च व्ययोपि न सतो व्ययोप्यवस्थाव्ययः सतस्तस्य।
प्रध्वंसाभावः स च परिणामित्वात् सतोप्यवश्य स्यात् ॥२०२॥

व्ययका स्वरूप --इस गाथामें व्ययका स्वरूप बताया गया है। व्यय सत्का नहीं होता अर्थात् सत्त्व नष्ट हो जाय, इसका नाम व्यय नहीं है, किंतु परिणमनशील उस सत्की अवस्थाका व्यय होनेका नाम व्यय है। इस ही को प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रध्वंसाभावका परिणमनशील द्रव्यमें हुआ करता है। व्यय कोई तुच्छाभावरूप नहीं है याने समूल नाश होनेका नाम व्यय नहीं है। व्ययमें उत्तर पर्यायका उत्पाद है अतः उत्तरपर्यायके सद्भावका नाम पूर्वपर्यायका अभाव है। इसीको प्रध्वंसाभाव कहते हैं। इसीका नाम व्यय है। तो सद्भूत पदार्थमें निरन्तर परिणमन होता है और उन परिणमनोंकी दृष्टिसे नवीन परिणमनका उत्पाद बताया गया था। अब इस गाथामें पूर्व परिणमनका व्यय बताया गया है। पदार्थ वही है, शाश्वत् है उसकी अवस्थामें उत्पाद व्यय होता रहता है। ऐसा उत्पाद व्यय होते रहनेकी बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। हम जो कुछ आँखों देखते हैं वहाँ भी यह विदित हो रहा है कि यह वस्तु अनेक वर्षों से है किंतु पहिले वर्षसे इस वर्षमें परिणमन हुआ है। कोई भी वस्तु पुरानी होकर जीर्ण-शीर्ण हो जाती है तो अवस्थामें परिवर्तन होना, नवीनता आना यह बात देखी जा रही है और वस्तु वही है जिसमें ये अवस्थायें बदलती रहती हैं। तो लौकिक दृष्टान्तसे भी यह बात सिद्ध है कि वस्तु वही है और उसमें परिणमन होते रहते हैं। नवीन परिणमनको उत्पाद कहते हैं और नवीन परिणमन होनेपर जो पूर्व परिणमन न रहा उसको व्यय कहते हैं। सत् पदार्थ वहीका वही है। तो व्ययके स्वरूपमें यह जानना चाहिये कि सत् पदार्थका व्यय नहीं होता किंतु सत् पदार्थकी अवस्थाका व्यय होता है। सत् परिणामी है, परिरमणशील है, उसके परिणमन होते रहते हैं, उन्हीं परिरमणोंमें प्रागभाव प्रध्वंसाभावकी व्यवस्था है। यों व्यय प्रध्वंसाभाव रूप है जो कि अन्यके सद्भावरूप पड़ता है, किंतु पदार्थके समूल नाश होनेका नाम व्यय नहीं है।

ध्रौव्यं सतः कथंचित् पर्यायार्थाच्च केवलं न सतः।
उत्पादव्ययवदिदं तच्चैकांशं न सर्वदेशं स्यात्॥ २०३॥

ध्रौव्यका स्वरूप—ध्रौव्य भी कथंचित् पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे होता है। पर्यायार्थिक दृष्टिको छोड़कर केवल सत्का ध्रौव्य नहीं होता किन्तु जैसे पर्यायकी दृष्टि में उत्पादव्यय है और वह वस्तुका अंश है सर्वांश रूप उत्पादव्यय है इसी प्रकार यह ध्रौव्य भी पर्यायार्थिकदृष्टिसे विदित होता है और पदार्थका अंश स्वरूप है वह भी सर्वांशरूप नही है। इस प्रसंगमें कुछ लगता ऐसा है कि ध्रौव्य द्रव्यदृष्टिसे होना चहिए क्योंकि द्रव्य पदार्थ सदा रहता है और सदा रहनेकी बातका ही नाम ध्रौव्य है। तो उत्पादव्यय पर्यायार्थिक दृष्टिसे रहे और ध्रौव्यकी बात द्रव्यदृष्टिसे रहे ऐसा कुछ लगता है, किन्तु विचार करने पर सिद्ध होगा कि ध्रौव्य भी पदार्थका अंश है और जितने भी अंशविज्ञात हुआ करते है वे पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे ज्ञात होते हैं उत्पादव्ययतो पर्यायार्थिक दृष्टिसे है इससे किसीका विवाद नहीं है किन्तु ध्रौव्य यदि द्रव्य दृष्टिसे रहे तो इसके मायने यह होगा कि पदार्थ अपरिणामी नित्य हो जायगा किन्तु ध्रौव्यमें अपरिणामिता विवक्षित नहीं है। ध्रौव्यका अर्थ यह है कि उत्पादव्ययकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परम्परा कभी नष्ट न हो यह निरन्तर चलती रहे इस आधारको सूचित करता है ध्रौव्य शब्द । दूसरी बात यह है कि पदार्थ तो परमार्थत: अवक्तव्य है और वह है परि-मा । दृष्टिसे ज्ञात करनेपर नित्यानित्य स्वरूप पदार्थ मात्र नित्य नहीं और पदार्थमात्र अनित्य नहीं । केवल सर्वथा नित्य हो तो वह सत् नहीं रह सकता । इसी प्रकार कोई पदार्थ केवल अनित्य हो तो वह भी सत् नहीं रह सकता । तो जैसे पदार्थकी अवस्थाओंका उत्पादव्यय भेद दृष्टिसे पर्याय दृष्टिसे विदित होता है इसी प्रकार ध्रौव्य अंश भी भेददृष्टिसे विदित होता है । द्रव्यार्थिक नयका आधार है अभेद और पर्यायार्थिक नयका आधार है भेद । और इस माध्यमसे पदार्थमें अनेक गुणोंकी सिद्धि भी पर्यायार्थिक दृष्टिसे कही जायगी । द्रव्यार्थिक दृष्टिसे नहीं । कुछ भी भेद किया जाय, अंशीमें कुछ भी अंश बताये जायें तो उन अंशोंका प्रतिपादन पर्यायार्थिक दृष्टिसे होता है । वस्तु है, जो है सो है । उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन अंश बताना और तीन अंशोंका समुदाय है इस प्रकारका प्रतिपादन करना पर्यायार्थिक दृष्टिसे सम्भव है । अतएव जैसे उत्पादव्यय पदार्थके अंश हैं उसी प्रकार ध्रौव्य भी पदार्थका अंश है ।

तद्भाव व्ययमिति वा ध्रौव्यं तथापि सम्यगयमर्थः ।
यः पूर्वं परिणामो भवति स पश्चात् स एव परिणामः ॥२०४॥

ध्रौव्यका द्वितीय प्रकारसे स्वरूप—ध्रौव्यका लक्षण यह भी बताया गया है कि तद्भावाव्ययं नित्यं अर्थात् पदार्थके भावका व्यय न होना सो ध्रौव्य है इसका भाव है कि वस्तुके भावका नाश नहीं होता । वस्तुमें जो स्वभाव है उसका नाश नहीं होता और वस्तुमें जो होना होता है, होता रहता है, उस होते रहनेका भी विनाश नहीं होता । ऐसी स्थितिमें वस्तुमें यह निरखा जा सकता है कि जो परिणाम पहिले था वही परिणाम पीछे भी है । भले ही भावकी अवस्थायें बदलती जायें पर भाव नहीं बदलता । भाव वहीका वही रहता है । तो वस्तुके भावका अथवा वस्तुत्वका स्वरूपका स्वभावका व्यय न होना इसका नाम है ध्रौव्य । वस्तुके स्वभावका व्यय न हो यह बात तब ही सम्भव है कि जब वस्तु परिणमती रहे । परिणमती रहे बिना कोई अस्तित्व ही नहीं रह सकता है । वस्तु स्वभाव शक्ति ये सब भिन्न चीजें नहीं हैं तब जैसे वस्तुको परिणमनशील कहते हैं किन्तु यह परिणमन अपनी जातिका उल्लंघन न करके ही होता है । कहीं जातिसे विपरीतरूप नहीं हो सकता । तब वस्तुके भावका व्यय न होना इसका नाम ध्रौव्य है और उससे यह बात ज्ञात होती है कि वस्तुका स्वभाव वस्तुमें शक्ति वहीकी वही सदा रहती है उसकी अवस्थाओंमें बदल होती रहती है । तो यों वस्तुमें उत्पादव्यय और ध्रौव्य ये तीनों एक साथ रहते हैं । उत्पादके समय ही व्यय और ध्रौव्य हैं, व्ययके समय ही उत्पाद और ध्रौव्य हैं और ध्रौव्यके समय ही उत्पाद एवं व्यय है । नवीन अवस्थाका उत्पन्न होना ही पुरानी अवस्थाका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यय कहलाता है पुरानी अवस्थाका व्ययहोना ही नवीन अवस्थाका उत्पाद कहलाता है और यह धारा एक सत्में चलती ही रहती है। तो ध्रौव्यका लक्षण वस्तुके भावका व्यय न होना युक्तिसंगत है।

पुष्पस्य यथा गन्धः परिणामः परिणमश्च गन्धगुणः।
नापरिणामी गन्धो न च निर्गन्धाद्धि गन्धवत्पुष्पम् ॥ २०५ ॥

ध्रौव्यस्वरूपके सुगम अवगमके लिये एक दृष्टान्त—ध्रौव्यका स्वरूप बतानेके लिए एक दृष्टांत दिया जा रहा है कि जिस प्रकार फूलका गंध परिणमन है और गंध गुण परिणमता रहता है, गंधशक्ति परिणामी है, तो इस परिणमनशीलता के कारण इस गंध शक्तिमें नाना प्रकारके व्यक्त गंधोंका विकास होता रहता है। तो नाना गंधोंका विकास होनेपर भी गंध सदैव रहता है। गंधशक्तिका ही तो वह सब परिणमन है, जितना कि विभिन्न गंध सिकसित हुआ है, ऐसा नहीं है कि पहिले पुष्प गंधरहित हों और पीछे गंधसहित हुए हों। गंधगुण परिणमनशील है तिसपर भी गुणगंध सदा पाया जाता है। उसका फूलमें कभी अभाव नहीं है। तो गंधगुणका कभी भी अभाव नहीं होता इसका नाम ध्रौव्य है और इसी बलपर कहा जाता है कि पुष्पमें जो गंधपरिणमन पहिले था वही पीछे भी रहता है। गंधगुणकी तरह सभी गुणोंकी बात समझना। जैसे आम्रफलमें पहिले हरा रूप था, अब पीला रूप हो गया तो हरी अवस्थाका व्यय होकर पीली अवस्थाका उत्पाद हुआ है तो वहाँ हरेका समूल नाश हुआ हो और पीलेका, किसी नवीनका उत्पाद हुआ हो, ऐसा नहीं है, किन्तु यही आधारभूत रूप गुण पहिले हरेरूपमें विकसित था अब पीले रूपमें विकसित हुआ है। रूप शक्तिका कभी अभाव न था। तो जो रूप शक्तिका कभी अभाव न रहा इसका नाम है ध्रौव्य और उस रूप शक्तिके जो विकास बने तो नवीन विकासका नाम है उत्पाद और पहिले विकासके व्ययका नाम है व्यय। तो अवस्थायें किसकी हैं? इसके उत्तरमें जो उसमें ध्रौव्यकी सिद्धि हुई है, इसीप्रकार चैतन्यपदार्थमें भी जैसे ज्ञानगुणके नाना परिणमन हैं अभी घटको जान रहे थे अब पटको जान रहे हैं तो जाननेके विकास में तो भेद हो गया। पहिले और रूप जानन था अब और रूप जानन है पर एक जाननका व्यय समूल व्यय नहीं है। एक जाननका उत्पाद कुछ नवीन जाननका उत्पाद नहीं है, किन्तु आधारभूत ज्ञानशक्ति है इस ही ज्ञानशक्तिका पहिले घट जाननरूप परिणमन था उस ही ज्ञानशक्तिका अब पट जाननरूप परिणमन हो गया तो अवस्थयें तो हो गयीं भिन्न भिन्न किन्तु उन अवस्थाओंमें अन्वयरूपसे जो गुणरहा वहगुण ध्रुव ही कहा जायगा। तो यों जैसे पदार्थमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटित होता है इसी प्रकार शक्तियोंमें भी उत्पादव्ययध्रौव्य घटित होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्रानित्यनिदानं ध्वंसोत्पादद्वयं एतस्तस्य ।
नित्यनिदानं ध्रुवमिति तत्त्रयमप्यंशभेदः स्यात् ॥ २०६ ॥

पदार्थमें नित्यत्व व अनित्यत्वका विचार—उत्पाद व्यय ध्रौव्य जो तीन अंश सत्त्वके बताये गए हैं उन अंशोंमें इस प्रकार विभाग किए जा सकते हैं कि ध्वंस और उत्पाद ये दो तो वस्तुकी अनित्यताके निदानभूत हैं और ध्रौव्य यह वस्तुकी नित्यताका निदान है। तो वस्तुमें उत्पाद व्यय हो रहे हैं, यह बात वस्तुके अनित्यत्व धर्मके कारण है अथवा उत्पादव्यय वस्तुकी अनित्यताका कारणभूत है। वस्तु कथंचित् अनित्य है अथवा यों भी कह सकते हैं कि चूंकि वस्तुमें प्रतिसमय नवीन उत्पाद और पूर्व व्यय होता रहता है। उससे यह सिद्ध है कि वस्तु अनित्य है। तो अनित्यतासे सम्बन्धित है उत्पाद और व्यय तथा ध्रौव्यसे सम्बन्धित है नित्यपना। वस्तु वहीका वही है। न किसी असत्का उत्पाद होता है न किसी सत्का विनाश होता है। अतएव वस्तु वहीका वही अनादि अनन्त शाश्वत् रहता है। यों वस्तु नित्य है। तो इस नित्यताका समर्थन ध्रौव्य अंश करता है। सो नित्यताके कारण ध्रौव्य है यह बात सिद्ध होती है। तो वस्तुमें निरखा जाय तो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों ही एक एक अंश रूपमें भिन्न-भिन्न हैं। कारण यह है कि वस्तु अंशी है अर्थात् पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है। पदार्थ न केवल उत्पाद स्वरूप है, न केवल व्यय स्वरूप है, न केवल ध्रौव्य स्वरूप है क्योंकि वस्तु सत् है और प्रत्येक सत् परिणामी होता है। परिणामके बिना सत् नहीं ठहर सकता। अतएव वस्तुको न सर्वथा नित्य कह सकते हैं न सर्वथा अनित्य कह सकते हैं। तो जैसे नित्यत्व और अनित्यत्व ये दो वस्तुके धर्म हैं इसी प्रकार उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों परस्पर भिन्न भिन्न हैं अर्थात् इनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। यद्यपि ये ऐसे भिन्न नहीं हैं कि उत्पाद किन्हीं प्रदेशोंमें हो, व्यय किन्हीं प्रदेशोंमें हो और ध्रौव्य किन्हीं अन्य प्रदेशोंमें हो। वहीका वही वस्तु उत्पादरूप है और उस ही समयमें वही वस्तु व्ययरूप ध्रौव्य रूप भी है। इसी प्रकार व्यय ध्रौव्य, उत्पाद इन तीनोंका परस्परमें अविनाभाव है और एक ही समयमें वस्तु रहता है किंतु इसका जो निजी स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टिसे देखा जाय तो ये तीनों परस्पर स्वरूपापेक्षया भिन्न हैं और वस्तुके अंश हैं। इनमें उत्पादव्यय अनित्यताका कारण है और ध्रौव्य नित्यताका कारण है। यों नित्यत्व और अनित्व धर्म कह लीजिये अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म कह लीजिये, पदार्थमें ये तीन अंश हैं और इस कारण वस्तु त्रितयात्मक है।

न च सर्वथा हि नित्यं किञ्चित्सत्त्वं गुणो न कश्चिदिति ।
तस्मादतिरिक्तौ द्वौ परिणतिमात्रौ व्ययोत्पादौ ॥ २०७ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकारकी शंकामें सत्त्व और उत्पादव्ययको भिन्न भिन्न मानकर नित्यत्व व अनित्यत्वकी पृथक पृथक व्यवस्था - यहाँ कोई शङ्काकार शङ्का करता है कि यों मानना चाहिए कि द्रव्यमें सत्त्व तो सर्वथा नित्य है। किसी पदार्थका अस्तित्व सदा रहता है इस कारणसे सत्त्वको तो नित्य मान लीजिए पर अन्य किसी गुणको नित्य नहीं कहा, क्योंकि अन्य गुणोंमें विकार विनाश परिणमन कभी कोई गुण रहता कभी नहीं रहता, आदिक बातें देखी जाती हैं। इस कारण पदार्थका सत्त्व तो नित्य है और बाकी गुण कोई नित्य नहीं हैं इसी कारण परिणति स्वरूप जो उत्पादव्यय है वह उस द्रव्यसे अतिरिक्त है, भिन्न है और ऐसा माननेसे ये दो बातें सिद्ध हो जाती हैं कि वस्तु नित्य है और अनित्य हैं। जब वस्तुका सत्त्व देखते हैं तब तो वस्तु नित्य हो जायगा और जब वस्तुका उत्पाद व्यय देखते हैं तो अनित्य हो जायगा। इसमें इतनी दृष्टि जरूर करना चाहिए कि उत्पादव्यय ये तो अनित्य है और सत्त्व नित्य है। इस तरह द्रव्यमें नित्यत्व और अनित्यत्वकी व्यवस्था बनाना चाहिए और अनित्यत्वकी व्याप्ति उत्पादव्ययके साथ और नित्यत्वकी व्याप्ति सत्त्वके साथ रखना चाहिए। शङ्काकारकी इस शङ्कामें यह आशय भरा हुआ है कि द्रव्यमें तो सत्त्व है और वही द्रव्यका स्वरूप है। सो द्रव्य नित्य है और उससे भिन्न है उत्पाद व्यय परिणति क्योंकि यह द्रव्यकी सत्ता नहीं रहती। तो अनित्य तो उत्पादव्यय ही रही, परिणति ही अनित्य रही। यों इस शङ्कामें परिणतिको और सत्त्वको भिन्न भिन्न सोचकर शङ्का उठाई गई है अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

सर्वं विप्रतिपन्नं भवति तथा सति गुणो न परिणामः।
नापि द्रव्यं न सदिति पृथक्त्वदेशानुषङ्गत्वात्‌ ॥ २०८ ॥

उक्त शङ्काके समाधानमें सत्त्वसे उत्पादव्ययको भिन्न माननेपर सत्, द्रव्य, गुण पर्याय सबकी असिद्धिका प्रसङ्ग - उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारकी शङ्कामें यह भाव आया है कि सत्त्व तो भिन्न चीज है और उत्पाद व्यय भिन्न चीज है। यों प्रदेशभेदकी कल्पना आयी, किन्तु इस प्रकारका प्रदेश भेद मानने से तो न गुण ही सिद्ध होंगे और न पर्याय ही सिद्ध होगी। न द्रव्य ही सिद्ध होगा, और न सत् ही सिद्ध होगा, क्योंकि जब सभी चीजें भिन्न-भिन्न स्वीकार करली गई हैं, सत्त्व भिन्न है, पर्याय भिन्न है. गुण भिन्न है, पर्याय भिन्न है, गुण भी यहाँ केवल सत्त्वका माना गया है। तो इस तरह ये सारी बातें भिन्न भिन्न माननेका अर्थ हुआ कि इनका आधारभूत प्रदेश जुदा है, सत्त्व अपनी जगह है, उत्पादव्यय अपनी जगहमें हैं, तो यों प्रदेशभेद जब मान लिया तो उत्पादव्यय किसका कौन परिणमा? उत्पाद व्यय तो निराधार रहा, उत्पादमें उत्पाद है। अब किसका उत्पाद, किस ढंगसे उत्पाद यह न बन सकेगा। और, जहाँ उत्पादव्यय दोनों ही नहीं है वहाँ वस्तु ही क्या है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपरिणामी कोई तत्त्व नहीं होता, द्रव्य भी कुछ न ठहरेगा और असत् ही क्या रहा? वस्तु क्या ? जिसका कोई व्यक्तरूप नहीं, जिसका उत्पादव्यय नहीं, परिणमन नहीं, उसका अस्तित्त्व क्या ? यों इन सबको भिन्न भिन्न स्वीकार करनेसे न तो द्रव्यकी सिद्धि है न सत्की सिद्धि है न गुणकी सिद्धि है और न पर्यायकी सिद्धि है। तब कुछ तत्त्व ही न रहा ? चिन्तन, विचार चर्चा किस बातकी ? यों उत्पादव्यय और सत्त्व को जुदा जुदा समझनेपर और सत्त्वकी नित्यताके साथ व्याप्ति और उत्पादव्ययकी अनित्यताके साथ व्याप्ति यों स्वतंत्रतया माननेपर समस्त तत्त्वोंका लोप हो जायगा। प्रदेशभेद मानकर द्रव्यसे भिन्न और पर्यायसे भिन्न मानते हुए नित्य और अनित्यकी कल्पनामें दूसरा भी एक दोष है, जिसका विवरण अब करते हैं।

अपि चैतद्दूषणमिह यन्नित्यं तद्धि नित्यमेव तथा।
यदनित्यं तदनित्यं नैकस्यानेक धर्मत्वम् ॥ २०६ ॥

उत्पादव्ययको सत्त्वसे सर्वथा भिन्न व पर्यायमात्र माननेमें अनिष्टापत्तिका दिग्दर्शन—उत्पादव्ययसे सर्वथा भिन्न पर्यायमात्र मानना और द्रव्यको उससे भिन्न सर्वथा नित्य मानना शङ्काकारके इस मंतव्यमें यह दूषण आता है कि फिर तो जब कि द्रव्य जुदे हैं, पर्याय जुदे हैं और द्रव्यको माना नित्य, पर्यायको माना अनित्य तो अर्थ यह होगा कि जो नित्य है वह सदा नित्य ही रहेगा, जो सदा अनित्य है वह सदा अनित्य ही रहेगा, क्योंकि अब बिल्कुल भिन्न भिन्न ही दो तत्त्व मान लिए, द्रव्य भिन्न हैं, पर्याय भिन्न है तो अब पर्यायको अनित्य मानें तो वह अनित्य ही अनित्य ठहरेगा उसमें नित्यत्वकी कोई गुंजाइस नहीं है। और जब द्रव्यको नित्य माना तो वह नित्य ही नित्य ठहरा उसमें कोई दृष्टि ऐसी नहीं लगायी जा सकती कि कथचित् द्रव्य अनित्य हो जाय, तो इसके मायने यह होगा कि जो नित्यत्व है वह सदा ही नित्य रहेगा और जो अनित्य है वह सदा ही अनित्य रहेगा। एक वस्तुमें अब अनेक धर्म नहीं हो सकते, क्योंकि द्रव्य पर्याय भिन्न भिन्न मान लिया। पदार्थ ही एक होता और वह गुण पर्यायात्मक माना जाता तो वहाँ एकमें अनेक धर्म लगाये जा सकते थे। किन्तु जब द्रव्य पर्याय स्वतंत्र स्वतंत्र भिन्न भिन्न, एक एक, अलग अलग हैं तो वहाँ एकके अनेक धर्म न हो सकेंगे। द्रव्यको जब अनेक धर्मात्मक माना जाता तो वहाँ कथंचित् नित्यपनेकी और कथंचित् अनित्यपनेकी व्यवस्था बन जाती, लेकिन अवस्था जब भिन्न मान ली गई, द्रव्यको और पर्यायकी तो अब वस्तुको एक एक धर्मरूप स्वीकार किया। तो सारी व्यवस्था यहाँ खतम हो जाती है। कोई वस्तु न रहेगा, कोई तत्त्व ही न रहेगा। यों तो सर्वथा शून्य ही हो जायगा। तो द्रव्य पर्यायको या उत्पादव्यय और सत्त्वको भिन्न भिन्न माननेपर अव्यवस्थाका दोष होता है और सकल शून्यताकी आपत्ति आती है। अब प्रदेश भेद माननेपर एक अन्तिम दोष और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बतला रहे हैं।

अपि चैकमिदं द्रव्यं गुणोयमेवेति पर्ययोऽयं स्यात्।
इति काल्पनिको भेदो न स्याद् द्रव्यान्तरत्ववन्नियमात् ॥२१०॥

उत्पाद व्ययको सत्त्वसे सर्वथा भिन्न माननेपर द्रव्य गुण पर्यायके भेद व्यवहारके लोपका प्रसङ्ग एवं शून्यताकी आपत्ति—सत्को और उत्पादव्ययको भिन्न भिन्न माननेमें द्रव्य गुण पर्यायकी कल्पना निर्मूल हो जाती है क्योंकि जब भिन्न भिन्न हो गए तो जैसे जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश आदिक द्रव्य भिन्न भिन्न हैं तो उनमें यह कल्पना तो नहीं की जा सकती कि जीव द्रव्य है, पुद्गल गुण है आकाश पर्याय है आदिक रूपसे। क्योंकि वे तो स्वतंत्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं। तो जो स्वतंत्र सत् हैं, भिन्न भिन्न हैं, उनसे द्रव्य, गुण, पर्यायकी परस्पर व्यवस्था नहीं बन सकती। तो ऐसे ही सत्त्व जुदा हो और उत्पाद व्यय जुदा मान लिया गया तो इसमें द्रव्य गुण पर्यायकी कल्पना न हुई तो ये जुदे जुदे पदार्थ मान लिए गए। सो केवल कल्पानमें कुछ भी मान लो, ये पदार्थ रह नहीं सकते। जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने द्रव्य गुण पर्याय सामान्य विशेष आदिकको भिन्न भिन्न माना है, स्वतंत्र स्वतंत्र पदार्थ माना है, और ऐसा माननेपर जब उनकी व्यवस्था न बन सकी तो एक समवाय नामका पदार्थ मानना पड़ा। तो जो वस्तुका यथार्थ स्वरूप है उसके विरुद्ध मान्यता होनेपर अनेक प्रकारसे मिथ्या धारणा बनाकर चलना पड़ता है। तो जब सत्त्व और उत्पाद व्यय भिन्न भिन्न मान लिए गए तो उसमें द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था नहीं बन सकती और इस व्यवस्थाके हुए बिना पदार्थका सत्त्व नहीं ठहर सकता, इस कारण शङ्काकार की यह शङ्का निर्मूल है। जो शङ्काकार ने माना था कि द्रव्यमें सत्त्व तो सर्वथा नित्य है और उस सत्त्वसे भिन्न परिणति मात्र उत्पादव्यय निराला है। उत्पादव्यय अनित्य है और सत्त्व नित्य है। इस प्रकारकी शङ्का बिल्कुल ही संगत नहीं बैठती।

ननु भवतु वस्तु नित्यं गुणाश्च नित्या भवन्तु वार्धिरिव।
भावाः कल्लोलादिवदुत्पन्नध्वंसिनो भवन्त्विति चेत् ॥२११॥

समुद्र और तरङ्गोंका दृष्टान्त देकर द्रव्य व गुणोंको नित्य तथा पर्यायोंको ही अनित्य सिद्ध करनेका शकाकारका प्रयास—शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि द्रव्य गुण तथा पर्यायोंको इस तरह समझ लेना चाहिए कि द्रव्य और गुण तो समुद्रकी तरह नित्य और पर्यायें तरंगोंकी तरह उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं, याने उत्पादव्ययध्रौव्य जो तीन अंश कहे गए हैं सो उत्पादव्यय तो पर्यायोंका होगा और ध्रौव्य द्रव्यका तथा गुणका होगा। सो जैसे समुद्रमें समुद्रकी दृष्टिसे वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्य है और तरंगोंकी दृष्टिसे अनित्य है तो वहाँ अनित्य तरंगें ही तो हुई, समुद्र अनित्य नहीं है। और समुद्र नित्य हुआ। वह अनित्य नहीं है, इसी प्रकार द्रव्य और गुण ये तो नित्य होंगे। इससे तो ध्रौव्य घटित होगा और पर्यायें अनित्य होंगी। पर्यायोंमें उत्पादव्ययध्रौव्य घटित होगा। ऐसा मान लेनेमें तो कोई दोष न होगा। फिर जो सुगम बात है जैसा कि लोगोंको स्पष्ट दिखता है ऐसा क्यों नहीं माना जाता ? अब इस शंकाके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतो दृष्टान्तः प्रकृतार्थस्यैव बाधको भवति।
अपि तदनुक्तस्यास्य प्रकृतविपक्षस्य साधकत्वाच्च ॥ २१२ ॥

शंकाकारके दिये हुए दृष्टान्तसे ही शंकाकारके मन्तव्यका खण्डन और सिद्धान्तका मण्डन—शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों ठीक नहीं है कि शंकाकारके कथनसे ही सिद्धान्तकी पुष्टि होती है और शंकाकार जो सिद्ध करना चाहता था उससे ही विरुद्ध बात सिद्ध होती है। शंकाकारका दृष्टान्त समुद्र और तरंगोंका था तो समुद्र और तरंगोंके दृष्टान्तसे तो शंकाकारके माने गए अर्थमें बाधा आती है उस हीके अभिप्रायसे विपक्ष अर्थकी सिद्धि होती है। तो यह दृष्टान्त शंकाकारके लिए स्वयं कुठाराघात करने वाला है। इससे तो सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। जो वचन स्वयं साध्यका बाधक हो अर्थात् उसके विपक्षको सिद्ध करने वाला हो वह दृष्टान्त उसके लिए असंगत है अथवा उस हीका बाधक है, खुद ही अपने दिए गए दृष्टान्तसे अपने ही मंतव्यका विरोध देखा जाता है। इस शंकाकारके द्वारा दिया गया उक्त दृष्टान्त ठीक नहीं हैं। किस प्रकारसे वह दृष्टान्त शंकाकारके विरुद्ध पड़ता है इस बातको अब नीचेकी गाथामें कहते हैं।

अर्थान्तरं हि न सतः परिणामेभ्यो गुणस्य कस्यापि।
एकत्वाज्जलधेरिव कलितस्य तरङ्गमालाभ्यः ॥ २१३ ॥

समुद्रसे तरङ्गोंकी अनर्थान्तरताकी भांति सत्से पर्यायोंकी अनर्थान्तरता— जैसे समुद्रकी तरंगे और समुद्र ये भिन्न भिन्न नहीं हैं, एक ही चीज हैं तो दृष्टान्तमें जो तरंग और समुद्र बताया गया है उस दृष्टान्तसे तो यह सिद्ध होता है कि सत् और उत्पादव्ययध्रौव्य ये भिन्न भिन्न नहीं हैं। अथवा द्रव्य गुण पर्यायें ये भिन्न भिन्न नहीं है। गुण पर्याय द्रव्यसे अलग रहती हो ऐसा नहीं है, किन्तु यह समुद्र ही तरंगोंसे डोलायमान हो रहा है। तो तरङ्ग मालाओंसे डोलायमान होने वाला समुद्र तरङ्गोंसे जुदा नहीं है अथवा समुद्रसे तरगें जुदी नहीं हैं, इसी प्रकार नवीन नवीन अवस्थाओंसे उत्पन्न होने वाला और पूर्व पूर्व अवस्थाओंके रूपमें व्यय होने वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ उन पर्यायोंसे भिन्न नहीं है। अथवा पदार्थसे वे पर्यायें भिन्न नहीं हैं। वही समुद्र जैसे उन तरङ्गों रूप है इसी प्रकार वही पदार्थ उस समयमें उन पर्यायोंरूप है। तो द्रव्यसे पर्यायें भिन्न नहीं हैं। इस बातको सिद्धकर देने वाला शंकाकारका दृष्टान्त है। तो शङ्काकार चाहता तो यह था कि यह सिद्ध किया जाय कि पदार्थमें जो द्रव्य है सो ही नित्य है पर्याय अनित्य हैं और यों पर्याय भिन्न चीज हैं, द्रव्य भिन्न चीज हैं, तो एक ही सत्त्वके उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीन अंश नहीं हो सकते, किन्तु पर्यायोंका धर्म उत्पादव्यय होगा और द्रव्यका धर्म ध्रौव्य होगा। यों भिन्नताके आधारपर जुदी जुदी बात सिद्ध करनेका शङ्काकारका मंतव्य था लेकिन शंकाकारके दिये गए दृष्टान्त द्वारा ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि जैसे तरंगें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं इसी प्रकार पर्यायें द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं। इसी बातको और स्पष्ट रूपसे बताते हैं।

किंतु य एव समुद्रस्तरङ्गमाला भवन्ति ता एव।
यस्मात्स्वयं स जलधिस्तरङ्गरूपेण परिणमति॥ २१४॥

तरङ्गमालाओंकी समुद्ररूपताकी तरह पर्यायमालाओंकी द्रव्यरूपता— वे तरङ्गमालायें लहर परम्परायें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं किंतु जो समुद्र है वह ही तरंग मालायें हैं क्योंकि स्वयं ही वह समुद्र तरङ्गरूप परिणामको धारण कर रहा है। यहाँ प्रसङ्गमें आ सकने योग्य एक रहस्य और भी समझिये। वायुका जोर होनेपर समुद्रमें लहरें उठती हैं तो देखनेमें यों आता है कि वायुके चलनेके निमित्तसे समुद्रमें लहरें हुई और यह बात ठीक भी है समुद्र लहरोंरूप हो रहा है। वायुके संचरणका निमित्त पाकर और जब वायुका संचरण समाप्त हो जाता है तब समुद्रकी तरंगें भी समाप्त हो जाती हैं। तो समुद्र निस्तरङ्ग हो जाता है। इस स्थितिमें दो बातोंपर ध्यान देना है। प्रथम तो यह कि यद्यपि वायुके संचरणके निमित्तसे समुद्र लहरोंरूप हुआ है, तिसपर भी वायुके परिणमनसे समुद्र लहरोंरूप नहीं हुआ, किंतु समुद्र अपने आपमें अपने ही परिणमनसे लहरोंरूप हुआ है। दूसरी बात यह समझना चाहिए कि जो लहरोंरूप समुद्र हुआ है वही समुद्र पश्चात् आदिक तरंग रहित हो जाता है। तो जो ही समुद्र पहिले तरङ्ग रूप परिणम रहा था वही समुद्र अब निष्तरङ्ग हो जाता है। यहाँ प्रकृत बात यह समझना है कि जब तरंगरूप समुद्र हुआ उस समय वे तरंगें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं, किंतु समुद्र ही उस रूपमें परिणम रहा था और जब वह निःतरंग हुआ तो कहीं वे तरंगें भाग नहीं गईं, निकल नहीं गईं। किंतु जो तरंगरूप परिणम रहा था वहीका वही अब निष्तरंग हो गया। तो समुद्रकी ही तो वे अवस्थायें हैं, समुद्रसे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार प्रत्येक सत् पदार्थमें प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमन होता रहता है। उन परिणमनोंमें विभाव परिणमन अनेक निमित्त सन्निधान होनेपर हुआ करते हैं तिसपर भी विभाव रूप परिणमा वही पदार्थ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्तकी परिणतिसे विभाव परिणमन नहीं होता है। दूसरी बात यह समझना चाहिए कि विभाव रूप परिणमन रहा हुआ पुद्गल जब विभाव, विकार रहित, अविकार रूप होता है तो वही पदार्थ जो पहिले विकार रूप परिणमन रहा था अब अविकार रूप परिणमन रहा है। वहाँ कोई दो भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं हैं। तो समुद्र और तरंगोंका जो दृष्टान्त है वह तो सिद्धान्तका ही पोषक बन गया अब उस दृष्टान्त से यही पुष्ट होता है कि जैसे तरंगे समुद्रसे भिन्न नहीं हैं इसी प्रकार पर्यायें भी द्रव्यसे पृथक नहीं है। समुद्र ही उस समग्र तरंगोंरूप परिणम रहा है। यों पदार्थ ही उस समग्र उस रूप परिणम रहा है। यों द्रव्य गुण पर्याय जैसे एक सत्रूप ही है यों ही उत्पादव्ययध्रौव्य एक सत् रूप ही है। यह प्रकृत बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। इसी बातको अब और स्पष्ट करते हैं।

तस्मात्स्वयमुत्पादः सदिति ध्रौव्यं व्ययोपि वा सदिति।
न सतोतिरिक्त एव हि व्युत्पादो वा व्ययोपि वा ध्रौव्यम् ।२१५।

सत्की स्वयं उत्पादरूपता, स्वय व्ययरूपता व स्वय ध्रौव्यरूपता तथा तीनोंकी सत्से अनतिरिक्तता उक्त दृष्टान्तसे और दृष्टान्त जिसके लिये दिया गया है उस दृष्टान्तमें सिद्धान्त घटित करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत् ही स्वयं उत्पाद है, सत् ही स्वयं व्यय है और सत् ही स्वयं ध्रौव्य है। सत्से भिन्न न कोई उत्पाद है न व्यय है, न ध्रौव्य है। जैसे कि उस समुद्र और तरंगोंके दृष्टान्तमें यह बात सिद्ध होती है कि तरंगें क्या हैं? समुद्र ही तरंगरूप है और जब निष्तरंग हुआ तो समुद्र ही निष्तरंग हुआ। जब समुद्रमें हल्की लहरें उठ रही हैं तो समुद्रही वह हल्की लहर है। जब बहुत लहरें होने लगती हैं तो समुद्र ही वह बड़ी लहर है और जब लहररहित हो जाता है तो समुद्र ही निष्तरंग हुआ है। इसी प्रकार जब जो भी पर्याय बनती है, जो ही उत्पाद होता है वह उत्पाद स्वयं सत् ही है। सत् न्यारा हो, उत्पाद न्यारा हो यह त्रिकाल भी सम्भव नहीं है। उत्पन्न किए हुए उत्पादमें क्या बात आई। वह क्या सत्से भिन्न है? क्या उत्पाद असत् रूप है? इसी प्रकार जो व्यय होता है, जो पर्याय विलीन होती है वह विलीनता, वह व्यय क्या सत्से निराला है? यदि तरंगरहित हो गया है समुद्र तो तरंगरहितपना क्या समुद्रसे निराला है? वह समुद्र तो निष्तरंग है। इसी प्रकार ध्रौव्यकी बात तो और सुगमतया समझमें आयगी। जैसे समुद्र पहिले भी वही था, अब भी वही है. कितनी ही उसमें अवस्थायें गुजरें वहीका वही है। इसी प्रकार सत् भी वहीका वही है। वह कहीं दूसरा नहीं बन गया! तो यों उस ही सत्को ध्रौव्य रूपमें निरखा जा रहा है यों सत् ही उत्पाद है, सत् ही स्वयं व्यय है, सत् ही ध्रौव्य है। सत्से भिन्न न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है। यों ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही अंश समुदित होकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत् कहलाते हैं । प्रकृतमें यह सिद्धान्त होता है ।

यदि वा शुद्धत्वनयान्नप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् ।
गुणश्च पर्यय इति वा न स्याच्च केवलं सदिति ॥ २१६ ॥

शुद्धनयमें केवल सत्का अवगम तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण, पर्याय का अभाव—उत्पाद, व्यय ध्रौव्य गुण, पर्यायके रहस्यको यदि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय तो वहाँ भेद कुछ विदित ही नहीं होते । भेद विकल्प रहित शुद्ध नयसे न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है, न गुण है, न पर्याय है इस आशयमें तो केवल सन्मात्र ही वस्तु है । वस्तुका समग्र सहज स्वरूप जो है वह अद्वैत मात्र है । वह स्वयं कैसा है, इसको समझानेके लिए व्यवहारनयसे उसके भेद किए जाते हैं । यह भेदीकरण एक पद्धतिसे है और आर्ष हैं फिर भी पदार्थमें ऐसे अंश पड़े हों खण्ड हों सो बात नहीं । वस्तुको समझाने के लिये यथानुरूप भेदव्यवहार किया गया है । पदार्थ तो परिपूर्ण अपने सत्त्वमात्र है । तो शुद्धनयकी दृष्टिमें उत्पाद आदिक अंश हैं ही नहीं तो वस्तु स्वरूपमें जो भेद ही नहीं पड़ा है उसको इतना बढ़ा देना कि उत्पाद व्यय स्वतंत्र हैं और सत्त्व स्वतंत्र है, सत्त्वसे भिन्न उत्पादव्यय है, सत्त्व नित्य है उत्पाद व्यय अनित्य है, इस प्रकारकी बातें करना तो बिल्कुल ही बेहूदी बातें हैं । हाँ थोड़ा भेद करके क्योंकि समझानेके क्षेत्रमें भेदीकरणके माध्यमसे ही पार पाया जा सकता है । तो प्रयोजनवश उस निर्विकल्प अखण्ड पदार्थमें भेद करनेके बाद भी यह कहना आवश्यक है कि यद्यपि भेद दृष्टिसे गुण पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्य यह भेद किया गया है, तथापि यह सब वस्तुसे भिन्न नहीं है, इस हीका नाम वस्तु है । अभेद दृष्टिसे वस्तु नाम है भेद दृष्टिसे गुण पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्य यह नाम हो जाता है । तो परमार्थत: उत्पादव्यय आदिक अंशोंकी वस्तुसे, सत्त्वसे पृथकता नहीं है, किंतु वे ही समस्त गुण, पर्यायें ही, उत्पादव्ययध्रौव्य ही सत् कहलाता है ।

अयमर्थो यदि भेदः स्यादुत्मज्जति तदा हि तत् त्रितयम् ।
अपि तत्त्रितयं निमज्जति यदा निमज्जति स मूलतो भेदः ।२१७

भेदके उन्मज्जनमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका उत्थान - उपर्युक्त समस्त कथनका सारांश यह है कि यदि भेददृष्टि की जानी है तब तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही सतके अंशरूपमें विदित होते हैं, किंतु मूलसे भेदपद्धतिको ही दूर कर दिया जाय तब ही ये तीनों ही सन्मात्र वस्तुमें लीन हो जाते हैं । यह उन्मज्जन निमज्जन अर्थात् उठना और डूबना, यह नय दृष्टिसे हो रहा है । जब भेद विकल्प सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाता है तो प्रतीत होता है कि वही सत उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणमता है, क्योंकि द्रव्य तो वही है। अब उस द्रव्यको भेद कल्पना करके निरखा जा रहा है। तो भेददृष्टिसे निरखनेपर व्यक्तरूपमें पहिले तो पर्यायोंका ज्ञान होता है, उन परिणमनोंको निरखकर और परिणमनोंमें बुद्धिकृत भेद डालकर फिर यह विदित होता है कि चूंकि इतना परिणमन है तो इतने प्रकारकी इस द्रव्यमें शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्तिका एक एक परिणमन है। यों शक्तियोंका अनुमान करके गुण विदित किए जाते हैं। यों भेद दृष्टिमें पर्याय और गुण ये नजर आये। पर्यायका स्वरूप है उत्पादव्यय। नवीन नवीन उत्पाद होना यही पूर्व पूर्वका व्यय कहलाता है। पदार्थोंमें यह धारा अनवरतरूपसे चलती आ रही है कि प्रतिसमय नवीन नवीन पर्याय उत्पन्न होती जाती है। तो जहाँ पर्यायको देखा वहाँ उत्पाद व्यय समझमें आया और जो शक्ति निरखी गई वह ध्रुव है। इस तरह विदित हुआ, यों उत्पादव्ययध्रौव्य यह भेद विकल्प सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके आशयमें है।

भेदके निमज्जनमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका निमज्जन—जब भेदविकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे निरखते हैं तो वह सत् केवल सन्मात्र विदित होता है। इसी दृष्टिमें इस ग्रन्थकी ८ वीं गाथामें तत्त्वका स्वरूप कहा गया है। तत्त्व सन्मात्र है जो सन्मात्र है, सहजस्वरूप है वह अपने ही सहाय है और अभेदरूप है अतएव अनादि अनन्त है। उसमें किसी भी पर वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। यों तत्त्वका स्वरूप है। उस ही शुद्ध नयसे कहे गए तत्त्व स्वरूपका विवरण करनेके लिए आगे बढ़ते हैं तो ये सब भेद कल्पनायें करके ही आगे बढ़ते हैं। तो भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध नयका उत्पाद व्ययध्रौव्य अंश है। और हैं वे तीनों एक सत्स्वरूप, पर निरपेक्ष शुद्धनयमें वस्तु सन्मात्र ही है। इस विवरणसे यह विदित कर लेना चाहिए कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों अंश सत्से भिन्न नहीं हैं किंतु ये तीनों ही एक सत कहलाते हैं। जब एक सत् शब्दसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ—उत्पादव्ययध्रौव्यमय। और जब उत्पादव्ययध्रौव्य नामसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ-उत्पादव्ययध्रौव्यमय और जब उत्पादव्ययधौव्य नामसे कहा गया तो उसका भी अर्थ यही हुआ—एक सन्मात्र। तो यों सत्त्वसे उत्पादव्ययधौव्य भिन्न नहीं है। समुद्र और तरंगोंके दृष्टांतसे भी यही स्पष्ट होता है कि जैसे वे तरंगें समुद्रसे भिन्न नहीं हैं किंतु वे तरंगमालायें ही समुद्र हैं इसी प्रकार उत्पादव्ययधौव्य ये तीनों सत्से अलग नहीं हैं किंतु वे तीनों ही एक सत्रूप कहलाते हैं।

ननु चोत्पादध्वंसौ द्वावप्यंशात्मकौ भवेतां हि।
ध्रौव्यं त्रिकालविषयं तत्कथमंशात्मकं भवेदिति चेत् ॥ २१८ ॥

ध्रौव्यकी अंशात्मकताके विषयमें शंकाकारकी शंका—शङ्काकार कहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि उत्पादव्यय ये दोनों ही अंश कहाये द्रव्यके यह तो माना जा सकता है, क्योंकि ये सदा नहीं रहते। कभी उत्पाद है, कभी व्यय है, कभी नवीन उत्पादव्यय है, तो यह त्रुटित हो जानेके कारण अंशरूप है, यह बात स्पष्ट समझमें आती है। लेकिन ध्रौव्य तो वस्तुमें सदा रहता है और जो तन्मयतासे निरन्तर रहा करे उसे अंश कहा जा सकता है। जैसे जीवमें चैतन्य स्वरूप सदा रहता है तो चैतन्यको जीवका अंश तो नहीं कहा जा सकता। चैतन्य स्वरूप है, जो जीव है सो चैतन्य है, जो चैतन्य है, सो चैतन्य है, जो चैतन्य है सो जीव है। तो जो सदा निरन्तर रहता है उसे अंश कहा जायगा। ध्रौव्य भी वस्तुमें सदा रहने वाला तत्त्व है। उसके ध्रौव्यको अंशरूप क्यों कह दिया गया? और, एकाग्रक सीधा ऐसा लौकिकजनोंको भी विदित होता रहता है कि पदार्थमें देखो अमुक पर्याय उत्पन्न हुई, अब वह नष्ट हो गयी। उत्पादव्यय उन पर्यायोंमें चलता रहता है यह बात समस्त लौकिकजनोंसे भी विदित है। तो उनको अंशात्मक अंश कह दिया जाय वह तो युक्त होगा लेकिन ध्रौव्य तत्त्वको वस्तुका अंश नहीं कहा जा सकता। उसे कैसे अंश कह दिया गया? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

नैवं यतस्त्रयांशाः स्वयं सदेवेति वस्तुतो न सतः।
नैवार्थान्तरवदिदं प्रत्येकमनेकमिह सदिति ॥ २१६ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंको स्वयं सत्स्वरूप समझ लेनेपर उक्त शंकाका त्वरित समाधान शङ्काकारकी शङ्का यह थी कि उत्पादव्ययध्रौव्यमेंसे उत्पादव्ययको तो अंश मान लीजिए किन्तु ध्रौव्यको वस्तु अंश न कहा जाना चाहिए, क्योंकि वस्तु ध्रौव्यमय है। ध्रौव्य वस्तुमें शाश्वत रहता है। शङ्काकारके इस आशयमें प्रथम भूल यह है कि यह समझ रखा शङ्काकारने कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये सत्के अंश हैं किन्तु ये तीनों ही सत्के अंश नहीं हैं। स्वयं ही सत् एन प्रत्येक अंशोंरूप है। भूल में यदि यह बात समझली गई होती तो इस शङ्काका अवसर न आता। सिद्धान्त यह है कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही अंश स्वयं सत् स्वरूप है। किसी एक सत् पदार्थके ये अंश हुए हों ऐसा नहीं है और न पदार्थान्तरकी तरह ही ये स्वतत्र अंशरूप हैं किंतु स्वयं ही सत् प्रत्येक अंशरूप है। जब इस सत्को उत्पाद परिणमनरूपसे देखा जाता है तो यह सत् स्वयं उत्पादरूप है। इसी सत्को जब व्ययरूपमें निरखा जाता है तो यही सत् स्वयं व्ययरूप है और यही सत् जब ध्रौव्यरूपमें निरखा जाता है तो यही स्वयं ध्रौव्यरूप है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही सत्के उस प्रकारसे अंश नहीं हैं, जिस प्रकार वृक्षके फल फूल आदिक कहे जाते हैं। वृक्ष तो उस पूरे बड़े समस्त पेड़का नाम है और फल उसके एक देशमें पड़ा हुआ है। तो फल वृक्षका अंश है, फूल वृक्षका अंश है, इस तरह सत् कोई एक विशाल तत्त्व हो अलग और उसमें थोडे थोडे किन्हीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रदेशोंमें किन्हीं जगहोंमें कहीं कहीं उत्पादव्यय पडे हुए हों ऐसा नहीं है, किन्तु वह सब स्वयं ही समग्र सत् है पर्यायार्थिक दृष्टिमें वही सत् उत्पादरूप है और व्ययरूप है तो वही समग्र पूर्ण सत् द्रव्यार्थिक दृष्टिमें ध्रौव्यरूप है। ये उत्पादव्ययध्रौव्यमें सत्के कोई अंश एक थोड़ी थोड़ी जगहमें रहने वाले हों ऐसा नहीं है। स्वयं वह समग्र सत् ही उत्पादव्ययध्रौव्य रूप हैं।

उदाहरण पूर्वक सत्की उत्पादव्ययध्रौव्यमयताका समर्थन— जैसे किसी जीवको एक मनुष्यरूपमें देखा, वह पहिले पशुरूपमें था अब उस जीवको मनुष्यरूपमें देख रहे हैं तो जीवका कोई एक हिस्सा मनुष्यरूप हो, ऐसा नहीं है। जैसे कि वृक्षका कोई एक हिस्सा फलरूप है फूल रूप है यों नहीं है, किन्तु वह समग्र जीव ही इस भवमें मनुष्यरूप है और उस जीवमें जो पशु पर्यायका व्यय हुआ है वह भी पूर्णरूपमें व्यय हुआ है। इतना होनेपर भी जब हम उस जीवकी ध्रुवतापर दृष्टि देते हैं कि जीव तो वही है ना, जो पहिले पशु पर्यायमें था, अब मनुष्य पर्यायमें है, तो उस ही जीवकी ओर जब हम दृष्टि देते हैं तो वह ध्रुवरूप विदित हुआ। तो समग्र ही जीव उत्पादव्यय और ध्रौव्यरूप विदित होते हैं। जैसे समुद्रकी तरंगें वे समुद्रके अंशरूप विदित तो होती हैं किन्तु समुद्र फिर क्या रहा ? तो तरंग मालायें ही तो समुद्र हैं। तो यों द्रव्यमें कालकी अपेक्षासे भले ही अंश हों लेकिन परमार्थतः उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो ही सत् स्वरूप कहलाते हैं।

तत्रैतदुदाहरणं यदुत्पादेन लक्ष्यमाणं सत् ।
उत्पादेन परिणतं केवलमुत्पादमात्रमिह वस्तु ॥ २२० ॥

उत्पादरूपसे लक्ष्यमाण सत्की उत्पादमात्रताका दर्शन—प्रसंग यह चल रहा है कि यह सिद्धान्त है ना कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है तो इस सम्बन्धमें शंकाकार यह कह रहा था कि यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि सत् तो ध्रुव है और उत्पादव्यय अनित्य है। तो सत् ही समग्र है ऐसा नहीं, किन्तु जो उसमें ध्रौव्य अंश है वह तो सत्त्व है और जो उत्पादव्यय है वह सत्त्वका अंश है और अनित्य है, सत्त्वसे न्यारा है। इस शङ्काके उत्तरमें बताया था कि उत्पादव्यय सत्से निराला है और अंश रूप है यह कथन तो दूर रहो, किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों ही सत्के अंश नहीं, किंतु सत् इन तीनोंरूप है। इस सम्बन्धमें कुछ उदाहरण भी दिए गए थे। जैसे समुद्रकी लहरें हैं तो लहरें समुद्रसे प्रथक हों, अंश हों सो बात नहीं, किन्तु उन लहर मालाओं का ही नाम समुद्र है। समुद्रसे वे पृथक नहीं हैं ऐसे ही सत् उत्पादमय है, व्यय स्वरूप है और ध्रौव्यरूप है। ये तीनों कहा तो वही अर्थ है सत् कहा तो ये तीनों हैं, यह अर्थ है। उत्पादव्ययध्रौव्य तीनोंका ही नाम एक सत् कहलाता है। तो जब उस ही सत्को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पादव्ययके रूपसे लक्ष्यमें लिया जाता है तो वह सत् उत्पादरूप है, उस ही सत्को जब व्ययके रूपमें देखा जाता है तो वही सत् व्यय स्वरूप है। और, ध्रौव्यके रूपको देखनेपर वही सत् ध्रौव्यरूप है जब कभी मिट्टीके लोंधेसे घड़ा बना तो घड़ा बननेकी स्थितिमें घड़ेकी मुख्यतासे जब उस वस्तुको देखते हैं तो वह वस्तु घड़ारूप है। वहाँ यद्यपि किसी दृष्टिसे ऐसा कह सकते कि घड़ा तो पर्याय है और उसमें जो मिट्टी है वह सत् है और ध्रुव है, लेकिन जब हम उत्पाद दृष्टिसे देख रहे हैं तो वहाँ उस उत्पादसे निराला उस पर्यायसे निराला कोई सत् विदित नहीं होता, क्योंकि लक्ष्यमें लिया गया है उत्पाद। तो वही सत् उत्पादरूप परिणत होता है, तो कह सकेंगे कि वह केवल उत्पादमात्र है।

सत्की परिणामिता होनेके कारण वस्तुमें स्वयं सर्ग संहार स्थितिकी उपपत्ति - सत परिणामी होता है, यह एक सिद्धान्त है। यदि परिणामी न माना जाय तो सत नहीं रह सकता। कोई सत हो और परिणमन न किया करे, उसमें कुछ भी हानि वृद्धि न हो, अवस्थासे अवस्थान्तर न हो, उसका कोई व्यक्त रूप न हो तब वह सत रहा क्या? सतका लक्षण ही है —परिणामिता! उसका कोई व्यक्तरूप रहना। तो अनवस्था माने बिना सत नहीं रह सकता। यही कारण है कि जिन दार्शनिकोंने सत भी मान लिया किन्तु अपरिणामी माना, तो उसकी सिद्धि न हो सकने से फिर अन्यका सहयोग मानना पड़ा। जैसे ब्रह्म की सिद्धि करनेके लिये प्रकृतिको साथ लेना पड़ा और वस्तु तो स्वयं उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है त्रिदेवतामय है। जिस सृष्टि संहारस्थितिको सिद्ध करनेके लिए कुछ लोगोंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऐसे तीन देवताओंकी कल्पना की है। वस्तु है और वह नष्ट होती है, उसमें नई नई अवस्थायें बनती हैं। तो जब तीन काम निरखे जा रहे हैं नई सृष्टि बनती, पुरानी मिट जाती और चीजका बना रहना। तो वस्तुमें ही ऐसा स्वभाव है इसे न जानने वाले लोग हैरान हो रहे हैं कि आखिर यह कैसे हो रहा है। नई सृष्टि कैसे बन रही है? पुरानी सृष्टि कैसे मिट रही है? तो कुछ न दीखा तो देवताओंकी कल्पना की कि कोई ब्रह्मा देवता है जो सृष्टि बनाता है, कोई महेश देवता है जो संहार करता है और कोई विष्णु देवता है जो इन सभी चीजोंको बनाये रहता है। पर वस्तुमें ही अगर यह स्वभाव न हो तो मनुष्य अथवा देवता कोई भी यह बात कर न सकेगा। वस्तुको कोई परिणमा भी दे, भगवान होकर या सामान्य कोई पुरुष तो यह तो बताओ कि उस वस्तुमें उस रूप परिणमनेकी कला है या नहीं? यदि नहीं है वस्तुमें परिणमनेकी कला तो किसी भी प्रकार वह परिणमन न हो सकेगा। यदि वस्तुमें परिणमनकी कला है तो परिणमा वह पदार्थ ही। परिणमनेमें वह स्वतंत्र रहा। दूसरा कोई निमित्त मात्र मान लो। यह विषय फिर दूसरा हो जायगा। तो वस्तुमें ही स्वयं उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी कला पड़ी हुई है। तो वही पदार्थ जब उत्पादरूपसे देखा जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तो वह उत्पादमय है। वही पदार्थ जब व्ययरूपसे निरखा जायगा तो व्ययमय है। यह कोई भिन्न तत्त्व नहीं है जिससे कि यह व्यवस्था बनाई जाय कि जो सत्व है सो सत्त्व है सो तो ध्रौव्य है और उत्पाद व्यय है, जो पर्याय है वह उत्पाद व्ययरूप है। यों पर्याय निराला हो, सत निराला हो, ऐसी बात नहीं है, वस्तु वही है। उसको नवीन अवस्थाके रूपमें देखा तो वह उत्पादव्यय प्रतीत हुआ। जब पुरानी अवस्थाके व्ययरूपमें देखा तो वह व्ययरूप प्रतीत हुआ। उत्पादव्यय सतसे निराला नहीं है।

यदि वा व्ययेन नियतं केवलमिह सदिति लक्ष्यमाणं स्यात्।
व्ययपरिणतं व सदिति व्ययमात्रं किल कथं हि तन्न स्यात्।२२१

व्ययरूपसे लक्ष्यमाण सत्‌की व्ययमात्रताका दर्शन जैसे कि उत्पादका लक्षण बनाया था तो सत केवल उत्पादमात्र दीखा था, इसी प्रकार जब सत केवल व्ययका लक्ष्य बनाया जाता है, व्ययके रूपसे निरखते हैं तो वहाँ सत केवल व्ययमात्र ही है. दृष्टा हमेशा किसी एक धर्मको निरखता है। दृष्टामें इतनी सामर्थ्य होती है कि वह सर्व दर्शन किए हुए होता है, पर दृष्टि केवल एक वस्तुको निरखनेवाली होती है, दृष्टा और दृष्टिमें यही भेद है। दृष्टा परिपूर्ण होता है, पर दृष्टि एक ही तत्त्वको निरखने वाली होती है। तो जब सतको केवल व्ययरूपसे देखा तो दीखा कि सत व्ययमात्र है और इनका प्रभाव भी अलग अलग होता है। जैसे तीन पुरुष सर्राफके यहां सोना खरीदने चले तो एकको लेना था मान लो अभिषेकके लिए स्वर्णकलश, एकको लेना था स्वर्णमुकुट और एकको लेना था स्वर्ण। सुनारके यहाँ कलशियाँ बहुत दिनोंसे पड़ी हुई थीं बिकती न थीं। तो सोचा कि इनका मुकुट बना देंगे तो जल्दी बिक जायगा। तो कलशियाँ तोड़कर मुकुट बना रहा था। वहाँ ये तीनों पुरुष पहुंचे। तो जिसे कलश लेना था वह उस घटनाको देखकर दुखी तो हुआ किन्तु दृष्टि की बात बताते हैं कि उसे केवल कलश व्यय ही दिख रहा है। उस समय उसकी दृष्टि मुकुटपर नहीं है इसलिए उसे वहां स्वर्णमुकुट नहीं दिख रहा, किंतु कलशियोंका व्यय रूप दिखता है, क्योंकि व्ययकी दृष्टि बनाया। तो इसी प्रकार कोई पुरुष जब व्ययका लक्ष्य बनाकर वस्तुको देखता है तो उसे व्ययमात्र वह पदार्थ नजर आता है। जैसे किसी पुरुषका कोई इष्ट गुजर गया जिससे अधिक प्रीति थी तो इष्टके गुजर जानेपर उसे वह व्ययमात्र ही दीखता, सारा लोक शून्य शून्य सा नजर आता। सब कुछ सामने है, मगर जो सामने है वह उसकी निगाहमें नहीं। उसकी निगाहमें अभाव है, व्यय है शून्य है। तो दृष्टि उसकी बनी ना! इस तरह तो उसे सारा जगत शून्य दीखा। इसी प्रकार किसी पदार्थके व्ययकी दृष्टि हुई तो उसे उस पर्यायका व्ययरूप ही सत नजर आ रहा है। उत्पाद उसकी नजरमें नहीं है। इससे विदित होता है कि उत्पादव्यय सतसे निराला नहीं है, क्योंकि जैसे उत्पादकी दृष्टि कर रहे थे तो उसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पादव्यय सत दिख रहा, इसी प्रकार व्ययका लक्ष्य करके जो सतको निरख रहा है उसे सत व्ययमात्र दिखता है।

ध्रौव्येण परिणतं सद्यदि वा ध्रौव्येण लक्ष्यमाणं स्यात् ।
उत्पादव्ययवदिदं स्यादिति तद् ध्रौव्यमात्रं सत् ॥ २२२ ॥

ध्रौव्यरूपसे लक्ष्यमाण सत्की ध्रौव्यमात्रताका दर्शन जब सत् ध्रौव्य रूपसे देखा जा रहा हो तो सत् ध्रौव्य परिणामको धारण कर रहा है। इस द्रष्टा पुरुषने ध्रौव्यका लक्ष्य बनाया तो सत् वहाँ उत्पादव्ययकी तरह ध्रौव्यमात्र नजर आ रहा है। यह बात जब वस्तुके अन्तः स्वरूपपर दृष्टि देकर देखी जाय तो सुगमतया विदित होता, जैसे उस घडेमें घड़ा और पिण्डका व्यय इसपर दृष्टि न रखकर मात्र मिट्टीपर दृष्टि रख रहा है तो उसे सब कुछ मिट्टीरूप नजर आता है। सब ध्रुव नजर आता है। जैसे कि वह तीसरा पुरुष जो स्वर्ण खरीदने बाजार गया था तो कलशियाँ टूटकर मुकुट बन रहा था पर उसे हर्ष विषाद कुछ न था। कलशियाँ रहती तो खरीदता मुकुट बना तो खरीदता और उसे हर अवस्थाओंमें केवल सोना ही दिख रहा है। कलशियाँ होती तो उसे कलशियां न दिखती सोना दिखता। उसको खरीदते समय न कलशियोंकी बनवाई देता, बल्कि कलशियोंमें जो सोनेका ही मैल लगा होता उसे काटकर बाकी दाम देने पड़ते। तो जैसे स्वर्ण चाहने वालेको उन सब अवस्थाओं में स्वर्ण ही नजर आता है इसी प्रकार ध्रुवपर दृष्टि देने वालेको सर्व सतोंमें केवल ध्रौव्य ही दृष्टिगत होता है। तो जब किसी द्रष्टाने इस सत्को ध्रौव्यरूपसे तका तो उसे सत् ध्रौव्यमात्र प्रतीत होता है। ये जो अभी उत्पादव्यय ध्रौव्यमयताके सम्बन्धमें श्लोक कहा उनमें यह निषेध किया गया है कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्से भिन्न है इसका निषेध है, अर्थात् ये तीनों सत्से भिन्न नहीं हैं सत्के कोई एक एक भाग भी नहीं हैं। जैसे वृक्षके हिस्से फल फूल पत्ते आदिक हैं उन्हें वृक्षका एक एक अंग अथवा अंश कह सकते हैं, क्योंकि वृक्ष है समूचा और फल है जरा सी जगहमें। पत्ते, फल कहीं हैं कहीं नहीं हैं। सब वृक्ष फूलसे निराले हैं, फलसे निराले हैं इस कारण फल फूलको वृक्षके अंश कहा जा सकता है, किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य सत्के अंश नहीं कहे जा सकते। ऐसा अंश नहीं है कि उस सत् पदार्थमें किन्हीं जगहोंमें उत्पाद पड़ा हो, किन्हीमें व्यय और किन्हीं प्रदेशोंमें ध्रौव्य। सारेका सारा ही सत् समस्त प्रदेश उत्पाद की दृष्टिमें उत्पादव्यय हैं, व्ययकी दृष्टिमें व्ययमय है, ध्रौव्यकी दृष्टिमें ध्रौव्यमय है।

उदाहरण पूर्वक समग्र सत्की सदा उत्पादव्ययध्रौव्यरूपताका दिग्दर्शन जैसे कोई जीव पहिले मनुष्य था। अब मरकर देव बन गया। तो जब देव बन गया तो तीनों बातें वहाँ घटित होती हैं ना। देव हुआ, मनुष्य मिटा, जीव बराबर रहा तो उस जीवमें ये तीनों अंश देवका होना, मनुष्यका मिटना और जीवका बना रहना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या उस जीवमें ये अलग-अलग पड़े हुए हैं ? जिस समय देव हैं उस समय वह सारा ही जीव देव स्वरूप है । देव बना, मनुष्य मिटा तो वह सारा ही जीव मनुष्य मिटने रूप है । और जब पर्यायोंसे दृष्टि हटाकर केवल जीवत्वपर दृष्टि दे रहे हों तो उस समय वह सारा जीव जीवस्वरूप है ध्रुव है, वहाँ ऐसा नहीं है कि देव हो जानेपर जीवके कुछ हिस्सेमें तो देव भरा हुआ हो और किन्हीं हिस्सोंमें मनुष्य भरा हो और किन्हीं हिस्सोंमें ध्रुव पड़ा हो । वह तो परिपूर्ण एक ही पदार्थ है एक ही उत्पादके रूपमें उत्पादरूप दिख रहा, व्ययकी दृष्टिमें व्ययरूप और ध्रौव्यकी दृष्टिमें व्ययरूप दिख रहा । तो सत् त्रियात्मक है । ये तीनों सत्के अंश नहीं हैं । जो सूत्रजीमें कहा है उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् उस सत्का अर्थ धनयुक्त जैसा अर्थ न लेना क्योंकि धन जुदा है और धनी पुरुष जुदा है । यह तन्मयता युक्तपनमें है सत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, न कि उत्पादव्ययध्रौव्यसे सहित है । भिन्न चीज नहीं है किन्तु सतका स्वरूप ही इस रूप है कि वह उत्पादरूप हो व्ययरूप हो, ध्रौव्यरूप हो यही कारण है कि प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक समयमें त्रियात्मक रहता है । जैसे मिट्टीका घड़ा बना तो वही समय घडेका उत्पादरूप है, उसी समय पिण्डका व्ययरूप है और उसी समय वह मिट्टीमय है तो उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीन स्वरूप ही सत है । सत वाला कहकर शङ्काकारने उसे नित्य कहा और उत्पाद व्यय वाला तककर उसे अनित्य कहा यह युक्तिसंगत नहीं है ।

संदृष्टिर्मृद्द्रव्यं सता घटेनेह लक्ष्यमाणं सत् ।
केवलमिह घटमात्रमसता पिण्डेन पिण्डमात्रं स्यात् ॥ २२३ ॥

सत्की कथंचित् उत्पादमात्रता व व्ययमात्रता—उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंमय ही सत् है, इस बातको सिद्ध करनेके लिए अब लौकिक दृष्टान्त देते हैं । जैसे कि मिट्टी जब घटरूपसे लक्ष्यमाण होती है उस समय वह घटमात्र है । घटरूपसे निरखी गयी वह मृतिका घटमात्र ही नजर आती है और जिस समय पिण्डरूपसे जो कि असत् है, अब पिण्डरूप नहीं रहा जिसका कि व्यय हो गया ऐसे असत् स्वरूप पिण्डके लक्ष्यसे जब उस ही वस्तुको देखा जाता है तब वह वस्तु व्ययरूपमें पिण्डमात्र है । यों जिस तरह यहाँ लोकमें निरखा जारहा है जिसमें कि जरा भी असत्यताकी बात नहीं मालूम होती है । मिट्टी ही घट पर्यायसे लक्ष्यमान होती हुई घटमात्र नजर आ रही है, वहाँ अन्य कोई धर्म की कल्पना नहीं है और वही पिण्डका व्यय हो गया, तो जिसका व्यय हो गया उसरूपसे जब देखा जा रहा है अर्थात पिण्ड व्ययरूपसे देखा जारहा तब वहाँ पिण्ड व्ययमात्र घट नजर आता है, इसी प्रकार प्रत्येक सत को जब उत्पादके रूपसे लक्ष्यमाण किया जाता है तब वह सत उत्पादमात्र है और जब उस ही सतका व्ययरूपसे लक्ष्यमाण किया जाता है तब वही सत व्ययमात्र है । उत्पादव्ययका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टान्त बताकर अब ध्रौव्यके लिए दृष्टान्त कहते हैं।

यदि वा तु लक्ष्यमाणं केवलमिह मृच्च मृत्तिकात्त्वेन।
एवं चैकस्य सतो व्युत्पादादित्रयश्च तत्रांशाः ॥ २२४ ॥

सत्‌की ध्रौव्यमात्रताके दर्शनकी दृष्टि—जब वही मिट्टी केवल मिट्टी रूपसे निरखी जा रही है तो वह केवल मिट्टीमात्र है। जैसे कि जिस पुरुषको स्वर्ण दरकार थी वह बाजारमें गया तो चाहे वह स्वर्ण किसी पर्यायमें हो, उसकी पर्यायकी ओर दृष्टि नहीं है. क्योंकि उसे तो स्वर्ण ही स्वर्ण नजर आता है। इसी कारण जैसे आभूषणमें टाँका लगा है उसे तजकर केवल स्वर्णको देखता है ऐसे ही पिण्ड था, अब घड़ा हुआ और घड़ेका व्यय होकर कपाल बन गया। सभी स्थितियोंमें यदि कोई मिट्टीरूपसे ही निरख रहा है तो सर्वत्र उसे मिट्टी ही विदित होती है, इसी प्रकार प्रत्येक सतमें किसी भी सतमें कोई दृष्टा जब ध्रौव्यरूप ही देख रहा है जो त्रिकाल रहता है, एक रूप रहता है, अंतः सहज स्वभावमें है इस ढंगसे जब निरख रहा है अर्थात ध्रौव्यसे लक्ष्यमाण जब सत हो रहा है तो उस समय उसकी दृष्टिमें सत ध्रौव्य-मात्र है, इस तरह एक ही वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है, ये तीन अंश हैं किन्तु ये तीनों अंश भिन्न भिन्न नहीं हैं। समुदायरूप नहीं हैं किन्तु वही सत समग्र उत्पादरूप से निरखा गया तो उत्पादमय है, व्ययरूपसे निरखा गया तो व्ययस्वरूप है, ध्रौव्यरूप से निरखा गया तो ध्रौव्यस्वरूप है। यों सत उत्पादव्ययध्रौव्यमय होता है।

न पुनः सतो हि सर्गः केनचिदंशैकभाशमात्रेण।
संहारो वा ध्रौव्यं वृक्षे फलपुष्पपत्रवन्न स्यात् ॥ २२५ ॥

सत्‌के अंश एक भागमात्ररूपसे उत्पादव्ययध्रौव्यकी अमान्यता-शंकाका की वह शंका इस आधारपर हुई थी कि उसने यह मान रखा था कि जैसे वृक्षमें फल फूल पत्र हुआ करते हैं तो फल वृक्षके किसी हिस्सेमें हैं पत्र फूल आदिक किसी हिस्से में हैं, सारा ही वृक्ष फलमय नहीं है। पत्र फूलमय नहीं है। तो जैसे वृक्षके ये भाग बुद्धिमें पृथक मान लिए जाते हैं और तभी यह बात देखी जाती है कि कोई फल गिर गया तो वृक्ष तो नहीं गिर गया। तो इस तरह उसमें दो किस्मकी पद्धति देख ली जाती है। वृक्ष नित्य रहा फल फूल अनित्य रहे। यह गिरना बोला जाता है, ऐसी ही दृष्टि रखकर सत वस्तुको देखा था शङ्काकारने, वहाँ भी यह बात मान ली गई थी कि सत एक है और उसका अंश उत्पादव्ययध्रौव्य कहा जाता है। जैसे कि वृक्षके अंग फलफूल मात्र कहे जाते हैं, बस इस ही दृष्टिको लेकर शङ्काकारकी वह शङ्का थी कि वस्तुके उत्पादव्यय तो भाग हैं जो मिट जाते हैं, होते हैं, बदलते हैं, पर ध्रौव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई भाग नही है। सारी ही वस्तु ध्रौव्यात्मक है, उसे अंश क्यों कहा? उसका उत्तर हो ही गया है कि तीन अंशात्मकरूपसे सत पाया जाता है। तो चूंकि वे तीन हैं और उनका स्वरूप परस्परमें जुदा जुदा है इसलिए वे अंश कहलाते हैं, लेकिन वे वृक्षमें फल फूल पत्रकी तरह अशरूप नहीं हैं। किसी अंशके एक भागमें उत्पाद पड़ा हो, सत्के किसी अंशके एक भागमें संहार पड़ा हो और किसी एक भागमें ध्रौव्य पड़ा हो ऐसा नहीं है। वृक्ष फलमें तो यह बात पायी जाती है, पर सत्में यह बात नहीं है।

सत्के सर्व प्रदेशोंमें उत्पादरूपता, व्ययरूपता, व ध्रौव्यरूपता—सत् तो जितने प्रदेश वाला है उन सब प्रदेशोंमें उत्पाद व्यय, ध्रौव्य है। कोई सत् असंख्यात प्रदेशी है कोई अनन्त प्रदेशी है कोई एक प्रदेशी है। जैसे कि जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है। जितने लोक काशमें प्रदेश हैं उतने ही प्रदेश प्रत्येक जीवमें हैं। संकोच विस्तारके कारण उनमें व्यक्तिरूपकी घटा बढ़ी हुई है लेकिन प्रदेश उतने ही हैं सबमें जितने कि किसी भी एक जीवमें हो सकते हैं। इस बातकी प्रसिद्धि स्पष्टतया तब हो जाती है जब कि लोकपूरणसमुद्घात होता है, समुद्घातोंमें केवल एक लोकपूरण समुद्घातकी स्थिति है ऐसी कि जिस समयमें एक जीवके प्रदेश पूरे लोकाकाशमें फैल गए हों, और लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर उस जीवका एक एक प्रदेश आ गया हो, इसे कहते हैं समवर्गणाकी स्थिति। तो भले ही विस्तार बने तो इतना तक बने और संकोच बने तो अंगुलिके असंख्यातवें भाग लोकाकाशके प्रदेशमात्रको घेरे, इतना संकोच हो जाय तो भले ही संकोच विस्तार हो, लेकिन जीवके प्रदेश उतने ही हैं जितने कि लोकाकाशके प्रदेश हैं। पुद्गल द्रव्यमें परमार्थतः एक ही प्रदेश हैं, क्योंकि एक अणु ही परिपूर्ण द्रव्य है, एक परमाणुमें एक प्रदेशी होता है, किन्तु पुद्गलमें पुद्गलत्व है। गलन और पूरणका स्वभाव पड़ा हुआ है। वे अणु परस्परमें ऐसा बंध जाते हैं कि वहाँ व्यवहारमें एकत्व हो जाता है। तब स्कंधकी अपेक्षासे उनमें बहुप्रदेशत्व होता है। कोई स्कंध दो प्रदेश वाला है, कोई तीन चार प्रदेश वाला, कोई असंख्यात प्रदेशी और कोई अनन्त प्रदेशी भी होता है। धर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, अधर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी है, आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। यद्यपि आकाशके दो भेद कर दिए गए हैं लोकाकाश और अलोकाकाश लेकिन यह भेद उपचरित हैं। जितने आकाशमें शेष ५ द्रव्य भी पाये जायें उतनेको लोक कहते हैं और जहाँ केवल आकाश ही आकाश है, शेष ५ द्रव्य नहीं हैं जीव पुद्गल धर्म अधर्म और काल नहीं हैं उस भागको अलोकाकाश कहते हैं। लेकिन इस तरहका विभाग कर देनेसे कहीं आकाशके भेद नहीं हो जाते। आकाश एक ही है और वह अनन्त प्रदेशी है। आकाश अनन्त प्रदेशी है यह बात युक्तिसे समझी जा सकती है। कोई बताये कि किस जगहसे आकाशका अंत हो जायगा? कितना ही चला जाय, बुद्धि कितनी ही दूर तक आकाशमें चली जाय, पर कहीं आकाशका अंत हो जायगा क्या? यदि अन्त आयगा तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसके बाद क्या है? यह बताना होगा। कोई मोटी चीज हो या खाली जगह हो दोमें से कुछ तो होगा। खाली जगह है तो वह स्पष्ट आकाश ही तो है। कोई मोटी चीज है तो वह जहाँ रह रही है वहाँ भी आकाश ही तो है। तो आकाशका कहीं अन्त नहीं आ सकता। यों आकाश अनन्त प्रदेशी है, काल द्रव्य एक प्रदेशी है लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य स्थित है। यों असंख्यात कालद्रव्य हैं। जो पदार्थ जितने प्रदेशरूप है वह उतना अखण्ड एक एक है। वहाँ जो उत्पाद होगा सो सर्व प्रदेशोंमें वस्तुका उत्पाद है अर्थात् अवस्था बनती रहती है। व्यय है तो सर्व प्रदेशोंमें उस अवस्थाका व्यय है, ध्रौव्य है तो वह भी सर्व प्रदेशोंमें है। वस्तुके किसी भागमें उत्पाद रहे व्यय रहे, ध्रौव्य रहे, यह बात सम्भव नहीं है। तो इस तरह यह सत् उत्पाद आदिक तीनों ही अंशरूप है।

ननु चोत्पादादित्रयमंशानामथ किमंशिनो वा स्यात्।
अपि किं सदंशमात्रं किमथांशमसदस्ति पृथगिति चेत् ॥२२६॥

उत्पादव्ययध्रौव्य धर्मके सम्बन्धमें शंकाकारके चार प्रश्न विकल्प— अब शङ्काकार इस विषयमें चार विकल्प रख रहा है कि क्या उत्पादव्यय आदिक तीनों ही अंशोंके होते हैं अथवा अंशीके होते हैं। याने उत्पादव्ययध्रौव्य ये क्या अंशोंके प्रकार हैं अथवा ये तीनों किसी एक अंशीके हुआ करते हैं? तीसरी बात कि क्या वे उत्पाद आदिक तीनों सत्के अंशमात्र हैं जैसे कोई वृक्ष है और उसका अंश है फल फूल पत्रादिक क्या इस प्रकार उस सत्के एक अंशमात्र ही है? अथवा चौथी बात यह पूछी जा रही है कि असत् अंश रूप भिन्न भिन्न हैं अर्थात् सत्त्व कोई अलग चीज है और उससे अलग है उत्पादव्ययध्रौव्य, तो जो सत्से अलग हो वह तो असत् कहलायेगा तो यों उत्पादव्ययध्रौव्य ये क्या असत् अंशरूप हैं? सत् अंशरूप हैं ऐसा पूछा जानेपर यह बात तो अपने आप समझ ली गई कि हैं भिन्न भिन्न हैं। सत् है कोई एक वस्तु और उससे भिन्न है उत्पादव्ययध्रौव्य। तो जो सत्से भिन्न है वह असत् ही तो है। तो यों उत्पादव्ययध्रौव्य असत् अंशरूप है और भिन्न भिन्न है। क्या यह चौथी बात सत्य है? इस प्रकार शङ्काकारने सत्के सम्बन्धमें और उत्पादव्ययकी सहिततामें ये चार विकल्प किए हैं। अब इन चारों विकल्पोंका उत्तर कहेंगे।

तन्न यतोऽनेकान्तो बलवानिह खलु न सर्वथैकान्तः।
सर्वं स्यादविरुद्धं तत्पूर्वं तद्विना विरुद्धं स्यात् ॥ २२७॥

अनेकान्त दृष्टिमें विचारोंकी अविरुद्धता बताकर शंकाकारकी शंका के समाधानका उपक्रम— शङ्काकारने जो चार विकल्प उठाकर प्रश्न किये हैं कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या उत्पादादिक तीनों ही ये अंशोंकी चीजें हैं, अथवा ये अंशीकी चीजें हैं, या सत्के अंशमात्र हैं, अथवा पृथक पृथक असत् अंशरूप हैं ? यों चारो प्रकारके प्रश्न यदि अनेकान्तकी दृष्टि होती तो न उठते। वस्तु स्वरूपके निर्णयमें अनेकान्तका ही महत्व है। और यथार्थ निर्णयके उपायोंमें अनेकान्त ही बलवान है सर्वथा एकांत बलिष्ट नहीं होता। सो ये सबके सब प्रश्न यदि अनेकान्त दृष्टिसे किए गए हैं तो सभीकी सभी बातें अविरुद्ध हो जाती हैं। विवक्षाके अनुरूप कुछ भी कहा जाय उसमें विरोध नहीं आता, लेकिन अनेकान्तको छोड़कर केवल एकान्तरूपसे ही उपर्युक्त प्रश्न किये गये हों तो वे परस्परमें एक दूसरेके विरोधी हैं। भगवत् शासन प्रमाणात्मक है। किसी भी पदार्थका विवेचन किया जाय तो वह नयसे सबका सब विवेचन संगत है। यदि नय दृष्टिको छोड़ दिया जाय तो वह विवेचन असंगत होता है।

स्याद्वादकी यथार्थ निर्णयकता—स्याद्वादमें यद्यपि व्यक्तरूप ऐसा है कि कभी वस्तुको किसीरूप कहा गया, कभी किसी रूप कहा गया तो यों न समझना चाहिए कि जैन शासनमें किसी बातका निर्णय ही नहीं है। कारण यह है कि जैन दर्शन नय विवेचनासे निर्णयमें पहुंचाता है। अतएव उस अपेक्षामें जिस अपेक्षासे कथन किया गया है, वस्तुमें रंच भी संशय नहीं है। जैसे किसी पुरुषका परिचय किया जाय कि यह देवदत्त अमुकका पिता है अमुकका पुत्र है, तो वहाँ नाम लेकर जैसे कि देवदत्त मैत्रका पिता है तो वहाँ यह कहा जायगा कि यह मैत्रका पिता ही है। निर्णय पूरा बसा हुआ है। वहाँ संशयका क्या साधन और जब कहा जाय कि देवदत्त मैत्रका पुत्र है तो वहाँ निर्णय है कि यह मैत्रका पुत्र ही है। इसमें संशयकी क्या गुंजाइस ? लेकिन सभी लोग समझते हैं कि यह निर्णयरूप चीज है। और, उस पुरुषमें पितापन, पुत्रपन आदिक अनेक धर्मभी पाये जाते हैं तो कभी वह देवदत्त पितारूप है कभी पुत्ररूप है, इतनेपर भी वहाँ संशयका स्थान नहीं है। इसी प्रकार जब पदार्थके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, तो वहां यह निर्णय पड़ा है कि पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य ही है, वहाँ अनित्यकी गुंजाइस नहीं। जब कहा कि पदार्थ पर्याय दृष्टिसे अनित्य है तो वहाँ यह निर्णय पड़ा हुआ है कि पदार्थ पर्याय दृष्टिसे अनित्य ही है। संशयका वहां स्थान नहीं है। तो स्याद्वादमें संशयका स्थान नहीं है, क्योंकि वस्तु एक धर्मात्मात्मक नहीं, अनेक धर्मात्मक है, इस कारण वह अनेक रूपसे ही कहा जाता है। उसको एक रूपसे कहें तो उसका स्वरूप बिगाड़ना होगा। जैसे देवदत्तके बारेमें कहा कि यह तो पिता ही है, सबकी अपेक्षासे पिता है, सर्वथा एकान्त हठ करले तो बात विरुद्ध हो जायगी और कहने वालेकी विडम्बना बन जायगी लोग उसे पीट भी देंगे कि लो यह हमारा भी पिता कहता। सारी दुनियाका पिता बताता। तो अपेक्षा दृष्टि लगाकर जो निर्णय होता है उसमें निश्चय ही पड़ा हुआ है, और अपेक्षा दृष्टि न लगाकर फिर उस धर्मका एकान्त किया जाय तो वहाँ विडम्बना हो जाती है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यों यद्यपि पदार्थ अनेक धर्मात्मक है यह बात प्रमाणसे स्वीकार की है । तो वह प्रमाणसे स्वीकार किये गये ग्रहण किये गये पदार्थमें जब किसी एक धर्मकी मुख्यतासे निरखते हैं तो उस दृष्टिमें पदार्थ उस ही धर्मरूप है ।

अनेकान्तके आश्रय बिना चर्चाओंकी विरुद्धरूपता—अनेकान्तका सहारा लिए बिना कोई लौकिक बात भी सिद्ध नहीं हो सकती । सभी जन जिस चीजको जिस नामसे कहते हैं बिना विवादके वे समझते हैं उनको किसी प्रकारका संशय नहीं होता है । किसीने कहा कि यह चौकी है, तो यह चौकी है इतने कहने वालेके हृदयमें सुनने वालेके चित्तमें यह निर्णय पड़ा हुआ है कि यह चौकी ही है, अन्य कुछ नहीं है। सैद्धान्तिक भाषामें कहा जायगा तो यह चौकी अपने चतुष्टयसे है पर चतुष्टयसे नहीं है । तो यहाँ कोई प्रश्न करता कि यह चौकी चौकी ही क्यों है ? और कुछ क्यों नहीं हो गई ? तो निर्णय पड़ा हुआ है कि चूंकि इस चौकीमें किसी भी पर वस्तुका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं है, इस कारण यह चौकी ही है, अन्य कुछ नहीं है । तो चौकी अपने स्वरूपसे है पर स्वरूपसे नहीं है, यह बात निर्णय रूपसे है । यदि चौकी अपने स्वरूपसे भी न रहे, जैसे कि पर स्वरूपसे नहीं रहती तो चौकीका सत्त्व ही कुछ न रहेगा । यदि चौकी पर स्वरूपसे भी हो जाय, जैसा कि अपने स्वरूपसे होना कहा जाता है तो पर स्वरूपसे हो जानेसे वह चौकी ही क्या रही ? वह तो विश्वरूप होगई अब वहाँ चौकी है यह बात विविक्ततासे कही ही नहीं जा सकती है । तो पदार्थ यों अपने चतुष्टयसे सद्भावरूपसे है और पर चतुष्टयसे अभावरूप है । यों स्याद्वादसे ही वास्तविक निर्णय सम्भव है ।

स्याद्वादमें संशयका अनवकाश—स्याद्वादको संशयात्मक वह ही कह सकेगा जिसने न संशयका स्वरूप समझा है और न स्याद्वादका स्वरूप ही समझा है । स्याद्वाद का अर्थ है अपेक्षा लेकर धर्मको निश्चयपूर्वक कहना और संशयका अर्थ है कि विरुद्ध दो अथवा अनेक कोटियोंमें तुलते रहना । किसी भी निर्णयमें न पहुंचे । सो स्याद्वादके निर्णयमें संशयका स्वरूप नहीं आता, क्योंकि वहां उस दृष्टिमें उस निर्णयपर पहुंचता है यह जीव । और स्याद्वादका स्वरूप निर्णयात्मक ही है । वहां अनिर्णयकी बात ही नहीं पड़ी है । जिन दार्शनिकोंके चित्तमें यह शल्य है कि एक वस्तुमें अनेक धर्म नहीं रह सकते हैं तो वह वस्तुके स्वरूपके यथार्थ बोधसे परे है, अन्यथा वे ही बतायें कि चौकीको चौकी कहते हैं तो चौकी ही क्यों कहते ? पुस्तक, दवात, भींट आदिक क्यों नहीं कहने लगते ? इसका उत्तर साफ यह है कि चौकीमें चौकी स्वरूप ही रह रहा है । इसलिए चौकी चौकी ही कही जाती है, उसमें भींटका धर्म नहीं अन्य पदार्थोंका धर्म नहीं । प्रत्येक पदार्थमें अपना ही स्वरूप रहता है, किसी अन्य पदार्थका स्वरूप नहीं रहता । तो स्याद्वादसे ही वस्तुका निर्णय होता है । यहाँ यदि स्याद्वादका आश्रय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लेकर विकल्पोंको घटित किया जाये तो वहाँ समाधान सही हो जाया करता है। वह किस तरह ? सो आगेकी गाथामें कहते हैं।

केवलमंशानामिह नात्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् ।
नाप्यंशिनस्त्रयं स्यात् किमुतांशेनांऽशिनो हि तत्त्रितयम् ।२२८।

शङ्काकारके विकल्पोंका समाधान——केवल अंशोंका ही उत्पादव्यय ध्रौव्य नहीं होता और न वे दोनों केवल अंशीके होते हैं और वे तो अंशीके अंशरूप से हैं। पृथकसे अंश होनेका चौथा विकल्प तो एकदम असङ्गत है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये स्वयं वस्तुके स्वरूपसे हैं और वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। तो ये अंशोंके नहीं हुआ करते, वह पदार्थ ही इन तीनों रूप है। और ऐसा भी नहीं कह सकते कि पदार्थ तो बन जाय अंशी, और ये बन गए अंश। जैसे कि वृक्षके फल फूल आदिक। उस तरहसे भी इसमें विभाग नहीं हैं। किंतु अंशीके अंशरूपसे ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन धर्म होते हैं। अब यहाँ प्रथम विकल्प जो किया था कि उत्पादादिक तीन अंग अंशीके होते हैं तो ये तीनों अंशरूप हैं एक दृष्टिमें, क्योंकि समग्र पदार्थ तृतीयात्मक हैं, तब उनमें से एक बात कहना यह तो वस्तुका एक भाग हो गया ना ? और भागका ही नाम अंश है तो इस दृष्टिसे उसे कह सकते हैं कि यह अंश अंशरूप है और चूंकि वह तीन रूप होता है एक सत्। वह सत् हुआ अंशी और उस अंशीके ये अंश हुए धर्म। तो एक दृष्टिसे यह भी कह सकते हैं कि ये अंशीके होते हैं और ये सत्के अंश मात्र हैं क्या ? ऐसा प्रश्न किया था। तो भेद दृष्टिमें यह भी प्रतीत हो जाता है और चौथे विकल्पमें पूछा गया था क्या यह असत् अंश रूप कोई पृथक पृथक चीज है ? यदि ये अंश प्रथक हों तो वास्तवमें असत् हैं। इस ढंगसे देखा जाय तो प्रथक प्रथक अंशरूप यह है ही नहीं। वस्तुसे प्रथक उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म नहीं होता है। तो इस तथ्यको नयदृष्टिसेसुलझाया जाय तो ये सभीकी सभी बातें अनेकान्तके आश्रयमें विरोध रहित प्रतीत होती हैं किन्तु अनेकान्तका सहारा छोड़कर केवल एकान्त आग्रहको देखा जाय तो ये चारोंकी चारों बातें परस्पर विरुद्ध हैं और ये घटित नहीं हो सकती हैं।

ननु चोत्पादध्वंसौ स्यातामन्वर्थतोऽथ वाङ्मात्रात् ।
दृष्टविरुद्धत्वादिह ध्रुवमपि चैकस्य कथमिति चेत् ।। २२९ ।।

उत्पादव्ययवाले पदार्थमें ध्रौव्य धर्मकी असंभवताकी आरेका—शंकाकार यहाँ शका करता है कि एक पदार्थके उत्पाद और व्यय ये दोनों बातें हों तो भले ही हों किन्तु उसी पदार्थ का ध्रौव्य मानना यह तो कथनमात्र है, और इसमें प्रत्यक्षसे बाधा है कि मान जो उत्पन्न होता है वह ध्रुव कैसे ? जो नष्ट होता है वह ध्रुव कैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक ही पदार्थमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों किस प्रकारसे सम्भव हो सकते हैं क्योंकि उत्पादका नाम उत्पन्न होना जो उत्पन्न होना है उसका नाम ध्रुव होना कैसे कहा जा सकता है ? तो एक पदार्थमें दो अंश तो सम्भव हो नहीं सकते । उत्पादव्यय यदि माने जाते हैं तो ध्रौव्य व्यय उनमें किस प्रकार माने जा सकते हैं ? अब इस शंकाका उत्तर देते हैं।

सत्यं भवति विरुद्धं क्षणभेदो यदि भवेत्त्रयाणां हि ।
अथवा स्वयं सदेव हि नश्यत्युत्पद्यते स्वयं सदिदि ॥ २३०॥

उत्पादव्यय वाले पदार्थमें ध्रौव्य धर्मकी अविरुद्धताका प्रतिपादन—शंकाकारका यह कहना तब सत्य होता जबकि उत्पादव्यय ध्रौव्यके क्षणभेद माने गए हों ? शंकाकार अपनी यह शंका उपस्थित कर रहा है कि यदि उत्पादव्यय ध्रौव्य ये तीनों अंश एक अंश पदार्थमें सम्भव नहीं होते तो यह बात मानी जाती जबकि उनमें क्षणभेद होता । उत्पादके समय व्यय न होता, उत्पादव्ययके समय ध्रौव्य नहीं होता, ऐसी बात यदि होती तो उत्पादव्यय अपने किसी समयमें हुआ करता होता । जिस समय कि व्यय और ध्रौव्य नहीं होते अथवा व्ययध्रौव्य अपने अपने समयमें होते, जब कि अन्य दो न होते तो ऐसी स्थितिमें तीनोंको माननेकी बात विरुद्ध कही जा सकती थी कि एक ही पदार्थमें जो कि एक ही तो है उसमें तीनों धर्म कैसे रह सकते हैं ? लेकिन उत्पादव्यय ध्रौव्यमें क्षणभेद नहीं है । इस बातको कुछ विस्तारपूर्वक आगे बतावेंगे । संक्षेपमें उत्तर यह समझना चाहिए कि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों एक ही समयमें रह सकते हैं और इनका एक पदार्थमें कोई विरोध नहीं है अथवा यदि ऐसा माना गया होता कि स्वयं सत् ही नष्ट होता है और सत ही उत्पन्न होता है तब तो इन तीनोंमें विरोध हो सकता था, लेकिन ऐसा तो नहीं माना गया है । जो सत् है उसे उत्पन्न होनेकी क्या जरूरत ? जो सत् है वह नष्ट कैसे होगा ? इस कारण सत् तो सत् है ही, उसकी किसी अवस्थाको उत्पादव्यय कहते हैं और सब अवस्थाओं के होते रहनेपर भी सत् स्वयं अवाधित गतिसे सर्वत्र रहता है । इसे स्पष्ट करते हैं ।

क्वापि कुतश्चित् किञ्चित् कस्यापि कथञ्चनापि तन्न स्यात् ।
तत्साधकप्रमाणाभावादिह सोप्यदृष्टान्तरात् ॥ २३१ ॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका क्षणभेद न होनेसे पदार्थकी त्रयात्मकताकी सङ्गतता—उत्पादव्ययध्रौव्यमें क्षणभेद होता हो, अथवा सत् ही नष्ट होता है, सत् ही उत्पन्न होता हो यह बात किसी कारणसे कभी रंचमात्र भी नहीं होती । उत्पाद भिन्न समयमें होता हो और व्यय भिन्न समयमें होता हो, यों इन तीनोंमें क्षणभेद होते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस बातको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। और न इस बातकी सिद्धिमें कोई दृष्टान्त मिल सकता है। जितने भी पदार्थ इस लोकमें दृष्टगत हो रहे हैं उनमें स्पष्टतया यह विदित हो रहा है कि वे पदार्थ बहुत समय तक रहते हैं और उनकी विशिष्ट अवस्थायें बदलती रहती हैं। जैसे जल गर्म हो गया, ठंढा हो गया, जम गया, कैंड़ा हो गया आदिक अनेक अवस्थायें उसमें बनती हैं, पर बननेपर भी मैटर तो वहीका वही है, जिसकी अवस्थायें बन जाती हैं। अब उन अवस्थाओंकी दृष्टिमें देखते हैं तो वे अवस्थायें बनती हैं और बिगड़ती हैं। तो यों एक ही पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ सम्भव हो रहे हैं। ये भिन्न समयमें होते हों, इनको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है, पर दृष्टान्त भी जितने अधिक किसी पदार्थके ही तो दिए जायेंगे पर उनमें उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों एक साथ होते हैं यह बात स्पष्ट समझमें आती जायगी। अतः शङ्काकारका यह कहना कि किसी पदार्थमें उत्पादव्यय भले हो रह जायें किन्तु जिनमें उत्पादव्यय हुआ वे ध्रुव होते, यह बात केवल कहने मात्रको होगी सिद्ध नहीं हो सकती। यह शङ्का खण्डित हो जाती है। अब शङ्काकार अपनी शङ्का के समर्थनमें कहता है।

ननु च स्वावसरे किल सर्गः सर्गैकलक्षणत्वात् स्यात्।
संहारः स्वावसरे स्यादिति संहारलक्षणत्वाद्वा ॥ २३२ ॥

ध्रौव्यं चात्मावसरे भवति ध्रौव्यैकलक्षणात्तस्य।
एवं लक्षणभेदः स्याद्बीजांकुरपादपत्त्ववन्न्विति चेत् ॥ २३३ ॥

उत्पाद व्यय, ध्रौव्यमें लक्षणभेद होनेसे समयभेदकी संभवताकी आरेका—शङ्काकार कह रहा है कि देखिये पदार्थमें जो उत्पाद होता है वह अपने ही समयमें होता है, क्योंकि उत्पादका लक्षण है नवीन अवस्थाका होना। और जब उत्पादका लक्षण उत्पादमें ही है, व्यय और ध्रौव्यमें नहीं है तो व्यय ध्रौव्यके कालमें नहीं है, व्यय अपने ही अवसरमें है। इस प्रकार पदार्थमें जो संहार (विनाश) होना है वह अपने ही अवसरमें होता है क्योंकि संहार का लक्षण व्यय होना, विलीन होना, अभाव होना है। तो भला अभाव होनेकी पर्याय अभाव होनेके समयमें कैसे रहेगी? तो संहार भी अपने अवसरमें ही होता है, क्योंकि उसका लक्षण उत्पाद और व्ययसे जुदा है। इसी प्रकार ध्रौव्य भी अपने ही अवसरमें होता है क्योंकि ध्रौव्यका वह लक्षण उत्पाद व्ययसे जुदा है। ध्रौव्यका अर्थ है निरन्तर बना रहना। तो उत्पन्न हुआ है निरन्तर बना रहना। तो उत्पन्न हुआ है वह निरन्तर बना रहता तो नहीं है। जो नष्ट हुआ है उसे निरन्तर बना रहना तो नहीं कह सकते। इनका लक्षण जुदा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अतएव ध्रौव्य भी अपने ही अवसरमें होता है। जब इनमें लक्षणभेद है तो इनका अवसर भी जुदा जुदा है। जैसे कि बीज अंकुर और वृक्ष। इनका लक्षण न्यारा न्यारा है बीज तो एक छोटा सूखा दाना है और अंकुर जमीनमें प्रारम्भमें जो कोमल पत्र बनता है वह अंकुर है और अब वह बढकर खड़ा हो जाता है तो उसका नाम वृक्ष है। तो बीज अंकुर और वृक्ष इनका जुदा जुदा लक्षण है। तो ये एक समयमें तो नहीं हैं। बीजके समयमें बीज है, अंकुरके समयमें अंकुर है और वृक्षके समयमें वृक्ष है। जो बीज जमीनमें बोया जायगा वह बीज बीज ही है उसे अंकुर और वृक्ष नहीं कहते। अब अंकुर उत्पन्न होता है तब वहाँ बीज नहीं रहा। अंकुर बीजका काम तो नहीं कर सकता और जब वृक्ष हो जाता है तो उसे बीज और अंकुर नहीं कहते। तो बीज वृक्ष और अंकुर जैसे ये भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं तो इनका भिन्न भिन्न समय है। तो यों ही उत्पादव्ययध्रौव्य भी भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं इस कारण इन तीनोंका भी भिन्न भिन्न समय है। और जब क्षणभेद हो गया तब यह शङ्का ज्योंकी त्यों बनी रही कि किसी भी पदार्थमें उत्पादव्यय होते हों तो हों किन्तु जिसमें उत्पाद व्यय हो रहे उसमें ध्रौव्य सम्भव नहीं हो सकता। अब इस शङ्का और शङ्काके समर्थनका खण्डन करते हैं।

तन्न यतः क्षणभेदो न स्यादेकसमयमात्रं तत्।
उत्पादादित्रयमपि हेतोः संदृष्टितोपि सिद्धत्वात्॥ २३४॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमें क्षणभेदका अभाव समर्थित करके उक्त आरेका का समाधान—शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों ठीक नहीं है कि उत्पादव्ययध्रौव्यमें समयभेद मानना उचित हो ही नहीं सकता। इन तीनोंमें समयभेद नहीं है। ये तीनों एक ही समयमें होते हैं यह बात युक्तिसे दृष्टांतसे और प्रत्यक्षसे भली भांति सिद्ध हो जाती है। जो वृक्ष, बीज, अंकुरका दृष्टान्त दिया है तो वहां सब सद्भाव और अवस्थाओंका दृष्टांत दिया है और इतनेपर भी विचार करके देखा जाय तो वहाँ भी एक दृष्टिमें तीन बातें सम्भव हो सकती हैं. पर किसी भी पदार्थको निरखकर आप यह पायेंगे कि उसमें अवस्था नवीन हुई है और पुरानी अवस्था विलीन हुई है. इतनेपर भी पदार्थ वहीका वही है। और ये तीनों बातें प्रत्येक समयमें पाई जाती हैं। क्योंकि प्रतिसमयमें ही नवीन नवीन पर्यायें होती चली जाती हैं। तो उसके साथ ही पूर्व पूर्व पर्यायें विलीन होती रहती हैं। और इतना होनेपर भी वस्तु सदैव है जिसके आधार में उत्पाद और व्यय चलता रहता है। तो उत्पादव्ययध्रौव्यमें क्षणभेद नहीं है। इस कारणसे इन तीनोंका किसी भी पदार्थमें विरोध नहीं आ सकता। इन तीनोंमें क्षण भेद नहीं है। यह बात स्पष्टतया बतला रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथ यद्यथ हि बीजं बीजावसरे सदेव नासदिति ।
तत्र व्ययो न सत्त्वाद् व्ययश्च तत्मात्सदंकुरावसरे ॥ २३५ ॥

शङ्काकारके कथित दृष्टान्तमें ही उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकसमयताका व शङ्काकारकी भूलका प्रतिपादन– उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही एक समयमें हैं इस बातको शङ्काकारके द्वारा दिए गए दृष्टान्तमें ही घटित कर रहे हैं। देखो बीज अपनी पर्यायके समयमें है, उस समयमें बीज पर्यायका अभाव नहीं कहा जा सकता। तो इतनी बात तो वहाँ कह सकते हैं कि जिस समयमें जो पर्याय हैं उस समय उस पर्यायका अभाव नहीं है। तो एक ही पर्यायमें सद्भाव और अभावका विरोध तो कहा जा सकता है पर शङ्काकार पर्यायके उत्पाद समयमें बीज पर्यायका व्यय न कहा जाय, यह बात सम्भव नहीं है। ये धर्म बताये जा रहे हैं उत्पादव्ययध्रौव्यके और शङ्काकार दृष्टान्त दे रहा है केवल उत्पाद उत्पादका। बीज है वह भी उत्पादरूप, सद्भावरूप, अंकुर है वह भी उत्पादरूप, वृक्ष है वह भी उत्पादरूप। वहाँ उत्पादव्ययध्रौव्यकी तुलना करके दृष्टान्त दिया जाता तो यों दिया जाता कि जैसे अंकुर हुआ तो उत्पाद अंकुरका हुआ, व्यय बीजका हुआ और ध्रुवता रही वृक्षकी। यदि वृक्ष सबका ही नाम माना जाय, फल फूल पत्ता आदिक चाहे कुछ भी हो, इस तरह जो उस सर्व परिणतियोंमें रहता है उसका नाम वृक्ष मानना चाहिए। तो देखिये ! एक ही समयमें तीन बातें हो गयीं ना ? तो बीजके समयमें बीज है और बीजके समयमें बीजका अभाव नहीं कहा जा सकता, वृक्षका व्यय भी नहीं कहा जा सकता, किंतु जब अंकुर पर्याय उत्पन्न हो गयीं तो उस समयमें बीज पर्यायका व्यय तो कहा जा सकता है। यहाँ प्रसङ्गमें उत्पादव्ययध्रौव्यकी बात कही जा रही है। केवल उत्पाद उत्पादकी बात नहीं कही जा रही है। तो उत्पादव्ययध्रौव्यके लिए दृष्टान्त जो भी दिया जायगा उसमें भी तीनों बातें एक ही समयमें घटित हो सकेंगी वहाँ उनका क्षणभेद नहीं हो सकता। और जब क्षणभेद न हुआ उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों एक साथ रह गए तब फिर एक पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंको विरुद्ध कैसे कहा जा सकता है ? अविरुद्ध रूपसे तीनों रहते हैं तो इन तीनोंका जो रहना है इन तीनोंमय ही वह सत् कहलाता है। सत् केवल उत्पादरूप नहीं है, सत् केवल व्ययरूप नहीं है और सत् केवल ध्रौव्य रूप भी नहीं है, ऐसा भी कोई सत् नहीं है जो अपरिणामी ध्रुव हो। ऐसा भी कोई सत् नहीं जो नष्ट हो जाता हो और ऐसा भी सत् नहीं कि जो उत्पन्न होता हो याने पहिले कुछ न हो और अब कुछ उत्पन्न हो गया, तो तीनों ही एक सत्त्व कहलाते हैं। और उनका एक सत् पदार्थमें किसी भी प्रकार विरोध नहीं हो सकता।

बीजावस्थायामपि न स्यादंकुर भवोऽस्ति वाऽसदिति ।
तस्मादुत्पादः स्यात्स्वावसरे चांकुरस्य नान्यत्र ॥ २३६ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक पदार्थमें एक समय अनेक अवस्थाओंके सद्भावका विरोध होनेपर भी उत्पादव्ययका अविरोध– बीज पर्यायकी अवस्थामें भी अंकुरकी उत्पत्ति नहीं कही जा सकती। बीजके समय अंकुरके उत्पादका अभाव है, इसलिए अंकुरका उत्पाद भी अपने समयमें होगा अन्य समयमें नहीं यह बात ठीक है किन्तु अंकुरके उत्पादका ही नाम तो बीज पर्यायका विनाश है। तब व्यय और उत्पादका एक ही समय कैसे न होगा ? यहाँ यह ध्यानमें रखना होगा कि नवीन अवस्थाके होनेका नाम उत्पाद है और पुरानी अवस्थाके नाश होनेका नाम व्यय है, तब जिसका ही नाम उत्पाद है उसका ही नाम व्यय है। उत्पाद है उत्तर अवस्थाकी अपेक्षा और व्यय है पूर्व अवस्था की अपेक्षा। इस कारण जो समय उत्पादका है वही समय व्ययका है। और जो समय व्ययका है वही समय उत्पादका है, तब उत्पाद और व्यय एक साथ पदार्थमें रहें इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है।

यदि वाबीजांकुरयोरविशेषात् पादपत्वमिति वाच्यम्।
नष्टोत्पन्नं न तदिति नष्टोत्पन्नं च पर्ययाभ्यां हि ॥ २३७ ॥

उत्पादव्यय होते रहनेपर भी ध्रौव्य धर्मका शाश्वत अविरोध—बीज और अंकुर इन दोनोंको यदि सामान्यरूपसे वृक्ष कहा जाय, वृक्ष मायने सब कुछ, बीज भी वृक्ष है अंकुर भी वृक्ष हैं और जब बड़ा हो गया, खड़ा हो गया तब भी वह वृक्ष है, तो वृक्ष नाम यदि समस्त अवस्थाओंमें कहा जाय तो यह सिद्ध होता है कि वृक्ष न तो उत्पन्न होता और न नष्ट होता। बीज अंकुर आदिक अवस्थायें जैसे एकमें चल रही हैं उसकी दृष्टिसे तो वह वही है उसका न उत्पाद है, न विनाश है। बीज पर्याय का ही तो नाश हुआ और अंकुर पर्यायका ही तो उत्पाद हुआ। इस सम्बन्धमें अनेक दृष्टान्त ले सकते हैं। जैसे मिट्टीके पिण्डसे घड़ा बनाया गया तो वहाँ तीन बातें निरखना है पिण्डका व्यय घड़ेका उत्पाद और मिट्टीका ध्रौव्य, ये तीनों ही बातें एक समयमें पायी जा रही हैं। जब घड़ा हुआ तो घड़ा बननेका जो समय है वही समय पिण्डके विनाशका है और उत्पाद विनाश होनेपर भी मिट्टी ध्रुव ही है। जब पिण्ड था तब भी वही मिट्टी थी, घड़ा बना तब भी वही मिट्टी है। तो वहाँ उत्पादव्यय ध्रौव्य तीनों एक साथ हो गए इस उत्पादव्ययका विरोध तो तब है कि जिस ही अवस्थाका उत्पाद है उस ही समय उस ही अवस्थाका व्यय माना जाय जिस समय जिस अवस्थाका व्यय माना उसी समय उसी अवस्थाका उत्पाद माना जाय तो विरोध आता है। पर उत्पाद है उत्तर अवस्थाका, व्यय है, पूर्व अवस्थाका, तो वहाँ विरोध नहीं है, और आधारभूत पदार्थ जिसका कि परिणमन चला करता है वह निरन्तर इस कारण उसमें ध्रौव्य पाया गया। इस कथनका सारांश यह है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आयातं न्यायबलादेतद्य त्रितयमेककालं स्यात् ।
उत्पन्नमंकुरेण च नष्टं बीजेन पादपत्वं तत् ॥ २३८ ॥

दृष्टान्त पूर्वक उत्पादव्ययध्रौव्यकी एक कालताका सयुक्तिक वर्णन– उक्त कथनमें यह बात सिद्ध हो चुकी कि उत्पादव्ययध्रौव्य तीनोंका एक ही समय है। जैसे दूध पर्यायके बाद दही पर्याय बनती है तो दही पर्यायका उत्पाद हुआ, और दुग्ध पर्यायका व्यय हुआ किन्तु गोरस तो दोनों जगह रहा। जो दूध दहीका आधारभूत मैटर है जो गायसे निश्चित है वह सब अवस्थाओं रहा। तो गोरसपनेका ध्रौव्य रहा, ऐसा माने बिना पदार्थका सत्त्व ही नहीं ठहर सकता। प्रकृत दृष्टान्तमें निरख लीजिये कि जो बीज पर्यायके सद्भावका समय है वही समय बीज पर्यायके व्ययका नहीं है। क्योंकि उस ही पदार्थका सद्भाव और उसीका अभाव, ये दोनों एक समयमें होते नहीं हैं। तब यों देखिये कि उस अंकुरके उत्पन्न होनेका जो समय है वही समय बीजपर्याय के नष्ट होनेका है। वहाँ अन्तर नहीं पड़ता कि पहिले बीज पर्याय नष्ट हो ले तब बादमें अंकुर पर्याय उत्पन्न होगी। बीज पर्याय और अंकुरका उत्पाद इन दोनोंके बीच में पर्यायका विनाश पड़ा हो, ऐसा नहीं है। याने पर्याय दो सद्भावरूप मान ली जाय बीज और अंकुर। तो बीजके समयमें बीज है, अंकुरके समयमें अंकुर है, बीजका नाश कब हुआ? बीजके बाद और अंकुरसे पहिले तो यों नाशका समय बीचमें माननेपर यह आपत्ति आयगी कि द्रव्य पर्याय रहित हो जायगा। एक समयमें तो वह बीज पर्यायमें थी दूसरे समयमें बीज पर्यायका नाश हुआ तीसरे समयमें अङ्कुरका उत्पाद हुआ। तो यह बतलाओ कि दूसरे समयमें रहा क्या? कोई विधिरूप चीज न रही। तो यों द्रव्यका ही अभाव हो जायगा क्योंकि उस मंतव्यमें यह स्थिति मान ली गई है कि बीजका तो दूसरे समयमें नाश हो गया और दूसरे समयमें अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ तो अब बतलाओ कि उस बीजके समयमें कौन सी पर्याय मानी जाय? कोई नहीं! तो पर्याय जब न रही तो पर्यायी भी न रहेगी। तो पर्याय भी असिद्ध हो गई और द्रव्य भी असिद्ध हो गया। इस कारण यह मानता चाहिए कि जिस समय अंकुरका उत्पाद है उस ही समय बीज पर्यायका नाश है। इसको यों भी कह सकते कि जो बीज पर्यायका नाश है वही अंकुरका उत्पाद है। हुआ क्या? मान लो जैसे दो क्षण हैं—पहिले क्षणमें बीज पर्याय है, दूसरे क्षणमें अंकुर पर्याय हो गई तो बीजमें अब कोई क्षण न रहा। क्षण वे दोनों हैं। और दोनों क्षणोंमें एक पर्याय वर्तमान है। अब पूर्व क्षणमें पूर्व पर्याय वर्तमान है उत्तर क्षणमें तो पर्याय वर्तमान है। बस, इस एक दृष्टिसे यह देखा जा सकता है कि पर्यायें होती चली जाती हैं, दूसरी पर्याय होने का नाम पूर्व पर्यायका विनाश है, इसका यह भी अर्थ न लेना। तब तो फिर नाश और उत्पादका अर्थ एक हो गया। उत्पादका अर्थ उत्पन्न होना है और नाशका अर्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाश होता है। सो उत्पाद और व्यय एक चीज तो नहीं है किंतु प्रतिसमय पदार्थमें एक ही पर्याय रहती है। तो जो पर्याय जिस समय है उस समय उस पर्यायका तो उत्पाद कहना चाहिए और उससे पूर्व पर्यायका व्यय कहना चाहिए और दोनों ही स्थितियोंमें ध्रुव रहने वाला तत्त्व है ही। यों उत्पाद व्यय, ध्रौव्य तीनों एक ही समय हैं, एक ही अवस्थामें ये तीनों बातें घटित हो जाती हैं। तब शङ्काकारका विकल्प उठाना व्यर्थ है। जब अनेकान्तका आश्रय लेते हैं तब वहां कोई विरोध नहीं होता। अनेकान्तका आश्रय तजकर जब एकान्तका आग्रह करते है तो वहाँ विरोध ही है।

अपि चांकुरसृष्टेरिह य एव समयः स बीजनाशस्य।
उभयोरप्यात्मत्वात् स एव कालश्च पादपत्वस्य॥ २३९॥

अङ्कुरोत्पाद, बीजव्यय व पादपध्रौव्यकी एक समयता उक्त कथनका स्पष्ट भाव यह है कि जो अंकुरकी सृष्टिका समय है वही समय बीजके नाशका है और बीजका नाश अंकुरका उत्पाद ये दो हैं क्या? वही वृक्षस्वरूप ही तो है। इसी कारण जो समय बीजके नाश और अंकुरके उत्पादका है वही समय वृक्षके ध्रौव्यका है। एक अन्य उदाहरण लीजिए! कोई बालक बचपनसे बढ़कर जवान हो गया तो उस जवान होनेका ही नाम बचपनका नाम है, और मनुष्य वही रहा इस कारण मनुष्य ध्रौव्य है वहां यह न होगा कि कोई दिन ऐसा मुकर्रर हो कि जिस दिन बचपनका नाश हो फिर उसके बाद दूसरा दिन आयगा तब जवानीका उत्पाद होगा, ऐसा नहीं है। अथवा देखिये! एक ही अंगुली जिस समय सीधी है दूसरे क्षणमें कुछ टेढी कर दी गई तो यह बतलाओ कि क्षण तो लगातार वे दोनों हैं। पहिले क्षणमें अंगुली सीधी थी दूसरे क्षणमें अंगुली कुछ टेढी हुई तो सीधी अंगुलीका नाश किधर हुआ? पहिले समयमें कहोगे तो वह सङ्गत नहीं। पहिले समयमें तो अंगुली सीधी है उसका नाश कहाँ है? दूसरे समयमें देखा गया तो अंगुली टेढी है और उस टेढी हुईका ही नाम सीधीका नाश है। सीधी अंगुलीका नाश होना कोई अलगसे अन्य कुछ चीज है क्या? उत्तर पर्यायकी पर्यायके होनेका ही नाम पूर्वपर्यायका व्यय है। अनेक उदाहरण हैं ऐसे जिनसे यह सिद्ध होता है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंका समय एक ही है।

तस्मादनवद्यमिदं प्रकृतं तत्त्वस्य चैकसमये स्यात्।
उत्पादादित्रयमपि पर्यायार्थान्न सर्वथापि सत्॥ २४०॥

तत्त्वकी एक समयमें उत्पादव्ययध्रौव्यरूपता व तीनोंकी पर्यायार्थादेशताका निर्णय—इस कारण यह बात निर्दोष सिद्ध हो जाती है कि तत्त्वके एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समयमें भी उत्पाद आदिक तीन चीजें हैं। तत्त्वका यह लक्षण बताया है कि तत्त्व सत्ता लक्षण वाला है और सत्ताका लक्षण बताया है कि जो उत्पादव्यय ध्रौव्यसे अनुस्यूत हो, तन्मय हो वह सत्ता कहलाती है। तो सत् तत्त्वमें उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों हैं और वे तीनों स्वरूप कब कहलाते जब पदार्थमें प्रतिक्षण ये तीनों तत्त्व हों। सो ये तीनोंकी ही तीनों चीजें पदार्थकी सत्तामें पायी जाती हैं। जो कोई लोग तीन देवताओं की कल्पना करते हैं ब्रह्मा विष्णु महेश और उन देवताओंका प्रयोजन यह बताते हैं कि लोककी याने समस्त पदार्थोंकी सृष्टि संहार और रक्षा करना है। तो जब विश्लेषण किया जाय कि यह बतलाओ कि सबसे पहिले उन तीनों देवताओंमें कौन हुआ ? तो एकदम ही किसी घटनावश कथानकवश कोई लोग यह बात कह भी देते हैं कि पहिले यह हुए, बादमें यह हुए मगर अनेक घटनाओंमें यह भी कह दिया जाता है कि अमुक पहिले हुआ अमुक बादमें हुआ, और कभी ऐसा लगता है कि उसका निर्णय ही नहीं हो पाता कि पहिले कौन हुआ, पीछे कौन हुआ ? सभी पहिले थे, सभी एक समय थे, इस इस तरहके अनुमान बनते हैं, ये अनुमान क्यों बनाये गए ? इन देवताओं की कल्पना वस्तु स्वरूपके उत्पादव्यय ध्रौव्यके प्रतीकरूपमें बनाये गए और उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रति समय है। सदैव पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्य मिलेगा। जब यहाँ उत्पाद की दृष्टि करते हैं तो उत्पादका महत्त्व दिख रहा है, जब व्ययकी दृष्टि रखते हैं तो व्ययका महत्त्व दिखता है। जब ध्रौव्यकी दृष्टि करते हैं तो ध्रौव्यका महत्त्व दिखता है और इस दृष्टिमें ऐसा होता है कि उत्पाद ही ज्येष्ट तत्त्व है, अथवा ध्रौव्य ही महान तत्त्व है या ध्रौव्य ही तत्त्व है। इस प्रकार इस स्वरूपके प्रतीकरूप देवताओंके सम्बन्ध में भी लौकिक महिमा यह बन जाती है कि सबसे बड़ा देव तो ब्रह्मा है कभी यह समझते कि विष्णु हैं यह सबके रक्षक हैं। कभी यह चर्चा हो जाती कि संहार करने वाले महेश ही इनमें श्रेष्ठ देव हैं। ये सब बातें भी क्यों बनती हैं कल्पनामें ? जिस समय जो दृष्टिमें है उस समय उसका ही महत्त्व विदित होता है। इस आधारपर जब जो कार्य दृष्टिमें लिया उस कार्यके प्रतीकका महत्त्व बना। यदि वस्तुमें ही यह स्वरूप मान लिया जाता कि सत्का सत्ताके कारण उत्पादव्ययध्रौय होना स्वरूप ही है तब फिर ये बातें कोई असगत, काल्पनिक नहीं आ जाती। तो उक्त कथनमें यह बात सिद्ध है कि जो है वह उत्पादव्ययध्रौव्यमय ही है, उसमें निरन्तर परिणमन होता है। बस निरन्तर परिणमन होना रहता है इस आधारपर ये तीनों तत्त्व सिद्ध हो जाते हैं। जो हुआ वह उत्पाद, जो न रहा सो व्यय और दोनों ही स्थितियोंमें आधारभूत तत्त्व बराबर ही बना रहा। यों उत्पादव्ययध्रौव्य एक समयमें प्रत्येक पदार्थमें हैं उनमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है।

भवति विरुद्धं हि तदा यदा सतः केवलस्य तत्त्रितयम् ।
पर्ययनिरपेक्षत्वात् क्षणभेदोऽपि च तदैव सम्भवति ॥ २४१ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायनिरपेक्ष केवल द्रव्यमें उत्पादादि न होनेसे तीनोंके विरोधका अनवसर एवं क्षणभेदकी संभावनाका अभाव—उत्पादव्यय और ध्रौव्यमें किसी भी प्रकारसे विरोध नहीं है न तो एक पदार्थमें विरोध है और न एक पदार्थमें एक समयमें विरोध है। इसमें विरोधकी सम्भावना तब हो सकती थी जब कि पर्याय निरपेक्ष केवल पदार्थमें ही उत्पादव्ययध्रौव्य माना जाता। तब तो इन तीनोंका एक साथ विरोध हो सकता था। याने जब पर्याय नहीं मानी जाती, केवल एक परिणामी ही कोई माना जाता तो अपरिणामी अद्वैत पदार्थके उत्पादव्यय और ध्रौव्यमें विरोध हो सकता है तो ऐसा है ही नहीं कि कोई भी सत् बिना पर्यायके होता हो। प्रत्येक पदार्थ परिणामी ही होता है, तो विरोधकी सम्भावना तब थी जब कि पर्यायनिरपेक्ष केवल द्रव्यमें ही ये तीनों धर्म घटाये गए होते। और, उसी समय उनमें समय भेदकी कल्पना भी की जा सकती थी। यदि किसी अपरिणामी तत्त्वमें उत्पादव्ययध्रौव्य माने जाते तो एक समयमें तीनों नहीं हो सकते थे लेकिन ऐसा भी नहीं है, जब सत् परिणामी ही, उसका उत्पादव्ययध्रौव्य चलता ही है तो वे एक समयमें ही तीनों हैं।

यदि वा भवति विरुद्धं तदा यदाप्येकपर्ययस्य पुनः।
अस्त्युत्पादो यस्य व्ययोपि तस्यैव तस्य वै ध्रौव्यम् ॥ २४२ ॥

किसी विवक्षित एक पर्यायका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य न होनेसे तीनोंमें विरोधकी असंभावना—अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें तब विरोध होता जब कि ऐसा माना गया होता कि जिस एक पर्यायका उत्पाद है उस ही पर्यायका व्यय हो और उस ही पर्यायका ध्रौव्य हो। किसी विवक्षित एक ही पर्यायके उत्पादव्ययध्रौव्यको एक समयमें माननेमें विरोध आ सकता था, किन्तु ऐसा भी सिद्धान्त नहीं है। किसी विवक्षित पर्यायकी उत्पत्ति है तो उससे पूर्व पर्यायका विनाश है और दोनों पर्यायोंमें अनुमत तत्त्वका ध्रौव्य है। तो जब किसी एक पर्यायका उत्पाद अथवा व्यय, ध्रौव्य नहीं माना गया है तो वहाँ विरोधकी कोई सम्भावना नहीं रहती।

प्रकृतं सतो विनाशः केनचिदन्येन पर्ययेण पुनः।
केनचिदन्येन पुनः स्यादुत्पादो ध्रुवं तदन्येन ॥ २४३ ॥

एक सत्में अपेक्षासे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धि—प्रकृत सिद्धान्त तो यह है कि किसी पर्यायसे सत्का विनाश है तो किसी अन्य पर्यायसे सत्का उत्पाद है और किसी अन्य पर्यायसे दृष्टिसे उसका ध्रौव्य होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके संबंधमें सिद्धान्त यह है अथवा सत्ताका जो स्वरूप कहा गया है उस स्वरूपमें स्पष्ट बात यह है कि किसी भी पदार्थका नवीन अवस्थाके रूपसे उत्पाद होता है। मूलभूत पदार्थका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पाद नहीं है किंतु उस पदार्थमें जो अवस्था व्यक्त हो रही है उस अवस्थाका उत्पाद है। इसी प्रकार मूलभूत पदार्थका विनाश नहीं है किन्तु अब यह पदार्थ जिस पर्यायमें न रहा उस पर्यायरूपसे विनाश है। इसी प्रकार जब यह दृष्टि जगती है कि समस्त पर्यायोंमें कोई तत्त्व बना रहता है जो कि पर्यायोंरूपसे निरन्तर परिणमता रहता है। तो यों जब भेद दृष्टिसे निरखते हैं तब वहां ध्रौव्य तत्त्व ज्ञात होता है, तो सत्का विनाश नहीं, असत्का उत्पाद नहीं और उत्पादव्यय होते रहनेका जो आधार है वह सदा रहता है, इन्हीं तीनों अंशोंको उत्पादव्यय ध्रौव्य शब्दसे कहा गया है, अथवा यों कह लीजिए कि सत् बनता है, बिगड़ता है और बना रहता है। बनने बिगड़ने और बने रहनेमें ही सत्त्व सम्भव है। यदि कोई पदार्थ बना ही रहता है, बनता, बिगड़ता नहीं है तो बना रहना नहीं बन सकता. इसीप्रकार कोई पदार्थ बिगड़ता ही है. बनता और बना रहता नहीं है तो उसका बिगड़ना भी सिद्ध नहीं हो सकता इसी प्रकार कोइ पदार्थ यदि बनता ही है, बिगड़ना और बना रहना नहीं हो रहा तो बनना भी नहीं बन सकता। तो पदार्थमें किसी अवस्थाके रूपसे उत्पाद है तो उस ही समयमें उस ही अवस्थाको लक्ष्यमें रखकर जब पूर्व पर्यायके रूपमें देखा जाता है तो वहीं व्यय स्वरूप है और चूंकि वह है ही तो, कुछ वहाँ पहिले भी वस्तु थी। अब भी है, आगे भी रहेगी। जिस वस्तुका परिणमन होता है उस वस्तुकी दृष्टिसे उसमें ध्रौव्य है।

संदृष्टिः पादपवत् स्वयमुत्पन्नः सदंकुरेण यथा।
नष्टो बीजेन पुनर्ध्रुवमित्युभयत्र पादपत्वेन ॥ २४४ ॥

एक सत्में एक ही समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य होनेका एक दृष्टान्त—उत्पाद आदिक परस्परमें अविरुद्ध हैं अर्थात् एक पदार्थमें उस एक ही समयमें रह सकता है। इस सिद्धान्तको घटित करनेके लिए दृष्टान्त दे रहे हैं जैसे वृक्ष सत्रूप अंकुरसे स्वयं उत्पन्न होता है और बीज रूपसे स्वयं नष्ट होता है और वृक्षपनेकी दृष्टिसे अंकुर अवस्था और बीज व्ययमें दोनों जगह ध्रुव है। यहाँ वृक्ष माना है उस पदार्थको कि जिसने परिणमन बीज अंकुर आदिरूप होते रहते हैं। तो ऐसा वृक्ष उन सब पर्यायोंमें है और जब अंकुर रूप बन रहा है। वहाँ किसी असत्का उत्पाद नहीं है। सद्भूत वह वृक्ष ही इस समय अंकुर रूपसे व्यक्त हो रहा है। इसी प्रकार जब बीज रूपसे व्यय हुआ तो हुआ क्या वहाँ कि वही वृक्ष अब बीजरूप पर्यायसे विलीन हो गया है। तो यों उस एक वृक्षमें अंकुर अवस्थाका उत्पाद, बीज अवस्थाका व्यय और वृक्षपनेका ध्रौव्य है। इसी प्रकार समस्त पदार्थ जो भी सत् हैं वे वर्तमान अवस्थाका उत्पादरूप हैं, पूर्व अवस्थाका व्ययरूप हैं और यह उत्पाद व्ययकी परम्परा जैसे चलती है वह तो एक ही कुछ है। उस दृष्टिसे वहाँपर ध्रौव्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न हि बीजेन विनष्टः स्यादुत्पन्नश्च तेन बीजेन ।
ध्रौव्यं बीजेन पुनः स्यादित्यध्यक्षपक्षवाध्यत्वात् ॥ २४५ ॥

एक सत्‌में नियत एक पर्यायरूपसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अभाव—उक्त दृष्टान्तमें ऐसा भी न समझना चाहिए कि वृक्ष बीजरूपसे ही तो नष्ट होता हो और उसी बीजरूपसे उत्पन्न होता हो एवं उस ही बीज रूपसे ध्रुव रहता हो, क्योंकि ऐसी मान्यता प्रत्यक्ष विरुद्ध है। देखते ही हैं सामने, अथवा मिट्टी घड़ेका दृष्टान्त ले लो। जब घड़ा बना तो उस समयमें मृत पिण्डका व्यय हो गया वहाँ यह बात तो नहीं है कि वह मृतपिण्डरूपसे ही चीज नष्ट हुई है तो पिण्डरूपसे उसी समय उत्पन्न हुई हो और पिण्डरूपसे उसी समय उसका ध्रौव्य माना जा रहा हो, ऐसा वहाँ नहीं है, ऐसा भी नहीं है कि जिस समय घड़ा बना तो घड़े रूपसे उत्पाद हुआ हो और उस समय घड़ारूपसे ही व्यय हुआ हो, और ध्रौव्य भी घड़ारूपसे ही हुआ यह बात सम्भव नहीं है। इसी कारण उत्पादव्ययध्रौव्यमें विरोध नहीं है। पदार्थ किसी अन्य पर्यायके रूपसे उत्पन्न होता है और अन्य पर्यायके रूपसे विलीन होता है और मूलभूत पदार्थ जिसमें उत्पादव्ययकी सजावट चलती रहती है वह ध्रुव ही रहता है।

उत्पादव्ययोरपि भवति यदात्मा स्वयं सदेवेति ।
तस्मादेतद्द्वयमपि वस्तु सदेवेति नान्यदस्ति सत् ॥ २४६ ॥

सत्‌की उत्पादव्ययस्वरूपता—उत्पाद व्यय दोनोंकी ही आत्मा अर्थात् प्राणभूत स्वयं सत् ही है, अर्थात् सत् ही उत्पाद व्यय स्वरूप है। उत्पाद व्यय दोनों ही सद्वस्तु स्वरूप हैं। सत्‌से भिन्न उत्पाद और व्यय कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। सत् ही किस व्यक्तिमें आया है, किस अवस्थारूपमें प्रकट हो रहा है इसका निरखना ही तो उत्पाद है और जब किसी अवस्थारूपमें व्यक्त हुआ है तो वह पहिली अवस्था रूपमें विलीन है। इसका दिखना ही व्ययका स्वरूप सिद्ध करता है। तो उत्पाद और व्यय ये दोनों सत् स्वरूप हैं, कोई नवीन पृथक वस्तु नहीं हैं। इसी कारण एक सत्‌में उत्पादका विरोध नहीं है और उसके साथ ही साथ ध्रौव्य धर्मका भी विरोध नहीं है। चीज है और नई अवस्थामें आयी है, पुरानीअवस्था अब उसमें रही नहीं, ऐसा ही इन समस्त दृष्टगत् पदार्थोंमें विदित हो रहा है और युक्तिसे यह निर्णय होता है कि समस्त पदार्थ इसी रूपमें हैं अन्यथा उनका सत्त्व हो ही नहीं सकता।

पर्यायादेशत्वादस्त्युत्पादो व्ययोस्ति च ध्रौव्यम् ।
द्रव्यार्थादेशत्वान्नप्युत्पादो व्ययोपि न ध्रौव्यम् ॥ २४७ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर्यायार्थादेशसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धि—अब इस गाथामें यह बतला रहे हैं कि उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनोंका परिचय होना किस दृष्टिमें बनता है। दृष्टियोंमें मूल दो भेद हैं—एक भेददृष्टि और एक अभेद दृष्टि। अभेद दृष्टिमें तो अद्वैत एक अखण्ड पदार्थ ही प्रतीत होता है और पदार्थ स्वयं कैसा है? यह अभेद दृष्टिमें ज्ञात होता है। लेकिन उसका कथन और दूसरोंको समझाना अभेद दृष्टिमें रहकर नहीं बन सकता है। भेददृष्टि आनी ही पडती है। अथवा यों कह लीजिए कि परमार्थ दृष्टि तो अभेद दृष्टि है और तीर्थ प्रवृत्ति करनेके लिए भेददृष्टि हुआ करती है। तो जब उस अभेद अखण्ड वस्तुको समझानेका प्रयत्न होता है तो वहां भेददृष्टि होनी ही पड़ती है। तो एक दृष्टिमें जो कि जैसा है वैसा ज्ञान आ भी जाय, आ गया लेकिन अब उसका कथन जब करना होगा अथवा दूसरोंको समझाना होगा तो उस अभेद अखण्ड सत्में भेद करना पड़ेगा और उस ही दृष्टिके परिणाममें यह उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों बातें सिद्ध हो रही हैं। सत् किसे कहते हैं? सत् उसे कहते हैं जो है' बना हुआ है, जो रहता है, जिसका अस्तित्त्व है। अब किसका अस्तित्त्व है और वह अस्तित्त्व क्या कहलाता है? यह बात उत्पादव्ययध्रौव्य धर्मके बताये बिना घटित नहीं हो सकती। जिसमें उत्पाद हो, व्यय हो और ध्रौव्य हो वह सत् कहलाता है। यों कहकर ही सतको समझाया जा सकता है। इसी कारण बताया गया है कि जो भी पदार्थ है वह सत्तासे सत् है और सत्ता होती है उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणरूप। ऐसी सत्तासे अनुस्यूत पदार्थ हुआ करता है। सत्त्वका लक्षण ही है यह उत्पादव्ययध्रौव्य। यदि इसके विरुद्ध कोई सत् उदाहरणमें आ सके तब इसमें विरोध की सम्भावना करे कोई, लेकिन कोई भी सत् ऐसा नहीं है कि जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य न होता हो।

आकाश द्रव्य जैसे व्यापक सूक्ष्म विशुद्ध अमूर्त पदार्थमें भी उत्पाद व्ययध्रौव्यकी सिद्धि – एक आकाश नामका पदार्थ है जो अमूर्त है। समस्त द्रव्योंके अवगाह देनेका कारणभूत है, उस आकाशमें भी निरन्तर प्रतिसमय परिणमन होता रहता है। परिणमन उसका क्या बताया जाय? आकाश अभी किस रूप परिणमा है पहिले किस रूप परिणमा था? यह बात नहीं बतायी जा सकती। क्योंकि क्या है परिणमन? नहीं बताया जा सकेगा! फिर भी आकाश चूंकि सत् है इसलिए उसमें निरन्तर उत्पाद व्यय भी होता रहता है। और, यह उत्पाद व्यय किसी पर पदार्थका निमित्त पाकर नहीं हो रहा। जो भी हम उत्पाद व्यय बता सकेंगे, किसी भी पदार्थ का हम सर्ग संहार बता सकेंगे तो किसी पर पदार्थका सम्बंध लगाकर बता सकेंगे। पर पदार्थके सम्बन्ध बिना उत्पाद व्ययका कथन कहीं भी नहीं किया जा सकता। तो चूंकि आकाशका यह परिणमन स्वाभाविक है, अतः उसमें पर पदार्थका सम्बन्ध लगा कर वर्णन नहीं किया जा सकता कि आकाशमें कैसा उत्पाद व्यय होता है और कैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यय होता है, फिर भी काल द्रव्य समस्त द्रव्योंके परिणमनका साधारणतया निमित्त भूत है. तब यह कहा जा सकेगा कि काल द्रव्यके समय पर्यायका निमित्त पाकर आकाश द्रव्यमें परिणमन चल रहा है। वह परिणमन वस्तुमें रहने वाले अगुरुलघुत्व नामके निमित्तसे षड्गुण हानि वृद्धिरूप स्वयं चलता है जिससे कि अर्थ पर्यायकी व्यवस्था बनती है। परिणमनमें यह पड़ा ही हुआ है कि हानि वृद्धि हुए बिना परिणमन नहीं कहलाता। और हानि वृद्धि क्रमसे भी और एक साथ भी सम्भव होती है। जो तरंगें होती हैं उन तरंगोंमें प्रकाशकी तरंगोंमें हानि वृद्धि एक साथ भी विदित हुआ करती है। किसी रूपमें हानि और किसी रूपमें वृद्धि ये भी सम्भव हैं। तो हानि वृद्धि हुए बिना परिणमनकी बात नहीं आती। एक समयका परिणमन न रहे और दूसरे समयका परिणमन आये यह बात यद्यपि एक ही समयमें हैं लेकिन यह हानि वृद्धि भी अवक्तव्यरूपसे हुआ ही करती है। तो आकाशद्रव्यमें जो भी परिणमन हो रहा है वह आकाशमें अपने आपमें स्वयं हो रहा है। तो परिणमन वहाँ भी चल रहे हैं। तो पदार्थ अशुद्ध और शुद्ध हुआ करते हैं। उनमें भी परिणमन इसी भाँति चला करता है। तो 'वस्तु है' यह भी तब ही सिद्ध होता है जब कि वह परिणमता रहे। परिणमन माननेपर उत्पाद और व्यय दोनों ही मानने पड़ते हैं। किसी अवस्था से उत्पाद हुआ है तो किसी अवस्थासे व्यय हुआ है। अब उत्पादव्यय वाले पदार्थमें जो ध्रौव्यको निरखनेकी दृष्टि है वह भी भेददृष्टि है और भेददृष्टिका नाम ही पर्यायार्थिक नय है। तो यों उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही पर्यायदृष्टिसे माने गए हैं।

ननु तोत्पादेन सता कृतमसतैकेन वा व्ययेनाऽथ।
यदि व ध्रौव्येण पुनर्यदवश्यं तत्त्रयेण कथमिति ॥ २४८ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे किसी एकका मानना ही पर्याप्त होनेसे तीनोंके माननेकी व्यर्थताकी शङ्काकारकी आरेका - शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि सत् कोई या तो उत्पाद रूप ही मानो या असत्रूप याने व्ययस्वरूप ही मानो या ध्रौव्यरूप ही मानो ! तीनों स्वरूप वस्तुको कैसे माना जा रहा है ? जिस समय दृष्टिमें जो कुछ दृष्टगत होता है, उस समय उस दार्शनिकके लिये वही मात्र तत्त्व है। इस विधिमें जब वस्तुको उत्पाद स्वरूप देखा जा रहा है, केवल इस विधिसे ही निरखा जा रहा है कि यह क्या हो रहा है ? अवस्थायें उत्पन्न होती जाती हैं— एकके बाद एक अवस्था उत्पन्न होती है, यह धारा चलती रहती है। यों पदार्थको उत्पाद स्वरूप ही निरखा जाता है। तो पदार्थ केवल उत्पादस्वरूप ही कहना चाहिए अथवा जब कभी व्ययकी ओर दृष्टि जाती है कि हो क्या रहा है ? बस जो होता है नष्ट होता जाता है, पदार्थमें अनन्त पर्यायें पड़ी हैं और जब आविर्भाव होता तो होता क्या है ? छोटा बड़ी होती जाती हैं। तो जो पदार्थमें अनन्त पर्यायें हैं वे क्रमशः

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विलीन होती जाती हैं। वस्तुमें यही होना रहता है। यों वस्तु केवल व्ययस्वरूप ही प्रतीत होता है। तो जब ध्रौव्यकी दृष्टिसे देखते हैं कि है क्या ? पदार्थ सतत् वहीका वही है, तो पदार्थ ध्रौव्यरूप प्रतीत होता है। तो यों पदार्थोंको उत्पाद ही कहो या व्यय ही कहो या ध्रौव्य ही कहो ! पदार्थमें ये तीनों रूप कैसे माने जाते हैं ? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

तन्न यदविनाभावः प्रादुर्भावध्रुवव्ययानां हि।
यस्मादेकेन विना न स्यादितरद्द्वयं तु तन्नियमात् ॥ २४९ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनोंकी परस्पर अविनाभाविता होनेसे तीनोंके माननेसे ही वस्तुत्वकी सिद्धि बनाते हुए शङ्काकारकी शङ्काका समाधान— शङ्काकारकी उक्त शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंका अविनाभाव सम्बन्ध है। अविनाभाव उसे कहते हैं कि जिसके बिना दूसरा न हो। उन दोनोंमें अविनाभाव कहा जायगा। यहाँ तीनोंमें अविनाभाव है। मानो एकको छोड़कर शेषके दोनों नहीं टिक सकते हैं तो जब उत्पादव्ययमें अविनाभाव है तो कैसे न वस्तुको त्रियात्मक माना जायगा ? जहाँ एक है वहाँ तीनों ही हैं। जहाँ एक नहीं वहाँ तीनों ही नहीं इस कारण सद्भूत वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप ही होगा। उनमेंसे एक अंश रहे, ऐसा वस्तुमें कभी नहीं हो सकता। और, इस विषयमें पहिले भी बहुत कहा जा चुका है कि जो उत्पादका क्षण है, जो उत्पादकी अवस्था है उसीको लक्ष्यमें रखकर अन्य पूर्व अवस्थाकी अपेक्षासे व्यय कहा जाता है। और ध्रौव्य तो सतत् है ही, तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों ही निरन्तर रहते हैं इस लिए वस्तु त्रियात्मक ही सिद्ध होता है।

अपि च द्वाभ्यां ताभ्यामन्यतमाभ्यां विना न चान्यतरत्।
एकं वा तदवश्यं तत्त्रयमिह वस्तु संसिध्यै ॥ २५० ॥

उत्पादव्ययध्रौव्यमेंसे किसी एकके माने बिना दो की असिद्धिकी तरह किन्हीं भी दोके माने बिना एककी असिद्धिका प्रतिपादन— अथवा बिना किन्हीं दोके माने एक भी नहीं रह सकता। जैसे ऊपरकी गाथामें बताया था कि उत्पादव्यय ध्रौव्य इन तीनोंमेंसे कुछ भी एक न माना जाय तो बाकीके दो ठहर नहीं सकते हैं। इस गाथामें यह बता रहे हैं कि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंमेंसे कुछ भी दो मान लिए जायें तो बाकीका एक ठहर ही नहीं सकता, इस कारण यह आवश्यक है कि वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हो, तब ही उसकी सत्ता कही जा सकती है, इन तीनोंमेंसे किसी भी एककी या दो की उपेक्षा करदी जाय तो वस्तुका अस्तित्त्व नहीं बन सकता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। जगतमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंमेंसे किसी एकमें कम हो और वस्तु बनी रहे। पदार्थ अनन्तानत हैं। अनन्त जीव, अनन्त गुने पुद्गल एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य, ये सभी अनन्त पदार्थ जातिकी अपेक्षासे तो ६ प्रकारके कहे गए हैं पर व्यक्तिश: वे सब अनन्तानन्त हैं उन सब अनन्तानन्त पदार्थोंमें प्रत्येकमें उत्पादव्ययध्रौव्य निरन्तर रहता ही है, इस कारण वस्तु त्रियात्मक ही है। उसमें एक दो अंशोंकी कल्पना की जाय और शेष न माने जायें, इससे उसका अस्तित्व ही न बन सकेगा।

अथ तद्यथा विनाशः प्रादुर्भावं बिना न भावीति।
नियतमभावस्य पुनर्भावेन पुरस्सरत्वाच्च ॥ २५१ ॥

उत्पादके बिना व्ययके अभावका प्रसंग—उक्त कथनका ही यहाँ स्पष्टीकरण किया जा रहा है कि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंका परस्पर अविनाभाव है। देखिये ! यदि इन तीनोंमेंसे उत्पादको नहीं माना जाता तो उत्पादके बिना विनाश भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि किसी भी पदार्थका अभाव भावपूर्वक ही होता है। जैसे उदाहरण लो कोई घड़ा है और घड़ेका व्यय करना है तो घड़ेका विनाश तो हो जाय और खपरियाँ उत्पन्न न हों क्या ऐसा किया जा सकता है ? खपरियोंके उत्पाद बिना घड़ेका नाश नहीं हो सकता। घड़ेमें डोकर तेजीसे मार दी और घड़ा चूर हो गया, इससे क्या हो गया ? खपरियाँ हो गयीं। तो उन खपरियोंका होना ही तो खपरियोंका विनाश कहलाता है। कोई कहे कि इस घड़ेको फोड़ दें किन्तु खपरियाँ न बन सकें तो ऐसा नहीं हो सकता। किसी भी पदार्थ की पर्याय विनाश उत्तर पर्यायके हुए बिना हो ही नहीं सकता। अथवा विनाश और उत्पाद वहाँ कोई भिन्न भिन्न समयमें नहीं है। पदार्थमें प्रतिसमय एक एक अवस्था होती जाती है, यही क्रम अनादिसे अनन्द काल तक समस्त पदार्थोंमें चला करता है। तो प्रतिक्षण जो अवस्था बनी तो वहाँ प्रतिक्षण हुआ क्या?नवीन नवीन अवस्था, बस हो यही रहा है। नवीन नवीन अवस्थायें होती चली जा रही हैं। बस किसी भी अवस्थाको पूर्व अवस्थाका व्यय कहा जायगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि पहिले पूर्व अवस्था हो, दूसरे क्षणमें पूर्व अवस्थाका नाश हो और तीसरे क्षणमें नवीन अवस्थाका उत्पाद हो। यदि ऐसा कोई माने तो उसका यह अर्थ होगा कि दूसरे समयमें कोई पदार्थ ही न रहा। जब अवस्था न रही, मूलतः नाश हुआ तो फिर पदार्थ ही क्या रहा इस कारण यह निर्णय प्रत्येक पदार्थकी उस पदार्थमें प्रतिक्षण प्रतिसमय नवीन नवीन अवस्थायें होती चली जाती हैं। बस किसी भी नवीन अवस्थाको पूर्व अवस्थाका व्यय कहा तो उत्पादके बिना व्ययका मानना सिद्ध नहीं हो सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पादोपि न भावी व्ययं विना वा तथा पूर्तात्वात् ।
पूत्यग्रजन्मनः किल भावस्याभावतः कृतार्थत्वात् ॥ २५२ ॥

व्ययके बिना उत्पादके अभावका प्रसङ्ग जिस प्रकार उत्पादके बिना व्यय नहीं हो सकता इसी प्रकार व्ययके बिना उत्पाद भी नहीं हो सकता। जैसे किसी से कहा जाय कि घड़ेकी खपरियाँ बना दी जायें पर घड़ा न फूटे तो ऐसा किया जा सकेगा क्या ? तो घड़ेका व्यय हुए बिना खपरियोंका उत्पाद नहीं हो सकता । ऐसा प्रतीत भी है कि नवीन जन्म लेनेका भाव अभावसे ही कृतार्थ होता है। जैसे कोई नया जन्म हुआ तो नया जन्म होनेका अर्थ है कि पुराना जन्म मिट गया। नया भव जीवको मिला तो क्या नया भव पूर्वभवके अभाव बिना प्राप्त हो सकता है ? मरण बिना क्या जन्म हो सकता है ? किसी भवका मरण ही तो नवीन भवका जन्म है। तो जन्म भी मरणके बिना न हो सकेगा। तो व्ययके बिना उत्पाद भी सम्भव नहीं है। अतः इन तीनों अंशोंमें यदि व्ययको न माना जाय तो उत्पाद भी न बन सकेगा।

उत्पादध्वंसौ वा द्वावपि न स्तो विनापि तद्ध्रौव्यम् ।
भावस्याऽभावस्य च वस्तुत्वे सति तदाश्रयत्वाद्वा ॥ २५३ ॥

ध्रौव्यके बिना उत्पादव्ययके अभावका प्रसङ्ग—जिस तरह उत्पादके बिना व्यय सम्भव नहीं, व्ययके बिना उत्पाद सम्भव नहीं इसी प्रकार ध्रौव्यके बिना उत्पाद व्यय दोके बिना ध्रौव्य सम्भव नहीं क्योंकि विशेषके अभावमें सामान्यका अभाव है। सामान्यके अभावमें विशेषका भी अभाव है। जैसे मनुष्य सामान्य तो माना न जाय और बालक जवान बूढ़ा हो जाय तो यह तो न बन सकेगा। अथवा बालक जवान बूढ़ा आदिक कोई अवस्था न मानी जाय और मनुष्य मान लिया जाय ऐसा भी नहीं हो सकता। उत्पादव्यय किसमें हुआ करता है कोई एक पदार्थ रहने वाला तो हो। जैसे एक ही अंगुली सीधीकी, टेढीकी, गोलकी तो ये अवस्थायें किसी एकमें ही तो हुई। कोई एक ही तो वस्तु है जो इन पर्यायोंमें आती गई है, तो ध्रौव्य माने बिना उत्पाद व्यय नहीं बन सकता। उत्पादमें क्या हुआ ? नवीन अवस्था हुई। तो जिसका व्यय हुआ, जिसकी नवीन अवस्था हुई वह एक है। यदि यों एक न माना जाय तो यह असत् उत्पादका सिद्धान्त बन बैठेगा और असत्का उत्पाद सम्भव ही नहीं है। तो यों ध्रौव्य न माननेपर उत्पाद व्यय भी न बन सकेगा। और उत्पादव्यय न माननेपर ध्रौव्य भी न बन सकेगा। उत्पादव्यय यह तो विशेष है क्योंकि इसमें परिवर्तन है, व्यतिरेक है। विशेषकी पहिचान व्यतिरेक है। जैसे नीला कमल कहा तो नीला कमल यह विशेष हो गया। कमल सामान्य हो गया। तो कैसे समझा कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नीला कमल विशेष कहलाया ? नीला कमल, न कि लाल पीला आदिक। तो लाल, पीला, सफेद आदिक कमलका व्यतिरेक हुआ। इसी आधारपर विशेष माना जाता है। तो उत्पाद व्यय विशेष हैं, जितने उत्पाद व्यय होते वे सब परस्पर व्यतिरेक हैं, कथमें भी व्यतिरेक है, किन्तु ध्रौव्य सामान्य है क्योंकि ध्रौव्य में यह वही है- यह वही है, यह प्रत्यय हो रहा है। सामान्य में भी यह पहचान होती है कि जहाँ यह समझा जाय यह वही है, जैसे बालक जवान बूढ़ा बना तो वहाँ पहिचान हुई कि यह तो वही है, बालक था तो क्या ? वही है। तो ध्रौव में भी इस प्रकार सामान्यकी झलक होती है। तो विशेष बिना सामान्य नहीं होता और सामान्य बिना विशेष नहीं होता इस कारण उत्पादव्यय बिना ध्रौव्य नहीं बन सकता और ध्रौव्य बिना उत्पादव्यय नहीं हो सकता इस कारण वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक ही मानना चाहिए।

वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक स्वीकार कर लेनेपर दर्शन विवादोंकी समाप्ति—कोई वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य स्वीकार करले तो उसकी अनेक समस्यायें सुलझजाती हैं। वस्तु नित्य है अथवा अनित्य है ? वस्तु एक है अथवा अनेक है, वस्तु सत्रूप है या शून्य रूप है ? कितने ही प्रश्न उठाये जायें वे सब हल होते जाते हैं एक वस्तुका उत्पादव्यय ध्रौव्य मान लेनेसे। वस्तु नित्य है क्योंकि वस्तुका ध्रौव्य अंश नित्यताका समर्थन करता है। वस्तु अनित्य है, क्योंकी उत्पादव्ययधर्म वस्तुकी अनित्यताको सिद्ध करता है। वस्तु एक है, एक ही वस्तु एक है, यह ध्रौव्यने जताया। एक ही वस्तु अनेक है यह उत्पादव्ययने जताया। उत्पादव्यय धर्मसे नवीन-नवीन अवस्थायें बनती हैं, पदार्थ जब जिस अवस्थामें होता है पदार्थ तन्मात्र है। तब जब अवस्थायें बदलती हैं, उनमें व्यतिरेक है तो अवस्थाके समयमें जो अवस्थावान है, अवस्था अवस्थावान अभेद करके निरखा जाय तो पदार्थ अनेक हो गया। तो यों पदार्थके सम्बन्धमें सामान्य विशेष नित्य अनित्य एक अनेक आदिक जितने भी प्रश्न उठे उन सब प्रश्नोंका समाधान हो जाता है वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य माननेसे।

अपि च ध्रौव्यं न स्य दुत्पादव्ययद्वयं बिना नियमात् ।
यदिह विशेषाभावे सामान्यस्य ज सतोप्यभावत्वात् ॥ २५४ ॥

विशेषके अभावमें सामान्यके अभावका भी प्रसंग होनेसे उत्पादव्ययके बिना ध्रौव्यकी भी असंभूतिका प्रसंग—उत्पाद व्ययके बिना ध्रौव्य भी नहीं ठहर सकता क्योंकि जहाँ विशेषका अभाव है वहाँ सामान्य सत्का भी अभाव है। विशेष न हो तो सामान्य कहाँ ठहरेगा ? जैसे कि बालक जवान, बूढा आदिक विशेष हुए तब ही तो मनुष्य सामान्य रह सकेगा। तो यों ही ध्रौव्यका अभाव क्या है कि उत्पाद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ययकी धारा चलती रहे और जिसका उत्पाद व्यय होता है वह बना रहे तो उत्पाद व्यय ही जब न रहा तो ध्रुवता किसकी ? ध्रुवताका अर्थ है निरन्तरता जो अन्तर रहित बराबर रहे, तो रहना उत्पादव्ययके बिना सम्भव ही नहीं है। तो सामान्य के बिना विशेष नहीं हो सकता और विशेषके बिना सामान्य नहीं हो सकता। अतएव उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही मानने पड़ेंगे। अन्यथा व्यवस्था नहीं बन सकती है। अब उक्त कथनका सारांश कहते हैं।

एवं चोत्पादादित्रयस्य साधीयसी व्यवस्थेह।
नैवान्यथाऽन्यनिन्हवदतः स्वस्यापि घातकत्वाच्च ॥ २५५ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे किसी भी अन्यका निषेध करनेसे खुदका भी विघात होजानेकी आपत्ति होनेसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताकी व्यवस्थाकी समीचींनता—ऊपर जो उत्पादव्ययध्रौव्यकी व्यवस्था बताई गई है वह बिल्कुल ही युक्तिसङ्गत है अन्यथा अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य दोनों न माने जायें तो किसी एकका अपलाप करनेपर शेषका अपव्यय हो जाता है। जैसे कि कहा ही गया था कि उत्पाद माना जाय तो व्यय ध्रौव्य भी न माना जा सकेगा। इसी प्रकार ध्रौव्यमें भी कोई एक या दो न माने जायें तो ध्रौव्य भी न बन सकेगा, इस कारण यह व्यवस्था ठीक है। वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है और तीनोंके तीनों एक ही पदार्थमें एक साथ रहते हैं। यह वस्तुका स्वरूप हैं जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। चेतन अचेतन पदार्थ में सर्वत्र विदित होता कि प्रत्येक पदार्थ अपने आप ही स्वभावसे उत्पादव्ययध्रौव्य वाला है। तब ही इस जगतकी व्यवस्था है। यह समस्त जगत अनादि अनन्त है। इसमें प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपनी प्रकृतिके कारण निरन्तर परिणमता रहता है। तभी इसकी अब तक सत्ता है और भविष्यमें अनन्त काल तक सत्ता रहेगी। यों तत्त्वका लक्षण सत् है। सत्का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यमयता है और इसी लक्षणके अनुसार वस्तुमें वस्तुत्व है। अर्थक्रिया होती है, उनका अस्तित्व रहता है। अतएव उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त समस्त पदार्थ हैं, यह बात माननी ही होगी।

अथ तद्यथा हि सर्गं केवलमेकं हि मृगयमाणस्य।
असदुत्पादो वा स्यादुत्पादो वा न कारणाभावात् ॥ २५६ ॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे केवल उत्पादको माननेमें दोष—उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे यदि केवल उत्पादको ही माना जाय तो ऐसे मंतव्यमें असत्का उत्पाद होने लगेगा, किंतु सिर्फ उत्पाद ही माना व्यय नहीं माना। व्यय माननेपर यह व्यवस्था बनती थी कि एक अवस्थाका व्यय हुआ, दूसरी अवस्थाका उत्पाद हुआ। तो पूर्वाव-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्था किसी पदार्थकी ही तो थी । वह पदार्थ सत् है, पहिलेसे था । तो सत्में ही नवीन अवस्थाका उत्पाद बनता था । अब व्यय तो माना नहीं जा रहा, केवल उत्पाद ही माना जा रहा तो अर्थ यह हुआ कि असत्का उत्पाद होगा अथवा कारणका अभाव होनेसे उत्पाद ही न होगा । उत्पादका कारण व्यय है । पूर्व अवस्थाका व्यय उत्तर अवस्थाका उत्पाद कहलाता है । तो यह कारण कार्य एक समयमें है । अथवा जब उत्पाद ही माना गया तो इसका अर्थ है कि उत्पादसे पहिले कुछ न था । तो जब उपादान कारण ही कुछ नहीं है तो अब उत्पन्न ही क्या होगा ? तो केवल उत्पाद मानना यह भी दोषमें आता है । एक तो असत्के उत्पादका प्रसंग हो जायगा, दूसरे उपादान कारणका अभाव होनेसे अब उत्पाद ही न हो सकेगा, अतः केवल उत्पादकी मान्यता ठीक नहीं है । वस्तुमें उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों ही धर्म मानना चाहिये ।

अप्यथ लोकयतः किल संहारः सर्गपक्षनिरपेक्षम् ।
भवति निरन्वयनाशः सतो न नाशोऽथवाप्यहेतुत्वात् ॥२५७॥

उत्पादव्यय ध्रौव्यमेंसे केवल व्ययको ही माननेमें दोष—जो लोग उत्पाद तो नहीं मानते केवल व्ययको ही मानते तो उनके मंतव्यमें सत्का निरन्वय सर्वथा असत् होनेका प्रसंग आता है । उत्पाद तो माना नहीं । जब नवीन अवस्था उसमें बनती नहीं, आगे कुछ रहना नहीं तो इसका अर्थ है कि जो सद्भूत वस्तु है उसका निरन्वय न होगा । अब आगे उसका कुछ भी नहीं चल सका तो व्यय मात्र माना जाय तो उसमें यह दोष आता है कि वस्तुका सर्वथा अभाव हो जायगा । दूसरा दोष यह आता है केवल व्ययके माननेमें, उत्पादकी अपेक्षा न रखनेमें कि उत्पाद तो माना नहीं अब व्ययका कारण क्या रहा ? देखते हैं कि घडेमें खपरियाँ बनती हैं तो उसीके मायने घडेका व्यय है । तो जब उत्पाद व्यय नहीं माना गया, कोई नवीन अवस्था बनती नहीं तो कारणके अभावमें उसका नाश भी नहीं हो सकता । जैसे उत्पादका कारण व्यय था । तो ऐसे ही यहाँ भी बताया जा रहा है कि व्ययका कारण उत्पाद है । नई अवस्था बनानेके कारणसे ही पुरानी अवस्थाका व्यय होता है । जैसे जवान हुआ तब ही तो बचपन मिटा । बचपन मिट जाय और कुछ दूसरी बात न आये ऐसा कैसे हो सकेगा ? तो केवल व्ययको माननेमें भी अनेक दोष बताये हैं, इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों माननेपर वस्तु स्वरूपकी सिद्धि होती है ।

अथ च ध्रौव्यं केवलमेकं किल पक्षमध्यवसतश्च ।
द्रव्यमपरिणामि स्यात्तदपरिणामाच्च नापि तद्ध्रौव्यम् ॥२५८॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे केवल ध्रौव्यको ही माननेमें दोष—जैसे केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पादके माननेमें दोष था केवल व्ययके माननेमें दोष था, इसी प्रकार केवल ध्रौव्यके माननेमें भी दोष है। जो लोग उत्पाद व्ययको नहीं मानते, केवल ध्रौव्यको ही मानते हैं उनके मंतव्यमें द्रव्य अपरिणामी हो जायगा क्योंकि उत्पाद व्यय तो माना नहीं, नई अवस्था बनी पुरानी अवस्था मिटी, इसीके मायने तो परिणमन है। परिणमन बदल और कहते किसे हैं? तो उत्पाद व्यय तो माना नहीं इसका अर्थ यह है कि वस्तुमें परिणमन नहीं होता, वस्तु अपरिणामी हो गया। और जब वस्तु अपरिणामी है तो उसका ध्रौव्य भी नहीं बन सकता। ध्रौव्यका मर्म तो यह है कि निरन्तर उसमें परिणमन चलता रहे, परिणमनेकी धारा न टूटे। तो वह निरन्तरता अब कहाँ रही और अपरिणामी तो सत् भी नहीं होता। कोई पदार्थ ऐसा नहीं हो सकता कि जो हो और उसमें परिणमन हो। चाहे शुद्ध अमूर्त पदार्थ भी हो, जहाँ परिणमन कुछ विदित नहीं होता वहाँ भी आगममें बताया गया है और कुछ युक्तियोंसे ज्ञात होता है निरन्तर परिणमन होता ही रहता है। तो केवल ध्रौव्यके माननेमें यह दोष आता है कि वस्तु अपरिणामी बन जायगा और अपरिणामी होनेसे ध्रौव्य भी न बन सकेगा अथवा असत् हो जायगा। कोई वस्तु ही न रहेगी, इसकारण केवल ध्रौव्य मानकर भी सन्तोष नहीं किया जा सकता। वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही धर्म मानने होंगे।

अथ च ध्रौव्योपेक्षितमुत्पादादिद्वयं प्रमाणयतः।
सर्वं क्षणिकमिवैतत् सदभावे वा व्ययो न सर्गश्च। २५६।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमेंसे केवल उत्पाद व्ययको ही माननेमें दोष अब कोई पुरुष ध्रौव्यको न मानकर केवल उत्पाद व्यय इन दोनोंको ही मानले तो वहाँ क्या दोष आता है तो बता रहे हैं? ध्रौव्यरहित केवल उत्पादव्यय दोनोंको ही माननेवालोंके मतमें सभी चीजें क्षणिक हो जायेंगी। जैसे ध्रौव्य तो माने नहीं उत्पाद माने अब उत्पन्न हो रहा फिर हुआ फिर हुआ तो क्षणिक ही तो रह गया। अथवा व्ययकी दृष्टिसे देखें तो ध्रौव्य माना नहीं। नष्ट हुआ, नष्ट हुआ तो क्या नष्ट हुआ? वे अनेक पदार्थ नष्ट हो गया एक ही पदार्थमें तो यह नहीं कह सकते कि अभी यह नष्ट हुआ फिर वही फिर वही नष्ट हुआ इस प्रकार कहा जाना तो ध्रौव्यकी मान्यता आयगी। जिसमें वही शब्द चले उसमें ध्रौव्य सिद्ध होता है। तो ध्रौव्य न माननेपर उत्पादव्यय मात्र माननेपर सब कुछ क्षणिक सही बन जायगा एक दोष तो यह है। दूसरी बात है कि कोई ध्रुव पदार्थ यदि नहीं है तो सत् ही नहीं है समझिये सत् पदार्थके अभावमें न तो उत्पाद बन सकता है और न व्यय बन सकता है। कोई मूलमें सत् हो, पदार्थ हो तब तो कहा जाय कि इसमें यह नई अवस्था बनी और पुरानी अवस्था विलीन हुई, पर मूल ही नहीं तो उत्पादव्ययध्रौव्य किसका माना जाय? तो ध्रौव्यके न माननेपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पाद व्ययकी सिद्धि नहीं होती, इस कारण वस्तुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही धर्म मानने चाहियें।

एतद्दोषभयादिह प्रकृतं चास्तिक्यमिच्छता पुंसा।
उत्पादादीनामयमविनाभावोऽवगन्तव्यः ॥ २६० ॥

आस्तिक्यके इच्छुक पुरुषोंको उत्पादव्ययध्रौव्यकी अविनाभाविताके अवगमकी सर्वप्रथम आवश्यकता—उत्पादव्ययध्रौव्यके इस प्रकरणमें अंतिम निर्णय देते हुए इस प्रसङ्गको समाप्त कर रहे हैं। केवल उत्पाद माननेमें दोष है, केवल व्यय माननेमें दोष है, केवल ध्रौव्य माननेमें दोष है। इन तीनोंमेंसे कुछ भी न माना जाय तो उसमें आपत्तियाँ ही हैं। इस कारण जिन्हें दोषका भय है, जिन्हें निर्दोष कथन पसंद है, जिन्हें निर्दोष ज्ञान चाहिये, उन्हें तीनों ही अवस्थायें माननी होंगी। और जो वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक माना गया वही साधारण आस्तिक्य है। तो जिन्हें आस्तिक्यकी चाह हो, जो पदार्थ है जैसा है वैसा ही माननेकी जिन की रुचि हो उनको चाहिए कि वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक मानें। आस्तिक्य और नास्तिक्यकी व्याख्या इसी आधारपर है। नास्तिक्य उसे कहते हैं कि वस्तु जिस प्रकार से है उस प्रकारसे न माने। और आस्तिक्य उसे कहते हैं कि जो वस्तु जिस प्रकारसे है उसको वैसा माने! आस्तिक्य नास्तिक्यकी व्याख्यामें जैसे अनेक मतावलम्बियोंने कहा है कि जो हमारे सिद्धान्तको माने वह आस्तिक और जो न माने वह नास्तिक है तो यह परिभाषा इस आस्तिक्य नास्तिक्य शब्दसे नहीं बन सकती है। शब्दमेंसे तो वही ध्वनित होता है कि जो है जैसा है उस प्रकार माने सो आस्तिक। आत्मा पुद्गल पदार्थ, तत्त्व जिस रूपसे है उस रूपसे मानने वालेको आस्तिक कहते हैं और उस रूप से न कहने वालेको नास्तिक कहते हैं। जब वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है तो ऐसा ही माने वही पुरुष आस्तिक है और जो इस तरह न माने वह पुरुष नास्तिक है। और आस्तिक नास्तिककी इस व्याख्याके आधारपर सब प्रकारके आस्तिक्य और नास्तिक्य की बात स्पष्ट होती है। परमात्मा, आत्मा, कर्म, देह, द्रव्यादिक जितने भी विषय हैं सभी विषयोंका यथार्थ प्रतिपादन तब ही हो सकता है जब मूलमें वस्तुका उत्पाद व्ययध्रौव्य माननेका आस्तिक्य बनाया गया हो। इस कारण जिन्हें आस्तिक्यकी चाह है उन्हें चाहिए कि वस्तुको उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक मानें, क्योंकि उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोंका परस्पर अविनाभाव है और त्रियात्मक ही वस्तुका स्वरूप है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com